॥ श्रीः ॥

विद्या भवन संस्कृत ग्रन्थमाला

१२



महाकवि श्रीराजशेखरविरचिता

कर्पूरमञ्जरी

'मकरन्द' संस्कृतहिन्दीव्याख्यया, हिन्दीरूपान्तरेण,
परीक्षोपयोगिविविधपरिशिष्टैश्च संवलिता

सम्पादकः
व्याकरणाचार्य—
श्री रामकुमार आचार्यः, एम. ए.
(संस्कृतप्राध्यापक, सनातनधर्मप्रकाशक कालेज, ब्यावर, अजमेर)





चौखम्बा विद्या भवन, चौक, बनारस–१

सं० २०१२] [ई० १९५५

प्रकाशकः—
चौखम्बा विद्या भवन,
चौक, बनारस

Chowkhamba Vidya Bhawan
Chowk, Banaras-1
1955.

मुद्रकः—
विद्याविलास प्रेस,
बनारस-१

प्रस्तावना

कथासार

प्रथम जवनिकान्तर

प्रस्तावना के बाद राजा चन्द्रपाल, रानी विभ्रमलेखा, विदूषक और अन्य सेवक रङ्गमञ्च पर आते हैं। राजा और रानी आपस में वसन्तोत्सव तथा मलयानिल का वर्णन करते हैं। इसी अवसर पर विदूषक और विचक्षणा में अपनी २ वसन्तवर्णन करने की योग्यता पर कुछ झगड़ा हो जाता है। विदूषक नाराज होकर चला जाता है। रानी उसको बुलाने की चेष्टा करती है लेकिन विचक्षणा के कहने से रुक जाती है। फिर भैरवानन्द नामक एक अद्भुत सिद्ध योगी को साथ लिए विदूषक आता है। राजा योगी से कोई आश्चर्य दिखाने का अनुरोध करता है। विदूषक की सलाह से विदर्भ नगर की राजकुमारी को भैरवानन्द अपनी योगशक्ति से सबके सामने ला दिखाता है। राजा उसके अनुपम सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाता है और उससे प्रेम करने लगता है। यह राजकुमारी कर्पूरमञ्जरी रानी विभ्रमलेखा की मौसी शशिप्रभा और मौसा वल्लभराज की पुत्री है। इसलिए रानी भी बड़ी प्रसन्न होती और भैरवानन्द से कहती है कि कर्पूरमञ्जरी कुछ दिनों के लिए मेरे पास ही रखी जाय। भैरवानन्द इस बात को स्वीकार कर लेता है।

द्वितीय जवनिकान्तर

राजा कर्पूरमञ्जरी की याद में विह्वल है और उसके सौन्दर्य की बार बार प्रशंसा करता है। इसी अवसर पर विदूषक और विचक्षणा आ जाते हैं। विचक्षणा राजा को कर्पूरमञ्जरी द्वारा लिखा हुआ एक केतकी पत्रलेख देती है तथा स्वयं मुख से भी राजा के वियोग में कर्पूरमञ्जरी की दीनदशा का वर्णन करती है एवं विदूषक भी विचक्षणा के सामने कर्पूरमञ्जरी के वियोग में राजा की दीनावस्था का वर्णन करता है। फिर राजा के द्वारा यह पूछे जाने पर कि रानी ने कर्पूमरञ्जरी का किस किस तरह शृङ्गार किया, विचक्षणा उसके प्रत्येक शृङ्गार का वर्णन करती है।

अनन्तर राजा और विदूषक आपस में कर्पूरमंजरी की शोभा का वर्णन करते हैं। विदूषक अपने यहां सूचित किए जाने पर कि रानी ने चतुर्थी के अवसर पर आज महारानी गौरीपूजा के बाद कर्पूरमंजरी को झूले पर झुलावेंगी और कदलीकुंज में बैठकर महाराज कर्पूरमंजरी को झूलता हुआ देख सकते हैं, राजा और विदूषक दोनों कदलीगृह में चले जाते हैं और कर्पूरमंजरी को झूले में झूलता हुआ देखते हैं। अचानक कर्पूरमंजरी झूले पर से उतर पड़ती है। राजा फिर उसकी याद करता रहता है। दोनों मरकत कुंज में बैठे रहते हैं। इसी अवसर पर शिशिरोपचार का सामान लिए विचक्षणा उधर से निकलती है। विदूषक और विचक्षणा में कुछ वार्तालाप होता है। विचक्षणा कहती है कि महारानी ने कुरबक, तिलक और अशोक ये तीन वृक्ष लगाए हैं और कर्पूरमंजरी से उनका दोहद (दे. पृ. १०३) करने के लिए कहा है। महाराज मरकत कुंज से कर्पूरमंजरी को देख सकते हैं। तमाल वृक्ष की आड़ में छिपा हुआ राजा कर्पूरमंजरी को देखता है। कर्पूरमंजरी कुरबक वृक्ष का आलिंगन करती है, तिलक वृक्ष को तिरछी निगाहों से देखती है और अशोक वृक्ष पर पादप्रहार करती है। विदूषक और राजा इस दृश्य को बड़े प्रेम से देखते हैं। संध्याकाल हो जाने पर सब चले जाते हैं।

तृतीय जवनिकान्तर

राजा और विदूषक रङ्गमञ्च पर आते हैं। राजा कर्पूरमंजरी के ही ध्यान में मग्न है। विदूषक द्वारा पूछे जाने पर राजा उसे अपना स्वप्न बताता है कि कर्पूरमंजरी स्वप्न में उसकी शय्या पर आई लेकिन ज्यों ही उसने कर्पूरमंजरी को हाथ से पकड़ना चाहा वह हाथ छुड़ाकर भाग गई और उसकी निद्रा भी भंग हो गई। इसके बाद विदूषक अपना स्वप्न बताता है कि वह गंगाजी में सो गया है और मेघों ने उसे निगल लिया। फिर मेघ के गर्भ में छिपा हुआ वह ताम्रपर्णी नदी से मिले हुए समुद्र में गया। वहां वह मेघ बड़ी बड़ी बूंदों से बरसने लगा और समुद्र की सीपियों ने उसे पी लिया। वहां वह पचास घुंघची भर का (असली) मोती बनकर सीपियों के गर्भ में रहा। फिर समय आने पर वे सीपियां समुद्र से निकालकर फोड़ी गईं और उनमें से मोती निकाले गए। एक सेठ ने उन मोतियों को मोल लिया और उनमें छेद कराया। इससे उसे कुछ वेदना हुई। फिर उस सेठ ने उन मोतियों का एक हार बनवाकर पाञ्चाल देश के राजा के हाथ बेंच दिया।

राजा ने वह हार अपनी रानी को पहिनाया। फिर जब चांदनी रात में राजा ने रानी को प्रगाढालिंगन किया तब वह स्तनों के नीचे दब जाने से जग गया।

विदूषक के अपना स्वप्न बताने के बाद राजा और विदूषक में प्रेम, यौवन और सौन्दर्य पर बातचीत चली। इस अवसर पर नेपथ्य से कर्पूरमञ्जरी और कुरंगिका की बातचीत द्वारा पता चलता है कि कर्पूरमञ्जरी भी राजा के वियोग में व्याकुल है। इधर से राजा और विदूषक आगे बढ़ते हैं उधर से कर्पूरमञ्जरी और कुरंगिका आती है। कर्पूरमञ्जरी और राजा एक दूसरे को देखकर स्तब्ध रह जाते हैं। राजा कर्पूरमञ्जरी का हस्तस्पर्श करता है। विदूषक कर्पूरमञ्जरी को पसीने में भींगा हुआ देख वस्त्र से हवा करता है। संयोग से दीपक बुझ जाता है। इस पर सब लोग सुरंग के रास्ते से ही प्रमदोद्यान में चले जाते हैं। राजा कर्पूरमञ्जरी का इस अवसर पर आलिंगन कर लेता है। इधर वैतालिक चन्द्रोदय की सूचना देते हैं। उधर रानी को कर्पूरमञ्जरी के राजा से मिलने का वृत्तान्त मालूम हो जाता है। इसलिये घबराकर कर्पूरमञ्जरी सुरंग के ही रास्ते से अपने रक्षागृह में चली जाती है।

चतुर्थ जवनिकान्तर

राजा और विदूषक आपस में ग्रीष्म की प्रखरता पर वार्तालाप करते हैं। राजा अब भी कामावेश में मालूम पड़ता है। इधर रानी ने कर्पूरमञ्जरी को बड़े कठोर नियन्त्रण में रख दिया है। हर तरफ पहरेदार लगा दिए हैं। इस अवसर पर रानी की ओर से सारंगिका महाराज को केलिविमान प्रासाद पर चढ़कर वटसावित्री महोत्सव देखने का निमन्त्रण दे जाती है। राजा और विदूषक वहां जाते हैं। वहां पर सारंगिका रानी की ओर से राजा के पास संदेश लाती है कि आज सायंकाल राजा का विवाह होगा। राजा सारंगिका से सारी कथा विस्तार से पूछते हैं। सारंगिका कहती है कि रानी ने गौरी की प्रतिमा बनवा कर भैरवानन्द से उसमें प्राणप्रतिष्ठा कराई और स्वयं उनसे दीक्षा ली। रानी ने योगीश्वर भैरवानन्द से जब गुरुदक्षिणा के लिए बड़ा आग्रह किया तो उन्होंने यह कहा कि यह दक्षिणा महाराज को दो। लाटदेश के राजा चण्डसेन की पुत्री घनसारमञ्जरी का राजा से विवाह करा दो। ज्योतिषियों ने उसको चक्रवर्ती राजा की रानी होना लिखा है। इस तरह महाराज भी चक्रवर्ती हो जायंगे और मुझे भी दक्षिणा मिल

लिखता है कि राजशेखर [illegible] कि [illegible] न मैं ही लिख जाय।

अब प्रश्न यह उठता है कि राजशेखर ने यह नवीन मार्ग क्यों लिया? कर्पूरमंजरी के अतिरिक्त उन्होंने तीन या चार और भी नाटक लिखे, लेकिन उन सब में उन्होंने भाषा के सम्बन्ध में नाट्यशास्त्र के नियमों का अनुसरण किया है। अपनी इस स्थिति को स्पष्ट करने के लिए ही राजशेखर ने सूत्रधार से यह प्रश्न कराया है कि संस्कृत को छोड़कर प्राकृत में यह नाटक क्यों लिखा गया। पारिपार्श्विक उत्तर देता है कि कविशिरोमणि कविता करते हैं, भाषा कोई भी क्यों न हो। इस तरह राजशेखर ने वास्तव उत्तर को छिपाने की चेष्टा की है। अगर यह कहा जाय कि अपने सर्वभाषा चातुर्य को दिखलाने के लिए उन्होंने ऐसा किया, तो भी ठीक नहीं, क्योंकि अगर वे अपना सर्वभाषा चातुर्य दिखलाते तो केवल प्राकृत में ही रचना क्यों करते।

इस नवीन उद्भावना के पीछे वास्तव कारण यही हो सकता है कि नाट्यसाहित्य के क्षेत्र में लेखक एक प्रयोग करना चाहता था। लेखक की पत्नी अवन्तिसुन्दरी ने भी इसमें सहयोग दिया और उसके कहने से यह नाटक खेला गया था। आगे चल कर यह नाटक बड़ा लोकप्रिय सिद्ध हुआ और दूर दूर तक इसका अभिनय किया गया।

इस नाटक की लोकप्रियता के दो कारण थे—एक तो इसमें नृत्य का समावेश तथा झूले के दृश्य की योजना, दूसरा इसका ऐकान्तिक रूप से प्राकृत में लिखा जाना। नाटक के रचना काल में संस्कृत की अपेक्षा प्राकृत जनता के लिए अति सुगम थी। राजशेखर के समय (९०० ई०) में लोग अपभ्रंश भाषा बोलने लगे थे और संस्कृत गद्य या पद्य का समझना लोगों के लिए कुछ दुष्कर सा हो चला था। इसलिए अपभ्रंश भाषा बोलने वाले लोगों की सुविधा को ध्यान में रखकर लेखक ने शौरसेनी प्राकृत में यह नाटक लिखा। अतः यह निश्चित सा है कि संस्कृत के नाटकों—जिनमें प्राकृत को गौण स्थान प्राप्त था—की अपेक्षा केवल प्राकृत में लिखा गया यह कर्पूरमंजरी लोगों को बड़ा रुचिकर प्रतीत हुआ।

साहित्यिक विशेषता

यद्यपि यह नाटक केवल प्राकृत में ही लिखा गया है, फिर भी दृश्यकाव्य की विशेषताएँ इसमें कम नहीं हैं। जैसा कि नाटक के मंगलाचरण में कहा गया है, इस नाटक में वैदर्भी, मागधी तथा पाञ्चाली ये तीनों रीतियाँ पाई जाती हैं। इन तीनों रीतियों के उचित

मिश्रण से इस नाटक में एक अद्वितीय सौन्दर्य, जो उत्तर कालीन नाटकों में साधारणतया कम पाया जाता है, आगया है। शार्दूलविक्रीडित, वसन्ततिलका और स्रग्धरा जैसे जटिल तथा अन्य छन्दों के प्रयोग से इस नाटक में कोमलता तथा ओजगुण यथास्थान पाये जाते हैं। कालिदास के मालविकाग्निमित्र तथा श्रीहर्ष की रत्नावली की इस नाटक के वस्तुविधान में अधिक सहायता ली गई है, फिर भी भाषा और चरित्रचित्रण में राजशेखर ने विलक्षण प्रतिभा और चातुर्य का परिचय दिया है। तृतीय जवनिकान्तर में नायिका कर्पूरमञ्जरी द्वारा रचित चन्द्रवर्णन पर राजा कहता है—**'अहो! कर्पूरमञ्जर्या अभिनवार्थदर्शनम्, रमणीयः, शब्दः, उक्तिविचित्रता, रसनिष्यन्दश्च।'** (पृ. १५०) यह कथन पूर्णरूप से कर्पूरमञ्जरी नाटक पर भी लागू हो सकता है। इसके एक एक श्लोक शृङ्गार के स्रोत के समान है।

ऐतिहासिक महत्त्व

यूरोपीय विद्वान् कोनो लिखते हैं—'भारतीय नाटकों के ऐतिहासिक अध्ययन के लिए भी कर्पूरमञ्जरी एक आवश्यक ग्रन्थ है। प्राचीन काल में संस्कृत नाटकों में स्थापक और सूत्रधार दोनों ही पाये जाते थे। कर्पूरमञ्जरी में भी स्थापक पाया जाता है।' लेकिन कोनो महाशय का यह कथन बिल्कुल निराधार है, क्योंकि किसी भी अच्छी हस्तलिखित प्रति में स्थापक का उल्लेख नहीं मिलता। पिशेल महाशय के कठपुतली के नाटक से भारतीय नाटकों के विकास के सिद्धान्त को प्रो० कोनो समर्थन देना चाहते थे। कीथ महाशय भी इस सिद्धान्त को संगत नहीं समझते हैं। यहाँ पर पिशेल महाशय के सिद्धान्त की सत्यता का प्रश्न नहीं है। फिर भी इतना निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि कर्पूरमञ्जरी से इस सिद्धान्त की पुष्टि में कुछ भी सहायता नहीं मिलती।

भारतीय नाटकों के उद्गम तथा विकास के अध्ययन में कर्पूरमञ्जरी से यद्यपि कुछ भी सहायता नहीं मिलती, फिर भी नाटकों के स्वरूप और परवर्ती इतिहास से सम्बन्ध रखने वाली कई बातों पर इससे कुछ प्रकाश अवश्य पड़ता है। नाटक के प्रारम्भ में प्रस्तावना में कुशीलवों की विविध चेष्टाओं का विस्तृत वर्णन तथा ध्रुवा गीत का उल्लेख मिलता है। प्रस्तावना में तत्कालीन विभिन्न वाद्ययन्त्रों का भी उल्लेख है। चतुर्थ जवनिकान्तर में आए हुए नृत्य के दृश्य से यह भी निश्चित हो जाता है कि भारतीय नाटकों में नृत्य का भी उपयोग किया जाता था।

किया। इसके अतिरिक्त दूसरे ग्रन्थों से भी राजशेखर के समय निर्णय में सहायता मिलती है। अपनी काव्यमीमांसा में दूसरे कवियों के साथ राजशेखर ने रुद्रट और आनन्दवर्धन का भी उल्लेख किया है। यह दोनों विद्वान् काश्मीरी राजा [illegible] (७[illegible]०-८[illegible]२ ई. स.) और अवन्तिवर्मन् (८५७-८८४ ई. स.) के शासनकाल में क्रमशः हुए। इनके साथ साथ सोमदेव और सोड्ढल जो कि क्रमशः ९६० ई. स. और १०५० ई. स. में हुए, उन्होंने राजशेखर का उल्लेख किया है। सोमदेव का यशस्तिलकचम्पू ९६० ई. स. में पूरा हुआ था। सोड्ढल की उदयसुन्दरी १०५० ई. स. के लगभग लिखी गई थी। अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि राजशेखर ८८०-९२० ई. स. के बीच में प्रादुर्भूत हुए और उन्होंने अपने ग्रन्थों का निर्माण किया।

राजशेखर के समय के संबन्ध में विभिन्न विद्वानों के भिन्न भिन्न विचार हैं।

एक कथा यह है कि राजशेखर ने अपने तीन नाटक श्रीशङ्कराचार्य जी को भेंट किए। माधवाचार्य द्वारा विरचित शङ्करविजय में राजशेखर की कथा निम्नरूप से है:—

'तन्नोदितः कश्चन राजशेखरः' (सर्ग २)
'एवमेनमतिमर्त्य चरित्रं सेवमानजनदैन्यलवित्रम्।
केरलक्षितिपतिर्हि दिदृक्षुः प्राहिणोत्सचिवमादृतभिक्षुः॥'
'तेन पृष्टकुशलः क्षितिपालः स्वेन सृष्टमथ शात्रवकालः।
हाटकायुतसमर्पणपूर्वं नाटकत्रयमवोचदपूर्वम्॥' (सर्ग ५)
कविता कुशलोऽथ केरलक्ष्मा कमनः कश्चनराजशेखराख्यः।
मुनिवर्यममुं मुदा वितेने निजकोटीरनिघृष्टपत्सरवाग्रम्॥
प्रथते किमु नाटकत्रयी सेत्यमुना संयमिना ततो नियुक्तः। (सर्ग ४)

इससे मालूम पड़ता है कि केरल देश के राजा राजशेखर सप्तम शतक से पहिले होने वाले शंकराचार्य के समकालीन थे। लेकिन भोजप्रबन्ध आदि की तरह शंकरविजय का भी समय निश्चित नहीं होने से उपर्युक्त मत विश्वसनीय नहीं है। दूसरे इस शंकरविजय का कर्ता पण्डित शिरोमणि सायनमाधवाचार्य नहीं हैं। यह माधव नाम के किसी और व्यक्ति का लिखा हुआ है।

जर्मनी पण्डित फ्लीट और कीलहार्न राजशेखर को नवम शतक के अन्त और दसम

शतक के प्रारम्भ में मानते हैं। औफ्रेट का कहना है कि राजशेखर जयदेव से प्रथम हुये। भाण्डारकर महाशय ने राजशेखर को दशम शतक के महेन्द्रपाल का गुरु माना है। श्री. ए. बोरो ने उन्हें शंकराचार्य का समकालीन मानकर सप्तम शतक का माना है। पिशेल ने उन्हें दशम या एकादश शतक का माना है। पीटर्सन ने उन्हें अष्टम शतक के मध्य का माना है। उनका कहना है कि क्षीरस्वामी ने जिसने कि अमरकोष पर टीका लिखी है और जो काश्मीर के राजा जयापीड (७५० ई. स.) का गुरु था, अपनी अमरकोष की टीका में विद्धशालभञ्जिका से एक श्लोक उद्धृत किया है और राजा महेन्द्रपाल जिसको राजशेखर ने अपना शिष्य बताया है, ७६१ ई. स. में राज्य करता था। इससे यह सिद्ध होता है कि राजशेखर अष्टम शतक के मध्य में हुये। कनिंघम महाशय का भी यही मत है। लेकिन यह मत भी भ्रान्तिरहित नहीं है। काश्मीर के राजा जयापीड का क्षीर नामक कोई गुरु अवश्य था। लेकिन उसने ही अमरकोष की टीका लिखी, यह बात सत्य नहीं है, क्योंकि उसने भोज का उल्लेख किया है और वर्धमान ने उसका उल्लेख किया है। अतः यह क्षीरस्वामी एकादश शतक ई. स. में हुए होंगे। श्री दुर्गाप्रसाद और परव महाशयों ने ८८४-९५९ ई. स. का समय माना है। श्री. एच. एच. विल्सन महोदय द्वादश शतक का प्रारम्भ राजशेखर का समय मानते हैं। श्री मैक्समूलर महोदय ने भूल से प्रवन्धकोष के रचयिता राजशेखर (१३४७ ई. स.) से इसको मिला दिया है। श्री आप्टे महाशय ने इन सब बातों का विचार कर सप्तम और अष्टम शतक का मध्य राजशेखर का समय माना है।

राजशेखर का जन्मस्थान और वंशपरिचय

वालरामायण से पता चलता है कि राजशेखर के कुछ पूर्वज महाराष्ट्र के रहने वाले थे। प्रो. कोनो ने महाराष्ट्र से विदर्भ और कुन्तल देश समझा है। लेकिन काव्यमीमांसा में महाराष्ट्र को विदर्भ और कुन्तल से अलग दक्षिणापथ का एक भाग माना गया है। महाराष्ट्र की स्थिति कहीं पर भी क्यों न हो, लेकिन यह कुछ निश्चित नहीं है कि महाराष्ट्र राजशेखर का जन्म स्थान था। इस संदेह के निम्न कारण हैं। आचार्य दण्डी ने महाराष्ट्री प्राकृत की बड़ी प्रशंसा की है। लेकिन राजशेखर ने जो प्राकृत को सबसे बड़ा मानने वाले हैं, प्राकृत को लाटदेश की लोकप्रिय भाषा माना

है और महाराष्ट्र देश से इसको [illegible] नहीं किया है। [illegible] [illegible] [illegible] है, [illegible] [illegible] नहीं होना चाहिये। [illegible] [illegible] है कि महाराष्ट्र [illegible] का जन्मस्थान था।

इस विचार पर यह भी [illegible] जा सकती है कि राजशेखर के समय में महाराष्ट्र में प्राकृत भाषा का [illegible] हो गया होगा या दण्डी का महाराष्ट्र राजशेखर के महाराष्ट्र से [illegible] था और [illegible] मध्यदेश की दक्षिण सीमा पर [illegible] होगा।

[illegible] के सम्बन्ध में संदेह किया जा सकता है। राजशेखर महाराष्ट्री के संबन्ध में [illegible] हुए हैं। इससे भी प्रतीत होता है कि दण्डी ने केवल अपनी मातृभूमि प्रेम में अतिशयोक्ति कर दी है। राजशेखर ने प्राचीन राजाओं की भाषासंबन्धी रुचियों का विवरण देते हुए किसी भी ऐसे महाराष्ट्रीय राजा का उल्लेख नहीं किया जिसने कि महाराष्ट्री प्राकृत को संरक्षण दिया हो। दूसरे इस प्रकार के भी प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं, जिनके आधार पर यह कहा जा सके कि राजशेखर के समय में महाराष्ट्री प्राकृत का अपने ही देश में प्रभाव घट गया था। अब हमें महाराष्ट्र की भौगोलिक स्थिति पर भी ज़रा विचार करना चाहिए। सर जार्ज ग्रियर्सन ने (लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया, भाग ७, पृ. १२३) शौरसेनी प्राकृत से निकलने वाली भाषाओं के प्रदेश के दक्षिण में पड़ने वाले भूभाग को महाराष्ट्र नाम दिया है। अतः यह भी असंगत नहीं प्रतीत होता कि राजशेखर का महाराष्ट्र मध्यदेश से मिला हुआ था। लेकिन फिर भी राजशेखर को हम महाराष्ट्र से संबद्ध नहीं कर सकते, क्योंकि उन्होंने अपने मध्यदेश के संबन्ध को स्पष्टतया व्यक्त कर दिया है।

(१) काव्यमीमांसा में उन्होंने कहा है—**'यो मध्यदेशं निवसति, स कविः सर्वभाषानिषण्णः।'** (जो कवि मध्यदेश में रहता है, वह सब भाषाओं में चतुर होता है) इस कथन को राजशेखर के अपने सर्वभाषाचतुर होने के कथन से मिलाने पर यह बात अधिक पुष्ट हो जाती है कि मध्यदेश ही राजशेखर का जन्मस्थान था।

(२) शौरसेनी प्राकृत में ही एक सम्पूर्ण नाटक लिखकर राजशेखर ने मध्यदेश की प्राकृत को गर्वोन्नत किया है।

(३) कन्नौज और पाञ्चाल के प्रति राजशेखर का जो पक्षपात है उससे भी यह सिद्ध होता है कि मध्यदेश उनका जन्मस्थान था और महोदय (कन्नौज) इस प्रदेश की राजधानी थी। राजशेखर का कहना है कि दिशायें इसी नगर से माननी चाहिए। इस नगर को वे बड़ा पवित्र मानते हैं और इस नगर की स्त्रियों को भी वे वेषभूषा, आभूषण, भाषा और व्यवहार में अग्रगामी बताते हैं (बालरामायण १०, ८८-९०)। पाञ्चाल देश की प्रशंसा उन्होंने (बालरामायण, १०, ८६) में बड़ी की है।

इन सब बातों से हम यह मान सकते हैं कि महाराष्ट्र राजशेखर का जन्मस्थान नहीं था, भले ही महाराष्ट्र को पश्चिमीय दक्षिण (Western Deccan) न माना जाय। राजशेखर के जन्मस्थान के संबन्ध में जो पूर्वपरम्परायें चली आ रहीं हैं, उनसे इसी तरह हम सामञ्जस्य कर सकते हैं कि राजशेखर के पूर्वज महाराष्ट्र से मध्यदेश में आए थे।

राजशेखर का वंश

'उपाध्यायो यायावरीयः श्रीराजशेखरः' इस बालरामायण के कथन से यह प्रतीत होता है कि राजशेखर यायावर कुल के थे 'लेकिन इससे यह निश्चित नहीं होता कि राजशेखर ब्राह्मण थे या क्षत्रिय। चौहानवंश की क्षत्रिय कन्या अवन्तिसुन्दरी से इनका विवाह होने के कारण यह भी संभव हो सकता है कि ये क्षत्रिय रहे हों। लेकिन क्षत्रिय स्त्री से विवाह करने के कारण ही इनको ब्राह्मण न माना जाय, यह बात ठीक नहीं, क्योंकि उन दिनों अनुलोम विवाह (अपने से निम्न वर्ण की स्त्री से विवाह) करना वर्जित नहीं था। अथवा ऐसा भी हो सकता है-जैसा कि प्रो॰ कोनो ने अनुमान किया है-कि राजशेखर शैव थे और इसलिये शैवरीति के अनुसार किसी भी वर्ण से विवाह कर सकते थे। लेकिन कोनो महाशय भी श्री आप्टे के अनुसार राजशेखर को ब्राह्मण ही मानते हैं क्योंकि निम्न श्लोक—

> बभूव वल्मीकभवः कविः पुरा ततः प्रपेदे भुवि भर्तृमेण्ठताम्।
> स्थितः पुनर्यो भवभूतिरेखया स वर्तते सम्प्रति राजशेखरः॥

के अनुसार राजशेखर को भवभूति का अवतार माना जाता है और क्षत्रिय किसी ब्राह्मण

का अवतार नहीं हो सकता। दूसरे राजशेखर उपाध्याय या गुरु भी थे इसलिए उनका ब्राह्मण होना अधिक संगत प्रतीत होता है। लेकिन ये दोनों युक्तियाँ सबल नहीं हैं, भवभूति का अवतार होने से ही राजशेखर को ब्राह्मण नहीं मान सकते ? क्योंकि राम और कृष्ण भगवान् का अवतार होने पर भी ब्राह्मण नहीं थे। दूसरी युक्ति भी ठीक नहीं है। धर्मशास्त्रों में क्षत्रिय के गुरु होने के विरुद्ध कोई कथन नहीं है। राजशेखर क्षत्रिय होने पर भी गुरु हो सकते थे। राजशेखर के पिता दुर्दुक एक राजा के (बालरामायण १, १३) महामात्य थे। इससे हम ऐसा समझ सकते हैं कि राजशेखर ब्राह्मण रहे होंगे, क्योंकि कई ब्राह्मण चाणक्य, सायण आदि प्रसिद्ध मन्त्री हुए हैं। लेकिन कोई बात निश्चित नहीं होती, क्योंकि ब्राह्मणों ने कभी-कभी प्रधानसेनापति का पद-जिसपर कि प्रायः क्षत्रिय ही कार्य करते हैं—भी सभाला है और क्षत्रियों ने भी समय समय पर मन्त्रिपद का कार्य किया है। कामन्दकीय नीतिसार जैसे ग्रन्थों में ऐसा कोई नियम नहीं है जिसके अनुसार ब्राह्मण ही मन्त्री बनें।

यायावर वंश में, चाहे ये ब्राह्मण हों या क्षत्रिय, बड़े-बड़े विद्वान् उत्पन्न हुए। जैसा कि—

समूर्तो यत्रासीद् गुणगण इवाकाल जलदः, सुरानन्दः सोऽपि श्रवणपुटपेयेन वचसा।
न चान्ये गण्यन्ते तरलकविराजप्रभृतयो, महाभागास्तस्मिन्नयमजनि यायावरकुले॥

इस श्लोक से स्पष्ट है। लेकिन इन सबमें अकालजलद ही उनके पूर्वज थे।

नदीनामेकलसुता नृपाणां रणविग्रहः। कवीनां च सुरानन्दश्चेदिमण्डलमण्डनम्॥

इस श्लोक में उल्लिखित सुरानन्द, तरल तथा कविराज आदि इस वंश की अन्य शाखाओं में रहे होंगे। सूक्तिमुक्तावली में उद्धृत राजशेखर के एक श्लोक मे 'यायावरकुलश्रेणि' के कथन में भी इसकी पुष्टि होती है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि अनेक विद्वज्जन मण्डित यायावर कुल मे इनका जन्म हुआ था और दुर्दुक इनके पिता तथा शीलवती इनकी माता थी।

राजशेखर का व्यक्तित्व

अनेक विद्वानों से विभूषित यायावर वंश में उत्पन्न होने के कारण राजशेखर की शिक्षा बड़ी पूर्ण थी और वे उस समय की समस्त विद्याओं से परिचित थे। काव्यमीमासा

को देखने से उनकी अद्वितीय प्रतिभा का पता चलता है। राजशेखर स्वयं भी कवि थे और उन्होंने अपने लिए महाकवि से भी श्रेष्ठतर 'कविराज' की पदवी दी है। इससे हम यह अनुमान कर सकते हैं कि उन्होंने दूसरे कवियों के लिए जो स्तर निर्धारित किया था, वहां तक वे स्वयं भी पहुँच चुके थे और साहित्यविद्या में पारंगत होने के साथ साथ अन्यान्य विभिन्न विद्याओं में भी निष्णात थे।

राजशेखर न केवल विद्वान् थे बल्कि उनमें साहित्यिक प्रतिभा भी थी। इसीलिए संस्कृत साहित्य में उन्हें सर्वोच्च नही तो प्रमुख स्थान तो प्राप्त है ही। यद्यपि राजशेखर ने कालिदास और भवभूति आदि अपने पूर्ववर्ती कवियों से भाव, उद्देश्य तथा कल्पनाएँ ग्रहण की है लेकिन उन सबका ऐसा आत्मीकरण किया है कि उनपर अपनी भावाभिव्यञ्जनशैली से अपना प्रभाव डाल दिया है। कर्पूरमञ्जरी में हम मालविकाग्निमित्र की छाया यत्र तत्र देख ही सकते हैं। राजशेखर ने सम्पूर्ण भारत की यात्रा अवश्य की होगी। दक्षिण भारत की परम्पराओं और स्थानों का प्रायः उनकी रचनाओं में उल्लेख मिलता है। भाषा के सम्बन्ध में भी इनके विचार स्पष्ट हैं। काव्य का स्वरूप राजशेखर के अनुसार निम्नलिखित हैं—

उक्तिविशेषः काव्यं भाषा या भवति सा भवतु।

प्राकृतभाषा के संबन्ध में उनके विचार निम्न श्लोक से स्पष्ट हो जाते हैः—

परुसा संक्किअबंधा पाउदबंधो वि होई सुउमारो।
पुरुसमहिलाणं जेत्तिअमिहंतरं त्तिअमिमाणं॥ (पृ. ९)

राजशेखर अपने विषय में उदासीन नहीं हैं। कर्पूरमञ्जरी की प्रस्तावना में—

स अस्य कविः श्रीराजशेखरस्त्रिभुवनमपि धवलयन्ति।
हरिणाङ्कप्रतिपङ्क्तिसिद्धा निष्कलङ्का गुणा यस्य॥ (पृ. १०)

अस्तु, राजशेखर के ग्रन्थों से उनकी कलाप्रियता और संस्कृतभाषा पर अधिकार का हमें पूरा विश्वास हो जाता है।

राजशेखर के ग्रन्थ

राजशेखर के चार नाटक और काव्यमीमांसा नामक एक साहित्यशास्त्र का ग्रन्थ इस समय उपलब्ध है। अपने काव्यानुशासन में आचार्य हेमचन्द्र ने राजशेखर

[illegible] हरविलास सारदा एवं [illegible] ने भी उल्लेख किया है। इस तरह राजशेखर की ६ रचनाएँ हमारे सामने हैं। लेकिन फिर भी यह निश्चित नहीं है कि उन्होंने कितने ग्रन्थ लिखे। बालरामायण की प्रस्तावना में लिखा हुआ है कि राजशेखर संभवतः इस [illegible] को मिलाकर ६ ग्रन्थ लिखे। चूँकि उनके ग्रन्थों के काल-क्रम का हमें पता नहीं है, इसलिए उनकी रचनाएँ निश्चित क्रम में हमारे सामने आती हैं। श्री वी. एस. आप्टे और प्रो० कोनो ने उनकी रचनाओं का निम्नलिखित क्रम निश्चित किया है। कर्पूरमंजरी, विद्धशालभञ्जिका, बालरामायण और बालभारत। इस मत के आधार पर राजशेखर की रचनाएँ ९ से कम नहीं होंगी। कोई कोई बालरामायण और बालभारत को कवि की पूर्णतम रचनाएँ मानते हैं। इस तरह राजशेखर की रचनाएं ९ या १० से कम नहीं ठहरतीं। बालरामायण की उक्ति में ऐसा मालूम पड़ता है कि यह नाटक कवि का पहला नाटक था और इससे पहिले कवि ने ५ या ६ काव्य विभिन्न तरह के लिखे थे तथा जनता में उनका अधिक स्वागत नहीं हुआ था। पर, आगे राजशेखर ने भी लिखा है कि यद्यपि आलोचक उनके कार्यों को पसन्द नहीं करेंगे, फिर भी उनके नाटक बड़े आदर से पढ़े जायेंगे। इस तरह राजशेखर के १० ग्रन्थ निश्चित होते हैं—१. बालरामायण, २. बालभारत, ३. कर्पूरमञ्जरी, ४. विद्धशालभञ्जिका और ६ काव्य।



पात्र परिचय

पुरुष पात्र

सूत्रधार—नाटक का स्थापक, रङ्गमञ्च का प्रबन्धक—प्रधान नट।

पारिपार्श्विक—सूत्रधार का सहयोगी—दूसरा नट।

राजा—चन्द्रपाल, नाटक का नायक।

विदूषक—कपिञ्जल, राजा का विनोदी मित्र।

वैतालिक (दो)—रत्नचण्ड और काञ्चनचण्ड, राजा की स्तुति करने वाले।

भैरवानन्द—योगी, तान्त्रिक सिद्ध पुरुष।

स्त्रीपात्र

कर्पूरमञ्जरी—विदर्भनगर की राजकुमारी—नाटक की नायिका।

देवी—राजा चन्द्रपाल की रानी—विभ्रमलेखा।

विचक्षणा—रानी की सखी—प्रधान परिचारिका, चेटी।

प्रतिहारी—अन्तःपुर की दासी।

कुरङ्गिका—कर्पूरमञ्जरी की सखी—परिचारिका।

सारङ्गिका—रानी की प्रमुख दासी।

चर्चरी—नर्त्तकियाँ।

॥ श्रीः ॥

कर्पूरमञ्जरी

'मकरन्द' संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेता

प्रथमं जवनिकान्तरम्

भद्दं भोदु सरस्सई अ कइणो णंदंतु वासाइणो
अण्णाणं वि परं पअट्टदु वरा वाणी छइल्लप्पिआ ।
वच्छोमी तह माअही फुरदु णो सा किं च पंचालिआ
रीदीओ विलिहंतु कव्वकुसला जोण्हं चओरा विअ ॥ १ ॥

(भद्रं भवतु सरस्वत्याः कवयो नन्दन्तु व्यासादयः
अन्येषामपि परं प्रवर्त्ततां वरा वाणी विदग्धप्रिया ।

अन्वयः—सरस्वत्याः भद्रं भवतु, व्यासादयः कवयः नन्दन्तु, अन्येषाम् अपि विदग्धप्रिया वरा वाणी परं प्रवर्तताम् । वैदर्भी तथा मागधी किञ्च सा पाञ्चालिका रीतिका नः स्फुरतु, चकोराः ज्योत्स्नाम् इव काव्यकुशलाः (रीतिकाः) विलिहन्तु ।

व्याख्या—सरस्वत्याः वाग्देवतायाः भद्रं मङ्गलं भवतु, सरस्वती विजयतामिति भावः । कवयः, व्यासादयः व्यासवल्मीकप्रभृतयः काव्यप्रणेतारः—नन्दन्तु आनन्दमनुभवन्तु, यतस्तेऽपि स्वप्रणीतग्रन्थैर्जगत आनन्दमुत्पादयन्ति । अन्येषां कालिदास-

---

सरस्वती देवी की जय हो, व्यास आदि कवि भी अपनी रचनाओं द्वारा समृद्ध होते रहें और भी कालिदास, भवभूति आदि कवियों की विद्वज्जनप्रिय

टिप्पणी—'सरस्वती' शब्द स्त्रीरत्न का भी पर्यायवाची है, अतः सरस्वती शब्द से स्त्रीरत्नभूत कर्पूरमञ्जरी नामक इस सट्टक की नायिका की भी प्रतीति होती है । वैदर्भी,

वैदर्भी तथा मागधी स्फुरतु नः सा किञ्च पाञ्चालिका
रीतिका विलिहन्तु काव्यकुशला ज्योत्स्नां चकोरा इव ॥ १ ॥)

अवि अ (अपि च)—

अकलिअपरिरंभविब्भमाइं अजणिअचुंवणडंवराइं दूरम्।
अघडिअघणताडणाइं णिच्चं णमह अणंगरईणमोहणाइं ॥ २ ॥

भवभूति-प्रभृतीनाम् कवीनामपि विदग्धप्रिया विद्वज्जनमनोहारिणी वरा श्रेष्ठा वाणी वाक् परम् उत्कर्षेण प्रवर्तताम् प्रचलतु, वैदर्भी विदर्भदेशोद्भवा तथा मागधी मगधदेशोद्भवा किन सा। प्रसिद्धा पाञ्चालिका पञ्चालदेशोद्भवा रीतिका रीतिः नः अस्माकं स्फुरतु मनसि प्रकटीभवतु। चकोराः चातकपक्षिणः ज्योत्स्नां चन्द्रिकामिव काव्यकुशलाः काव्यार्थपर्यालोचने निपुणाः सामाजिकाः, रीतिकाः इमास्तिस्रो रीतीः, रीतित्रयविशिष्टां कर्पूरमञ्जरीमिति ध्वनिः। विलिहन्तु विशेषेणास्वादयन्तु।

यथा चकोराश्चन्द्रिकामास्वाद्य प्रमोदमग्ना भवन्ति तथैव सहृदयवन्तः समाजिकाः रीतिरसास्वादेन प्रसन्ना भवन्त्विति भावः ॥ १ ॥

मधुर वाणी सर्वदा चलती रहे। वैदर्भी, मागधी और पाञ्चाली रीतियां हमारे ध्यान में तथा सामने रहे। सहृदय रसिक जन इन तीन रीतियों का उसी तरह विशेषरूप से आनन्द लें, जिस तरह ज्योत्स्ना का स्वाद लेकर चकोर पक्षी प्रसन्न होते हैं ॥ १ ॥

मागधी और पाञ्चाली ये तीन रीतियाँ काव्य में प्रयुक्त शब्दगत शैलियों के नाम हैं। वैदर्भी रीति मे माधुर्य की व्यञ्जना करने वाले सरस तथा सरल शब्दो द्वारा समास रहित रचना की जाती है। मागधी रीति में ओज गुण की व्यञ्जना करने वाले पद रहते हैं तथा समास का अधिक प्रयोग पाया जाता है। पाञ्चाली रीति में रचना पांच, छः पदों की समास से युक्त, ओज तथा कान्ति गुणयुक्त और मधुर तथा सुकुमार होती है। साहित्यदर्पणे–'पदसङ्घटना रीतिरङ्गसंस्थाविशेषवत्। उपकर्त्री रसादीनां सा पुनः स्याच्चतुर्विधा ॥ माधुर्यव्यञ्जकैर्वर्णैः रचना ललितात्मिका। अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते। ओजःप्रकाशकैर्वर्णैर्वन्ध आडम्वरः पुनः। समासवहुला गौडी ॥' सरस्वतीकण्ठाभरणे–'समस्तपञ्चषपदामोजःकान्तिसमन्विताम्। मधुरां सुकुमारां च पाञ्चालीं कवयो विदुः ॥' ॥ १ ॥



(अकलितपरिरम्भविभ्रमाणि अजनितचुम्बनडम्बराणि दूरम् ।
अगणितघनताडनानि नित्यं नमतानङ्गरत्योर्मोहनानि ॥ २ ॥)

अवि अ (अपि च)—

ससिखंडमंडणाणं समोहणासाणं सुरअणपिआणम् ।
गिरिसगिरिंदसुआणं संघाडो वो सुहं देउ ॥ ३ ॥

(शशिखण्डमण्डनयोः समोहनाशयोः सुरगणप्रिययोः ।
गिरिश-गिरीन्द्रसुतयोः सङ्घटना वः सुखं ददातु ॥ ३ ॥)

अन्वयः—(यूयम्) अकलितपरिरम्भविभ्रमाणि अजनितचुम्बनडम्बराणि अगणितघनताडनानि अनङ्गरत्योः मोहनानि दूरं यथा स्यात्तथा नित्यं नमत ।

व्याख्या—यूयं दर्शकाः रतिकामयोः आलिङ्गनविलासरहितानि चुम्बनप्रयासशून्यानि घनताडनवर्जितानि सुरतानि नित्यमभिवन्दध्वम्, आस्वादयतेति वा ।

समास—न कलितः परिरम्भविभ्रमः येषु तानि = अकलित०, न जनितः चुम्बेन डम्बरः येषु तानि = अजनितचुम्बन०, न गणितं घनं ताडनं येषु तानि = अगणितघन०, अत्र सर्वेषु बहुव्रीहिसमासः, नमतः=नम् पर० लोट् मध्यम० बहु० ।

व्याख्या—शशिनः खण्डः मण्डनं भूषणं ययोस्तयोः शशिखण्डमण्डनयोः, चन्द्रकलाभूषितयोः संभोगेच्छावतोः देवानां प्रिययोः शङ्करपार्वत्योः सङ्गमः युष्मभ्यं दर्शकेभ्य आनन्दं ददातु । मोहने (सुरते) या आशा मोहनाशा, तया सह वर्तेते इति तयोः समोहनाशयोः, तत्पु० ।

और भी–दर्शकगण आलिङ्गन चेष्टा से रहित, चुम्बन के आडम्बर से शून्य और अंगविशेषों के कठिन ताडन से रहित काम और रति की सुरत क्रीडाओं को निरन्तर नमस्कार करें, अथवा उनका रसास्वाद करें ॥ २ ॥

और भी–चन्द्रकला से भूषित, संभोग की अभिलाषा रखने वाले, देवताओं के प्रिय शंकर और पार्वती का संगम तुम दर्शकों को आनन्द दे ॥ ३ ॥

टिप्पणी—काम और रति से यहाँ चन्द्रपाल और कर्पूरमञ्जरी की प्रतीति होती है। उनकी सुरतक्रीडाओं से संभोगशृंगार की ध्वनि निकलती है ॥ २ ॥

अपि च (आणि च)—

ईसारोसप्पसादप्पणदिसु बहुसो सग्गगंगाजलेहिं
आ मूलं पूरिदाए तुहिणअरकलारुप्पसिप्पीअ रुद्दो ।
जोण्हामुत्ताहलिल्लं णदमउलिणिहिदग्गहत्थेहिं दोहिं
अग्घं सिग्घं व देंतो जअइ गिरिसुदापाअपंकेरुहाणं ॥४॥

(ईर्ष्यारोषप्रसादप्रणतिषु बहुशः स्वर्गगङ्गाजलै-
रामूलं पूरितया तुहिनकरकलारूप्यशुक्त्या रुद्रः ।
ज्योत्स्नामुक्ताफलाढ्यं नतमौलिनिहिताग्रहस्ताभ्यां द्वाभ्या-
मर्घ्यं शीघ्रमिव ददज्जयति गिरिसुतापादपङ्केरुहयोः ॥ ४ ॥)

अन्वयः—बहुशः ईर्ष्यारोषप्रसादप्रणतिषु द्वाभ्यां नतमौलिनिहिताग्रहस्ताभ्याम् स्वर्गगंगाजलैः आमूलम् पूरितया तुहिनकरकलारूप्यशुक्त्या ज्योत्स्नामुक्ताफलाढ्यम् अर्घ्यम् शीघ्रम् गिरिसुतापादपंकेरुहयोः ददत् इव रुद्रः जयति ।

व्याख्या—बहुशः पुनः पुनः ईर्ष्यारोषाभ्यां नतेः प्रसादार्थं क्रियमाणासु प्रणतिषु पादतलपतनेषु, द्वाभ्यां नतमौलौ नतमस्तके निहिताग्रहस्ताभ्यां निक्षिप्तं अग्रहस्ताभ्याम् स्वर्गगंगाजलैः आमूलं पूरितया तुहिनकरकला चन्द्रकला एव रूप्यशुक्तिः तया, ज्योत्स्ना एव मुक्ताफलं तेन आढ्यं युक्तम् अर्घ्यं शीघ्रं मानवृद्धिभयात् गिरिसुतायाः पार्वत्याः पादपंकेरुहयोः चरणकमलयोः ददन् इव रुद्रः शंकरः जयति ॥४॥

सरलार्थः—स्वमस्तके गङ्गां स्थितां दृष्ट्वा पार्वत्याः ईर्ष्या तथा च रोषः

और भी—शिवजी के मस्तक पर गङ्गा को देखकर उत्पन्न पार्वती की ईर्ष्या और क्रोध को शान्त करने के लिये उनके पैरों पर वार वार पड़ते हुये तथा अपने झुके हुये मस्तक पर रखे हुये दोनों अग्रहस्तों द्वारा गङ्गा जल से अत्यन्त पूरित चन्द्र-कलारूपी सीप से चन्द्रिकारूपी मोती से युक्त अर्घ्य को शीघ्र २ पार्वती के चरणों में देते हुये भगवान् शंकर सर्वश्रेष्ठ हैं ॥ ४ ॥

टिप्पणी—'बहुशः' इस कथन से पार्वती के अत्यन्त मानिनी होने की व्यञ्जना होती है। अर्घ्यदान में शीघ्रता इसलिये कि कहीं पार्वती का मान और न बढ़ जाय। पार्वती के चरणों में चन्द्रकला का संबन्ध उनके कामावेश को बढ़ाने के लिये है ॥ ४ ॥



[नान्द्यन्ते]

सूत्रधारः—[परिक्रम्य नेपथ्याभिमुखमवलोक्य] । किं उण णिट्टपउट्टो विअ दीसदि अम्हाणं कुसीलवाणं परिजणो,—जदो एक्का पत्तोच्चिआइं सिअआइं उच्चिणेदि । इअरा कुसुमावलीओ गुंफेदि । अण्णा पडिसीसआइं पडिसारेदि । कावि क्खु वण्णिआओ पट्टए वट्टेदि । एस वंसे ठाविदो धाणो । इअं वोणा पडिसारीअदि । इमे तिण्णि मिअंगा सज्जीअंति । एस कांसताल्लाणं पक्खाल्लणुज्जलाणं हल्लवोलो । एदं धुआगीदं आलवीअदि । ता किंचि कुडुंवं आकारिअ पुच्छिस्सं ? (किं पुनर्नृत्यप्रवृत्त इव दृश्यतेऽस्माकं कुशीलवानां परिजनः,—यत एका पात्रोचितानि सिचयानि उच्चिनोति । इतरा कुसुमावलीर्गुम्फति । अन्या प्रतिशीर्षकाणि प्रसारयति । काऽपि खलु वर्णिकाः पट्टे वर्त्तयति । एष वंशे स्थापितो ध्वानः । इयं वीणा

संजातः, तस्य दूरीकरणाय शिवः पार्वत्याः चरणयोः पुनः पुनः पतन्नास्ते । एतदवसरे कविरुत्प्रेक्षते—यथा कश्चिद्भक्तः स्वदेवताप्रसादनार्थं जलपूरितया शुक्त्या मुक्तायुक्तं प्रणामपूर्वमर्घ्यं स्वहस्ताभ्यां ददाति, एवमेव शंकरः गंगाजलपूरितया चन्द्रकलारूपिशुक्त्या ज्योत्स्नामुक्ताफलं संमितमर्घ्यं पार्वती चरणकमलयोः शीघ्रं निवेदयन्निव प्रतिभाति ।

सूत्रधार—(घूम कर और नेपथ्य की ओर देखकर) हमारा नट समुदाय तो नृत्य में लगा हुआ सा दीखता है—क्योंकि कोई नही तो पात्रों के लिये उचित वस्त्रों को ठीक कर रही है । कोई माला बना रही है । कोई पगड़ियां फैला रही है । कोई चित्रफलक पर कलम चला रही है । यह वेणु बजाना प्रारम्भ हुआ,

---

टिप्पणी—नन्दयति सभ्यान् इति नान्दी-सभ्यों को आनन्द देने वाली । अथवा नन्दयति देवान् इति नान्दी-देवताओं को प्रसन्न करने वाली । देवताओं के लिये नमस्कार अथवा सामाजिकों के लिये आशीर्वाद स्वरूप काव्यार्थ की सूचना देने वाला श्लोक नान्दी कहलाता है । नाटक की निर्विघ्न परिसमाप्ति तथा सामाजिकों के कल्याण के लिये यह

प्रसार्यते । इमे त्रयो मृदङ्गाः सज्ज्यन्ते । एष कांस्यतालानां प्रमार्जितानां क्वणनः । एतद्ध्रुवागीतम् आलप्यते । ननु किमिति कुटुम्बमात्मनं पृच्छामि ?) [नेपथ्याभिमुखमवलोक्य संज्ञापयति]

[ततः प्रविशति पारिपार्श्विकः]

पारिपार्श्विकः—आणवेदु भावो । (आज्ञापयतु भावः)

सूत्रधारः—[विचिन्त्य] किं उण णिच्चुपअट्टा विअ दीसध ? (किं पुनर्नृत्यप्रवृत्ता इव दृश्यध्वे ?)

पारिपार्श्विकः—भाव ! सट्टअं णच्चिदव्वं । (भाव ! सट्टकं नर्तितव्यम्)

यह वीणा साफ की जा रही है । यह तीन तरह के मृदङ्ग (लेपादि के द्वारा) सजाये जारहे हैं । यह साफ करने से चमकते हुये करतालों का शब्द है । यह ध्रुवागीत चल रहा है । तो क्यों न साथियों को बुलाकर पूछूं ।

(पर्दे की ओर देखकर नाम लेकर पुकारता है)

(तब पारिपार्श्विक (सूत्रधार का सहयोगी दूसरा नट) रंगमंच पर आता है)

पारि०—श्रीमान् आज्ञा दें ।

सूत्र०—(विचार कर) तुमलोग नृत्य की तैयारी में लगे हुये से दिखाई पड़ते हो।

पारि०—महाशय ! सट्टक का अभिनय करना है ।

मंगलाचरण किया जाता है–'यन्नाट्यवस्तुनः पूर्वं रङ्गविघ्नोपशान्तये कुशीलवाः प्रकुर्वन्ति पूर्वरङ्गः स उच्यते । प्रत्याहारादिकान्यङ्गान्यस्य भूयांसि यद्यपि । तथाप्यवश्यं कर्तव्या नान्दी विघ्नोपशान्तये ॥ आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते । देवद्विजनृपादीनां तस्मात् नान्दीति संज्ञिता ॥ (सा. द.) । यहां पर यह नान्दी आठ पद की है । सूत्रधार मध्यम स्वर से नान्दीपाठ करता है ।

सूत्रधार—रङ्गमञ्च का प्रबन्धक–दिग्दर्शक–नाटकीय कथा के सूत्र को धारण करनेवाला। 'नर्तनीयकथासूत्रं प्रथमं येन सूच्यते । रङ्गभूमिं समाक्रम्य सूत्रधारः स उच्यते' (सं. स.)

नेपथ्य—सजावट, वेशभूषा, वेशभूषाधारण करने का स्थान, यह प्रायः यवनिका के पीछे होता है ।



सूत्रधारः—को उण तस्स कई ? (कः पुनस्तस्य कविः ?)

पारिपार्श्विकः—

भाव ! कहिज्जदु एदं को भणई रअणिवल्लहसिहंडो ? ।
रहुउलचूडामणिणो महेंदपालस्स को अ गुरु ? ॥ ५ ॥

(भाव ! कथ्यतामेतत् को भण्यते रजनीवल्लभशिखण्डः ? ।
रघुकुलचूडामणेर्महेन्द्रपालस्य कश्च गुरुः ? ॥ ५ ॥)

सूत्रधारः—[विचिन्त्य] पण्होत्तरं क्खु एदं । [प्रकाशम्] राअसेहरो । (प्रश्नोत्तरं खलु एतत् । राजशेखरः)

पारिपार्श्विकः—सो एदस्स कई । (स एतस्य कविः)

सूत्रधारः—किं सट्टअं ? (किं सट्टकम् ?)

पारिपार्श्विकः—[स्मृत्वा] कधिदं च्चेव्व छइल्लेहिं । (कथितमेव विदग्धैः)

अन्वयः—भाव, रजनीवल्लभशिखण्डः कः ? कश्च रघुकुलचूडामणेः महेन्द्रपालस्य गुरुः भण्यते, एतत् कथ्यताम् ।

व्याख्या—भाव = हे विद्वन्, रजन्याः वल्लभः चन्द्रः अस्ति शिखण्डः शिरोभूषणं यस्य सः कः ? कश्च रघुकुलचूडामणेः रघुवंशशिरोमणेः महेन्द्रपालस्य एतन्नामकस्य संज्ञः गुरुः भण्यते कथ्यते । एतत् कथ्यताम् उच्यताम् । रजनीवल्लभशिखण्डशब्दः राजशेखरस्य पर्यायः, अतः राजशेखरः अस्य सट्टकस्य कविरिति सूच्यते । भावशब्दः विद्वत्पर्यायः 'भावो विद्वान्' इत्यमरः ॥ ५ ॥

सूत्र०—तो फिर उसका कवि कौन है ?

पारि०—श्रीमन्, रजनीवल्लभशिखण्ड कौन हैं ? और रघुकुलशिरोमणि महेन्द्रपाल का गुरु कौन हैं, यह बतलाइये ॥ ५ ॥

सूत्रधार—(स्वगत) यह तो प्रश्न का उत्तर है । (प्रकाशमें) राजशेखर ।

पारि०—वह इस सट्टक का लेखक है ।

सूत्रधार—सट्टक क्या होता है ?

पारि०—(कुछ स्मरण कर) विद्वानोंने कहा ही है:—

पारिपार्श्विकः—सुणु, वण्णिदो ज्जेव्व तक्कालकइणं मज्झम्मि मिअंकलेहाकहाआरेण अवराइएण। (शृणु, वर्णित एव तत्काल-कवीनां मध्ये मृगाङ्कलेखाकथाकारेण अपराजितेन।

जधा (यथा)—

बालकई कइराओ णिब्भअराअस्स तह उवज्झाओ।
इत्ति अस्स परंपरए अप्पा माहत्तमारूढो ॥ ९ ॥

(बालकविः कविराजो निर्भयराजस्य तथोपाध्यायः।
इत्यस्य परम्परया आत्मा माहात्म्यमारूढः ॥ ९ ॥

सो अस्स कई सिरिराअसेहरो तिहुअणं पि धवलेंति।
हरिणंकपालिसिद्धिए णिक्कलंका गुणा जस्स ॥ १० ॥

(स अस्य कविः श्रीराजशेखरः त्रिभुवनमपि धवलयन्ति।
हरिणाङ्कप्रतिपङ्क्तिसिद्ध्या निष्कलङ्का गुणा यस्य ॥ १० ॥)

अन्वयः—कविराजः तथा निर्भयराजस्य उपाध्यायः बालकविः इति परम्परया अस्य आत्मा माहात्म्यम् आरूढः।

व्याख्या—कविषु राजते इति कविषु राजा वेति कविराजः कविशिरोमणिः, तथा निर्भयराजस्य महेन्द्रपालस्य उपाध्यायः गुरुः, बालकविः अभिनवकविः एवंप्रकारेण अस्य राजशेखरस्य आत्मा परम्परया माहात्म्यमारूढः महिमानं प्राप्तः। राजशेखरः स्वयमात्म-श्लाघां नाकरोत्, अपराजितनाम्ना कविना अस्य माहात्म्यं कीर्तितं तदेवात्र प्रशस्यते।

अन्वयः—अस्य स श्रीराजशेखरः कविः, यस्य निष्कलङ्काः गुणाः हरिणाङ्क-प्रतिपङ्क्तिसिद्ध्या त्रिभुवनमपि धवलयन्ति।

व्याख्या—अस्य सट्टकस्य रचयिता स प्रसिद्धः श्रीराजशेखर, यस्य विमलाः गुणाः चन्द्रप्रतिकूलतया भुवनत्रयमपि स्वैरसिद्ध्या धवलयन्ति चन्द्रस्तु सकलङ्कः

पारि०—सुनो, मृगाङ्कलेखा नामक कथा के लेखक तत्कालीन अपराजित कवि ने इसका वर्णन किया ही है। जैसेः—

बालकवि, कवियों में शिरोमणि एवं निर्भयराज महेन्द्रपाल का गुरु—इस प्रकार (गुरुशिष्य) की परम्परा से राजशेखर ने स्वयं बड़प्पन पाया ॥ ९ ॥

इस सट्टक के लेखक श्रीराजशेखर कविराज हैं, जिनके निष्कलङ्क गुणों से त्रिभुवन



सूत्रधारः—ता केण समादिट्ठा पउंजध ? (तत् केन समादिष्टाः प्रयुङ्ग्ध्वम् ?)

पारिपार्श्विकः—

चाउहाणकुलमौलिमालिआ राअसेहरकइंदगेहिणी ।
भत्तुणो किदिमवंतिसुंदरी सा पउंजइदुमेदमिच्छदि ॥११॥
(चाहुवानकुलमौलिमालिका राजशेखरकवीन्द्रगेहिनी ।
भर्त्तुः कृतिमवन्तिसुन्दरी सा प्रयोजयितुमेतदिच्छति ॥११॥)

किञ्च—

चंदपालधरणीहरिणंको चक्कवट्टिपअलाहणिमित्तं ।
एत्थ सट्टअवरे रससोत्ते कुंतलाहिवसुदं परिणेदि ॥१२॥
(चन्द्रपालधरणीहरिणाङ्कश्चक्रवर्त्तिपदलाभनिमित्तम् ।
अत्र सट्टकवरे रसस्रोतसि कुन्तलाधिपसुतां परिणयति ॥१२॥)

केवलं भूतलमेव प्रकाशयति, राजशेखरस्य तु चरितं कलङ्करहितं त्रिभुवनप्रकाशकं चेति। चन्द्रादुपमानाद्राजशेखरस्योपमेयस्याधिक्यं वर्णितम् , तेनात्र व्यतिरेकालङ्कारः।

व्याख्या—चाहुवानकुलस्य विख्यातक्षत्रियवंशस्य मौलिमालिका शिरोमाल्यभूता कुलालङ्कारभूता, राजशेखरकवीन्द्रस्य गेहिनी भार्या या अवन्तिसुन्दरी नाम सा स्वभर्तुः राजशेखरस्य कृतिम् एतत् कर्पूरमञ्जरीनामसट्टकं नाट्येन प्रदर्शयितुमिच्छति। कवेरेव भार्या एतस्य प्रयोजिकेति भावः ॥ ११ ॥

व्याख्या—चन्द्रपाल एव धरिणीहरिणाङ्कः भूचन्द्रः चक्रवर्तिपदस्य लाभाय

उज्ज्वल हो रहा है। चन्द्रमा तो केवल एक भूतल को ही प्रकाशित करता है, ये तो तीनों लोकों में प्रसिद्ध हैं।

सूत्र०—किसकी आज्ञापाकर तुमलोग (इसका) प्रयोग (अभिनय) कर रहे हो।

चौहान कुल में उत्पन्न हुई, राजशेखर कवीन्द्र की पत्नी अवन्ति सुन्दरी अपने पति की इस रचना का अभिनय कराना चाहती है ॥ ११ ॥

और भी—पृथिवी का चन्द्रमा राजा चन्द्रपाल चक्रवर्तीपद की प्राप्तिके लिये

देवी—देव ! अहं पि तुज्झ पडिमल्लिआ भणिस्सं ।
(देव ! अहमपि तव प्रतिमल्लिका भणिष्यामि)
जधा (यथा)—

फुरंति दंतरअणाइं गदे तुसारे
ईसीसि चंदणरसम्मि मणः कुणंति ।
एण्हिं सुवंति घरमज्झमसालिआसु
पाअंतपुंजिअपडं मिहुणाइं पेच्छ ॥ १४ ॥

(स्फुरन्ति दन्तरत्नानि गते तुषारे
ईषदीषच्चन्दनरसे मनः कुर्वन्ति ।
इदानीं स्वपन्ति गृहमध्यमशालिकासु
पादान्तपुञ्जितपटं मिथुनानि प्रेक्षस्व ॥ १४ ॥)

अन्वयः—इदानीं तुषारे गते दन्तरत्नानि स्फुरन्ति, मिथुनानि चन्दनरसे ईषत् ईषत मनः कुर्वन्ति, गृहमध्यमशालिकासु पादान्तपुञ्जितपटम् स्वपन्ति प्रेक्षस्व।

व्याख्या—इदानीम् अधुना, तुषारे शीतर्तौ, गते व्यतीते, सति (स्त्रीपुरुषाणां) दन्तरत्नानि दन्ता एव मणयः स्फुरन्ति विकसितानि भवन्ति, मिथुनानि द्वन्द्वानि स्त्रीपुरुषरूपाणि, चन्दनरसे तदाद्युगन्धद्रव्यविलेपने इति यावत्, ईषद् ईषद् अल्पाल्पम् यथास्यात्तथा, मनः चित्रम्, कुर्वन्ति योजयन्ति, गृहमध्यशालिकासु गृहमध्यवर्तिस्थानेषु पादान्तपुञ्जितपटं पादान्तेषु चरणान्तिमभागेषु पुञ्जिता एकत्र-कृताः, राश्योचिता इति यावत्, पटा आवरणवस्त्राणि यस्मिन् कर्मणि तद्यथास्यात्तथा स्वपन्ति निद्रां कुर्वन्ति, प्रेक्षस्व अवलोकय ॥ १४ ॥

देवी—महाराज ! मैं भी तुम्हारी तरह वसन्तवर्णन करूँगी । जैसे कि:—

अब शीत के समाप्त हो जाने पर स्त्रीपुरुषों के दांत चमकने लगे हैं। चन्दन के लेप की भी कुछ २ इच्छा स्त्रीपुरुषों की हो चली है। अपने २ घरों के मध्यदेश में अब स्त्रीपुरुष सोने लगे हैं और रात्रि में शीत के बढ़ जाने के भय से चादर केवल पैरों के पास किनारे बटोर लेते हैं ॥ १४ ॥

[नेपथ्ये]

वैतालिकः—जअ पुव्वदिअंगणाभुअंग! चंपाचंपककण्णऊर! लीलाणिज्जिअराढदेस! विक्कमक्कंतकामरूअ? हरिकेलीकेलिआरअ! अवमाणिअजच्चसुवण्णवण्ण! सव्वंगसुंदरत्तणरमणिज्ज! सुहाअ दे होदु सुरहिसमारंभो। इह हि—(जय पूर्वदिगङ्गनासुजङ्ग! चम्पाचम्पककर्णपूर! लीलानिर्जितराढदेश! विक्रमाक्रान्तकामरूप! हरिकेलीकेलिकारक! अपयानितजात्यसुवर्णवर्ण! सर्वाङ्गसुन्दरत्वरमणीय! सुखाय ते भवतु सुरभिसमारम्भः। इह हि—)

(नेपथ्य में)

वैतालिक—पूर्वदिशा के स्वामी। चम्पा नगरी का पालन करने वाले। राढदेश को खेल खेल में ही जीतने वाले। कामरूप देश के विजेता। हरिकेली देश में विहार करने वाले, पराजित किये हुये लोगों में सुवर्ण की तरह चमकने वाले, सब अङ्गों के सौन्दर्य से युक्त हे राजन्! तुम्हारी जय हो, वसन्त ऋतु का आगमन तुम्हारे लिये सुखकारक हो। यहाँ पर:—

टिप्पणी—चम्पा–पूर्व दिशा के एक नगर का नाम–आधुनिक भागलपुर, चम्पकानां कर्णपूरः=चम्पककर्णपूरः–चम्पायाः चम्पककर्णपूरः=चम्पाचम्पककर्णपूरः, तत्सम्बुद्धौ (तत्पु०)। पूर्वा दिक् एव अङ्गना=पूर्वदिगङ्गना तस्याः भुजंगस्तत्सम्बुद्धौ=पूर्वदिगंगनाभुजंग (तत्पु०)–भुजंग=प्रेमी। लीलया निर्जितः राढदेशः येन सः, तत्संबुद्धौ लीलानिर्जितराढदेश (बहु०)। राढ–बंगाल के एक प्राचीन नगर का नाम; आधुनिक बर्दवान। विक्रमेण आक्रान्तः कामरूपः येन सः तत्सम्बुद्धौ विक्रमाक्रान्तकामरूप (बहुव्रीहि)। कामरूप–आसाम प्रान्त का पश्चिमी हिस्सा। हरिकेल्यां एतदाख्यदेशे एतदाख्यकामिन्यां वा केलिकारकः, तत्सम्बुद्धौ हरिकेलीकेलिकारक (तत्पु०)। हरिकेली–बंगाल के एक भाग का नाम, अथवा इस नाम की कोई स्त्री। अपमानितेषु जात्येषु सुवर्णः वर्णः यस्य तत्सबुद्धौ–अपमानितजात्यसुवर्णवर्ण (बहु०) पराजित किये हुये कुलीनों में सुवर्ण की तरह चमकने वाला। किन्हीं २ हस्तलिखित प्रतियों में 'अवमानिदकण्णसुवण्णदाण (अपमानितकर्णसुवर्णदान)' यह पाठ मिलता है। इसके अनुसार यह अर्थ होगा–अपमानितं कर्णसुवर्णानां दानं येन सः–अस्वीकृत कर दिया है कर्णसुवर्ण देश के लोगों का दान जिसने–कर्णसुवर्ण आधुनिक मुर्शिदाबाद का नाम माना जा चुका है, इस लिये यह अर्थ भी ठीक हो सकता है, क्योंकि साथ में और भी स्थानों के नाम आ–चुके हैं। अपने देश को आक्रमण से बचाने के लिये

पण्डीणं गंडवालीपुलअणकुसला कंचिवामाणणीणं
माणं मो [illegible] णा [illegible] अणा [illegible] ।
कण्णाडीणं कुणंता [illegible] कुंतलीणं पिएसुं
[illegible] पवणा [illegible] वाआ ॥१५॥

(पाण्डीनां गण्ड [illegible] कुशलाः काञ्चीवामाणनीनां
मानं [illegible] ।
कर्णाटीनां कुर्वन्तः [illegible] कुन्तलीनां प्रियेषु

अन्वयः—[illegible] मानं [illegible],
[illegible], [illegible] कुर्वन्तः,
कुन्तलीनां प्रियेषु [illegible] शीतलाः मलयाः वान्ति ॥

व्याख्या—[illegible] कपोलयोः
[illegible] काञ्चीदेशोत्पन्नानां
[illegible] प्रिये [illegible] मार्गं प्रापयितुं
[illegible] मार्गं तासां
[illegible] कर्णाटीनां कर्णाटदेशोत्पन्नानाम् कुन्तलीनां
कुन्तलदेश [illegible] कुर्वन्तः [illegible], कुन्तलीनां कुन्तलदेश-

पाण्ड्य देश की रमणियों के कपोलों में रोमाञ्च उत्पन्न करने वाली, काञ्ची देश की कामिनियों के अपने प्रिय सम्बन्धी प्रणयकोप को साथ प्रातः भंग

[illegible] के [illegible] का ज्ञान कैसा [illegible] हो सकता है । पाण्डी = पाण्ड्य देश की स्त्रियों का नाम । पाण्ड्य = भारत के सुदूर दक्षिण का एक देश जो कि चोलदेश के दक्षिण-पश्चिम में पड़ता है । मलय पर्वत और ताम्रपर्णी नदी से इसकी स्थिति निश्चित होती है । आधुनिक तिनेवली यह स्थान ही है । काञ्ची=प्राचीन द्रविड देश की राजधानी, आधुनिक काञ्जीवरम् जो मद्रास के दक्षिण-पश्चिम में ४२ मील दूर पर वेगावती नदी पर स्थित है । चोल=कावेरी के तट पर स्थित और सम्भवतः आधुनिक मैसूर का दक्षिण भागीय एक प्राचीन देश। कर्णाट=भारतीय प्रायद्वीप का दक्षिण का एक देश, आजकल का कर्नाटक। कुन्तल=चोलदेश के उत्तर में एक प्राचीन देश, आजकल के हैदराबाद का दक्षिण-पश्चिमी हिस्सा । इस श्लोक से चन्द्रपाल के इन २ देशों के राजा होने की व्यञ्जना होती है । दक्षिणी हवाओं के कामोद्दीपक होने का वर्णन किया गया है ॥



गुम्फन्तः स्नेहग्रन्थि मलयशिखरिणः शीतला वान्ति वाताः ॥१५॥)

(अत्रैव)

द्वितीयः—

जादं कुंकुमपंकलीढमरठीगंडप्पहं चंपअं
थोआवट्टिअदुद्धमुद्धकलिआ पप्फुल्लिया मल्लिआ।
मूले सामलमग्गलग्गभमलं लक्खिज्जए किंसुअं
पिज्जंतं भमलेहिं दोहिं वि दिसाभाएसु लग्गेहिं व ॥ १६ ॥
(जातं कुङ्कुमपङ्कलीढमहाराष्ट्रीगण्डप्रभं चम्पकं
स्तोकावर्त्तितदुग्धमुग्धकलिका प्रोत्फुल्लिता मल्लिका ।

भवानां कामिनीनाम् प्रियेषु कान्तेषु स्नेहग्रन्थि प्रेमपाशं गुम्फन्तः जनयन्तः मलयपर्वतस्य शीतलाः पाताः पादवः वान्ति वहन्ति । अयं मलयसमीरणः नितरां कामोद्दीपक इत्युच्यते ॥ १५ ॥

अन्वयः—चम्पकम् कुङ्कुमपङ्कलीढमहाराष्ट्रीगण्डप्रभम्, स्तोकावर्तितदुग्धमुग्धकलिका मल्लिका प्रोत्फुल्लिता, किंशुकम् मूले श्यामलम् अग्रलग्नभ्रमरं द्वाभ्यामपि दिशाभागेषु लग्नाभ्याम् मधुपाभ्याम् पीयमानम् इव लक्ष्यते ।

व्याख्या—चम्पकपुष्पं कुङ्कुमरागावलिप्तमहाराष्ट्रीकपोल इव पीतरक्तम् विद्यते, ईषदालोडितं यत् दुग्धं तद्वत् सुन्दरीभिः कलिकाभिः युक्ता मल्लिका नाम

करने वाली, चोलदेश की चपल नारियों को संभोग के लिये प्रेरित करने वाली, कर्णाट देश की स्त्रियों के केशपाश को शिथिल बनाती हुई, कुन्तल देश की स्त्रियों को अपने प्रेमियों के आलिंगन पाश में बांधती हुई मलयाचल की ठण्ढी हवायें चल रही हैं ॥ १५ ॥

दूसरा वैतालिक—कुंकुम राग लगे हुए महाराष्ट्र की स्त्रियों के कपोलों की तरह चम्पा फूल पीला और लाल हो गया है। चूंकि महाराष्ट्र की स्त्रियाँ गौरवर्ण की

टिप्पणी—महाराष्ट्रीणां गण्डः = महाराष्ट्रीगण्डः, कुङ्कुमपङ्केन लीढः = कुङ्कुमपङ्कलीढः, कुङ्कुमपङ्कलीढश्चासौ महाराष्ट्रीगण्डः = कुङ्कुमपङ्कलीढमहाराष्ट्रीगण्डः, तस्य प्रभा इव प्रभा अस्ति यस्य तत् = कुङ्कुमपङ्कलीढमहाराष्ट्रीगण्डप्रभम् । स्तोकम् आवर्तितम् यत् दुग्धं =

मूले श्यामलमग्रलग्नभ्रमरं लक्ष्यते किंशुकं
पीयमानं मधुपाभ्यां द्वाभ्यामपि दिशाभागेषु लग्नाभ्यामिव ॥१६॥)

राजा—पिए विब्भमलेहए ! एक्को अहं वड्ढावओ तुज्झ, एक्का तुमं वड्ढाविआ मज्झ। किं उण दुवे वि अम्हे वड्ढाविआ कंचणचंड-रअणचंडेहिं वंदीहिं ? ता विब्भमगव्वप्पअट्टाविअं तरुणीणं, णट्टावअं मलअमारुदंदोलिदालणट्टणीणं, चारुप्पपंचिदपंचमं कलअंठिकंठकंदलेसु, कंदलिअकंदप्पकोअंडदंडखंडिदचंडिमं, सिणिद्धबंधु वसुंधरापुरंधीए विसारिअ प्पसिदिप्पमाणे अच्छिणी महुच्छवं जहिच्छं पेक्खदु देवी। (प्रिये विभ्रमलेखे ! एकोऽहं वर्द्धापकस्तव, एका त्वं वर्द्धापिका मम। किं पुनर्द्वावपि आवां वर्द्धापितौ काञ्चनचण्ड–रत्नचण्डाभ्यां वन्दिभ्याम् ? तद्विभ्रमगर्वप्रवर्त्तकं तरुणानां नर्त्तकं मलयमारुतान्दोलितलतानर्त्तकीनां, चारुप्रपञ्चित-

---

पुष्पलता विकसिता वर्तते किंशुकपुष्पं मूले तु स्वभावादेव श्यामवर्णम्, अग्रभागे च तस्य भ्रमरोः संलग्नाः विद्यन्ते, अतः द्वयोरपि स्थानयोः द्वाभ्यां भ्रमराभ्याम् पीयमानमिव प्रतीयते ॥ १६ ॥

होती हैं, अतः ऐसा कहा गया है। कुछ २ बिलोए हुए दुग्ध की तरह सुन्दर कलियों वाली मल्लिका पुष्पलता भी खिल उठी है। मूलभाग में काले वर्ण का तथा अग्रभाग में भौंरों से युक्त पलाश कुसुम ऐसा लगता है जसे कि इसके दोनों ओर दो भौंरें बैठे हों और इसका रसपान कर रहे हों ॥ १६ ॥

राजा—प्रिये विभ्रमलेखे ! (वसन्तवर्णन से) मैं तुम्हें प्रसन्न करता हूँ और तुम मुझे प्रसन्न करती हो, किन्तु रत्नचण्ड और काञ्चनचण्ड यह दोनों वैतालिक

स्तोकावर्तितदुग्धम् तद्वत् मुग्धाः कलिकाः यस्याः=स्तोकावर्तितदुग्धमुग्धकलिका। पीयमानम्=पा पाने–शानच्, कर्मवाच्य ॥ १६ ॥

टिप्पणी—विभ्रमश्च गर्वश्च तौ विभ्रमगर्वौ तयोः प्रवर्तकस्तम्=विभ्रमगर्वप्रवर्तकम्। लता एव नर्तक्यः=लतानर्तक्यः, मलयमारुतेन आन्दोलिताः याः लतानर्तक्यः, तासाम्=मलयमारुतान्दोलितलतानर्तकीनाम्। चारु प्रपञ्चितः पञ्चमः येन, तम्=चारुप्रपञ्चित-



पञ्चमं कलकण्ठीकण्ठकन्दलेषु, कन्दलितकन्दर्पकोदण्डदण्डखण्डित-चण्डिमानं, स्निग्धबान्धवं वसुन्धरापुरन्ध्र्याः विस्तार्य प्रसृतिप्रमाणे अक्षिणी मधूत्सवं यथेच्छं प्रेक्षतां देवी)

देवी—जधा किल णिवेदिदं वंदीहिं; पउट्टा उजेव्व मलआणिला। (यथा किल निवेदितं वन्दिभ्याम्; प्रवृत्ता एव मलयानिलाः।)

तधा अ (तथाहि)—

लंकातोरणमालिआ तरलिणो कुंभुब्भवस्सासमे
मंदंदोलिअचंदणद्दुमलदाकप्पूरसंपक्किणो।
कंकोली कुलकंपिणो फणिलदाणिप्फुल्लणुल्लावआ
चंडं चुंबिदतंबवण्णि सलिला वाअंति चित्ताणिला ॥१७॥

(लङ्कातोरणमालिकातरलिनः कुम्भोद्भवस्याश्रमे

व्याख्या—लंकायाः तोरणं बहिर्द्वारं तत्र विन्यस्ता याः मालिकाः हाराः तासां

हम दोनों को प्रसन्न करते हैं। तरुणियों में विलास और गर्व उत्पन्न करने वाला, मलयाचल की हवाओं से लहराती हुई लतारूपी नर्तकियों को नचाने वाला, कोकिलों के कण्ठसमूह में पञ्चम स्वर प्रेरित करने वाला, नवप्रादुर्भूत कामदेव के धनुष के दण्ड से प्रेमिकाओं के अपने प्रियसम्बन्धी कोप को दूर करने वाला, बन्धु-बान्धवों में प्रेम उत्पन्न करने वाला वसुन्धरारूपी रमणी का यह वसन्तोत्सव, हे देवि, अपनी आंखों को हथेली बराबर फैलाकर इच्छानुसार देखो।

देवी—जैसा कि वैतालिकों ने कहा, ठीक ही है। मलयाचलकी हवायें वास्तव में चलने लगी हैं। जैसे किः—

लंका नगरी के बहिर्द्वार पर स्थित मालाओं को हिलाने वाली, अगस्त्य ऋषि

पञ्चमम्। (बहु०) कन्दलितश्चासौ कन्दर्पः=कन्दलितकन्दर्पः तस्य कोदण्डः=कन्दलितकन्दर्पकोदण्डस्तस्य दण्डेन खण्डितः चण्डिमा यस्मिन् तम्=कन्दलितकन्दर्पकोदण्डदण्डखण्डितचण्डिमानम्, प्रसृतिः=वितस्ति-हथेली, प्रसृतिः प्रमाणं ययोस्ते प्रसृतिप्रमाणे। बन्दी=वैतालिक, कन्दल (न०)=समूह। चण्डिमा (पु०)=अत्यन्त क्रोधी होना।

सन्दान्दोलितचन्दनद्रुमलताकर्पूरसम्पर्किणः ।
कङ्कोलीकुलकम्पिनः फणिलतानिष्पष्टनर्त्तका-
श्चण्डं चुम्बितताम्रपर्णीसलिला वान्ति चैत्रानिलाः ॥१७॥)

अवि अ (अपि च)—

माणं मुंचध देह वल्लहजणे दिट्ठिं तरंगुत्तरं
तारुण्णं दिअहाइं पंच दह वा पीणत्थणत्थंभणं ।
इत्थं कोइलमंजु सिंजणमिसा देअस्स पंचेसुणो
दिण्णा चित्तमहूसवेण भुअणे आणा व्व सव्वंकसा ॥१८॥

(मानं मुञ्चत ददत वल्लभजने दृष्टिं तरङ्गोत्तरां

तरलिनः प्रकम्पिनः, कुम्भोद्भवस्य अगस्त्यस्य आश्रमे तपोवने (दक्षिणदिशि) मन्दम् आन्दोलिताः ये चन्दनद्रुमाः लताकर्पूराश्च तेषां सम्पर्किणः सम्पर्कवन्तः कङ्कोलीनां लताविशेषाणां कुलानि कम्पयन्तीति कङ्कोली कुलकम्पिनः, फणिलतानां ताम्बूलवल्लीनां निष्पष्टं मन्दं नर्तकाः, चण्डम् अत्यन्तम् ताम्रपर्णीसलिलस्पर्शवन्तः चैत्रानिलाः चैत्रमासीयाः वायवः वान्ति प्रचलन्ति। अत्र वायोः शैत्यसौरभ्यमान्द्यादि-गुणा उक्ताः ॥ १७ ॥

अन्वयः—मानं मुञ्चत, वल्लभजेन तरंगोत्तरां दृष्टिं ददत, पीनस्तनस्तम्भनम् तारुण्यं पञ्च दश वा दिवसानि, इत्थं कोकिलमञ्जुशिञ्जनमिषात् देवस्य पञ्चेषोः सर्वंकला आज्ञा इव चैत्रमहोत्सवेन दत्ता ।

व्याख्या—मानं प्रियजनेषु कोपं मुञ्चत त्यजत, वल्लभजने प्रियजने तरंगो-

---

के आश्रम में अर्थात् दक्षिण दिशा में मन्द मन्द हिलती हुई चन्दन और कर्पूर की लताओं के सौरभ से युक्त, कङ्कोली (काली मिर्च) लताओं को कंपाने वाली, ताम्बूल वल्लियों को मन्द मन्द नचाने वाली और ताम्रपर्णी नदी के जल का अत्यन्त स्पर्श लिए हुई चैत्र मास की हवायें चल रही हैं। यहाँ पर वायु के शैत्य, मान्द्य और सौरभ इन तीनों गुणों का वर्णन किया गया है ॥ १७ ॥

और भी—मान को छोड़ो, प्रियजनों को प्रेमभरी दृष्टि से देखो, स्तनों के उभार



तारुण्यं दिवसानि पञ्च दश वा पीनस्तनस्तम्भनम् ।
इत्थं कोकिलमञ्जुशिञ्जनमिषाद् देवस्य पञ्चेषो-
र्दत्ता चैत्रमहोत्सवेन भुवने आज्ञेव सर्वङ्कषा ॥ १८ ॥)

विदूषकः—भो ! तुम्हाणं सव्वाणं मज्झे अहम् एक्को काल-क्खरिओ, जस्स मे ससुरस्स ससुरो पंडिअघरे पुत्थि आइं वहंतो आसि । (भोः ! युष्माकं सर्वेषां मध्येऽहमेकः कालाक्षरिकः, यस्य मे श्वशुरस्य श्वशुरः पण्डितगृहे पुस्तकानि बहन्नासीत्)

तराम् अत्युत्सुकाम् दृष्टिं ददत प्रियतमान् सोत्कण्ठं पश्यतेति भावः । पीनयोः स्थूलयोः स्तनयोः स्तम्भनं यस्मिन् तत् पीनस्तनस्तम्भनम् पीनपयोधरस्थापकम् तारुण्यं यौवनं पञ्चदश वा दिवसानि एव तिष्ठति न शाश्वतमिति भावः । इत्थमुक्त-प्रकारं कोकिलानां मञ्जु मधुरं यत् शिञ्जनं कूजनं तस्य मिषात् छलेन देवस्य पञ्चेषोः कामदेवस्य सर्वंकणा सर्वव्यापिनी आज्ञा इव चैत्रमहोत्सवेन वसन्तमहोत्सवेन दत्ता प्रसारिता ॥ १८ ॥

से युक्त यह यौवन केवल पांच दस दिन तक हो रहने वाला है । कोकिल की मधुर कूक के द्वारा कामदेव की इस सर्वव्यापी आज्ञा को चैत्रमहोत्सव घोषित करता सा जान पड़ता है ॥ १८ ॥

विदूषक—**तुम सब में मैं ही एक मूर्ख हूँ । मेरे ससुर का ससुर भी पंडितों के यहाँ पुस्तकें उठाता रहता था ।**

टिप्पणी—पञ्च इषवः सन्ति यस्य तस्य पञ्चेषोः=कामदेवस्य । कामदेव को पञ्चवाण इसलिए कहा जाता है कि उसके पांच वाण हैं यथा—अरविंद, अशोक, आम्र, नील कमल और नवमल्लिका । अरविदमशोकञ्च चूतं च नवमल्लिका । नीलोत्पलं च पंचैते पञ्चवाणस्य सायकाः ॥ (अमर) यहाँ पर मञ्जुशिंजन का प्रतिषेध करके आज्ञा की स्थापना की गई है अतः अपह्नुति अलंकार है, उसके साथ ही आज्ञा की उत्प्रेक्षा की गई है । इसलिए उत्प्रेक्षा और अपह्नुति का संकर है । सर्वंकषा-सर्वं कषति या सा सर्वंकषा-सर्व+कष्+अ+आ=सर्वंकषा-खन् प्रत्ययः स्त्रीलिंग का चिह्न आ प्रत्यय और सर्व के म् जोड़ दिया गया है ॥ १८ ॥

ये गालितस्य महिषीदध्नः सदृक्षाः
ते किञ्च मुग्धविचकिलप्रसूनपुञ्जाः ॥ १६ ॥)

विचक्खणा—णिअकंतारंजणजोग्गं दे वअणं । (निजकान्ता-रञ्जनयोग्यं ते वचनम्)

विदूषकः—ता उआरवअणे ! तुमं पढ । (तत् उदारवचने ! त्वं पठ)

देवी—(किञ्चित् स्मित्वा) सहि विअक्खणे ! अम्हाणं पुरदो तुमं गाढं कइत्तणेण उत्ताणा होसि, ता पढ संपदं अज्जउत्तस्स पुरदो सअ-किदं किंपि कव्वं, जदो तं कव्वं जं सहाए पढ़ीअदि, तं सुवण्णं जं कसवट्टए णिवट्टेदि, सा घरिणी जा पिअं रंजेदि, सो पुत्तो जो कुलं उज्जलेदि । (सखि विचक्षणे ! अस्माकं पुरतस्त्वं गाढं कवित्वेन उत्ताना भवसि; तत् पठ साम्प्रतमार्यपुत्रस्य पुरतः स्वयं-कृतं किमपि काव्यम्; यतः तत् काव्यं यत् सभायां पठ्यते, तत् सुवर्णं यत् कषपट्टिकायां निवर्त्तते, सा गृहिणी या

वल्लभाः प्रियाः । किञ्च गालितस्य विलोडितस्य महिषीदध्नः सदृक्षाः सदृशाः ये मुग्धाः मनोहराः विचकिलानां तदाख्यतरूणां प्रसूनपुञ्जाः पुष्पसमूहाः ते च यत्र प्रिया इति ॥

विलोए हुए भैंस के दही के समान स्वच्छ विचकिल के फूलें भी मुझे बहुत प्रिय हैं।

विचक्षणा—तुम्हारी कविता तुम्हारी पत्नी को प्रसन्न कर सकती है ।

विदूषक—अयि प्रियभाषिणि ! तुम अपनी कोई कविता सुनाओ ?

देवी—(कुछ मुस्कराकर) सखि विचक्षणे ! हमारे सामने तुम कविता करने की बड़ी डींग मारती हो । आज आर्यपुत्र के सामने अपनी बनाई हुई कोई कविता

टिप्पणी—रञ्जनस्य योग्यम् = रञ्जनयोग्यम् । निजस्य कान्ता = निजकान्ता तस्याः रञ्जनयोग्यम् = निजकान्तारञ्जनयोग्यम् = निजप्रेयसीरञ्जकम् ।

कषपट्टिका = कसौटी ।



पतिं रञ्जयति, स पुत्रो यः कुलमुज्ज्वलयति)

विचक्षणा—जं देवी आणवेदि। (यत् देवी आज्ञापयति)

[पठति]—

जे लंकागिरिमेहलाहिं खलिदा संभोअखिण्णोरई
प्फारप्फुल्लफणावलीकवलणे पत्ता दरिद्दत्तणं।
ते एण्हिं मलआणिला विरहिणीणीसाससंपक्किणो
जादा झत्ति सिसुत्तणे वि वहला तारुण्णपुण्णा विअ ॥२०॥

(ये लङ्कागिरिमेखलायां स्खलिताः सम्भोगखिन्नोरगी-
स्फारोत्फुल्लफणावलीकवलने प्राप्ता दरिद्रत्वम्।

अन्वयः—ये मलयानिलाः लङ्कागिरिमेखलायां स्खलिताः, सम्भोगखिन्नोर-गीस्फारोत्फुल्लफणावलीकवलेन दरिद्रत्वम् प्राप्ताः, ते इदानीम् विरहिणीनिश्वास-सम्पर्किणः झटिति शिशुत्वे अपि वहलाः तारुण्यपूर्णाः इव जाता।

व्याख्या—ये मलयानिलाः मलयसमीरणाः लङ्कागिरेः लङ्कास्थितपर्वतस्य मेखलायां श्रोणिभागे स्खलिताः पतिताः, तथा सम्भोगेन खिन्नाः याः उरग्यः तासां स्फाराभिः उत्फुल्लाभिः फणावलीभिः कवलेन ग्रसेन दरिद्रत्वं क्षीणत्वम् प्राप्ताः, ते

पढ़ो। कविता उसी को कहते हैं जो सभा में पढ़ी जाय, सोना कसौटी पर कसने से ही शुद्ध या अशुद्ध कहा जा सकता है, स्त्री वही ठीक समझी जाती है जो पति को प्रसन्न करे, पुत्र वही अच्छा कहलाता है जो कुल को उज्ज्वल करे।

विचक्षणा—जैसी महारानी की आज्ञा। पढ़ती है :—

मलयाचल की वे हवाएँ जो लङ्का के पर्वत से रुक गई थीं और सम्भोग के बाद थकी हुई सर्पिणियों के अपने बड़े और फैले हुए फनों से सांस लेने के कारण

टिप्पणी—स्फाराः उत्फुल्लाश्च याः फणावल्यः=स्फारोत्फुल्लफणावल्यः। सम्भोगेन खिन्नाः=सम्भोगखिन्नाः, सम्भोगखिन्नाः याः उरग्यः, तासां स्फारोत्फुल्लफणावलीभिः कवलनं तस्मिन्, सम्भोगखिन्नोरगीस्फारोत्फुल्लफणावली कवलेन =सुरतक्लान्तभुजङ्गी विशालप्रवृद्ध-

सुन्दरी शब्दावली कनककटिसूत्र इव लोहकिङ्किणीमाला, प्रतिपट्ट इव त्रसरविरचना, गौराङ्गया इव चन्दनचर्चा न चारुत्वमवलम्बते। तथाऽपि त्वं वर्ण्यसे)

विचक्षणा—अज्ज ! मा कुप्प, का तुम्हेहिं सह पडिप्पद्धा ? जदो तुमं णाराओ विअ णिरक्खरो वि रअणतुलाए णिउंजी-असि। अहं उण तुले व्व लद्धक्खरा वि ण सुवण्णभंडे विणि-उंजी आमि। (अर्य ! मा कुप्य। का युष्माभिः सह प्रतिस्पर्द्धा ? यतस्त्वं नाराच इव निरक्षरोऽपि रत्नतुलायां नियुज्यसे। अहं पुनस्तु-लेव लब्धाक्षराऽपि न सुवर्णभाण्डे विनियुज्ये)

विदूषक:—एव्वं मह भणंतीए तुह वामं दक्खिणं अ जुहि-ट्ठिरजेट्ठभाआरणामहेअं अंगजुअलं उप्पाडइस्सं। (एवं मम

घुँघरू, वस्त्र की उलटी तरफ कसीदे का काम या गौरवर्ण वाली स्त्री के चन्दन का लगाना। लेकिन फिर भी तुम लोगों के द्वारा कवि मानी जाती हो।

विचक्षणा—आर्य ! क्रोध मत करो। मेरी तुम्हारे साथ बराबरी ही क्या ? तुम तो निरक्षर होते हुए भी नाराच की तरह रत्नों के तोलने में काम आते हो (रत्नों में यानी उच्च व्यक्तियों में तुम्हारी गिनती की जाती है) मैं साक्षर होते हुए भी सोने तौलने के काम में नहीं आती।

विदूषक—इस तरह मेरे संबन्ध में कहने पर मैं तेरे दोनों कान उखाड़ लूँगा।

टि०—प्रतिपट्ट=वस्त्र की उलटी तरफ। त्रसरविरचना=कसीदा काढ़ने का काम। चन्दनचर्चा=चन्दन लगाना। चारुत्वम्=सौन्दर्य–चारु+त्व (भाववाचक) चारुत्व।

टिप्पणी—नाराच=हीरे मोती तोलने के काम मे आने वाली घुमची और पत्थर। निरक्षर=अनपढ़, जिस पर कुछ लिखा न हो—मोती इत्यादि तोलने का सामान। लब्धाक्षरा=लब्धानि अक्षराणि यया सा लब्धाक्षरा (बहु०) पण्डित, अथवा जिस पर कुछ लिखा हो।



भणन्त्यास्तव वामं दक्षिणं च युधिष्ठिरज्येष्ठभ्रातृनामधेयमङ्गयुगलमुत्पा-टयिष्यामि)

विचक्षणा—अहं वि उत्तरफग्गुणीपुरस्सरणक्खत्तणामहेअं अंगं तुह झत्ति खंडिस्सं । (अहमपि उत्तरफल्गुनीपुरःसरनक्षत्र-नामधेयमङ्गं तव झटिति खण्डयिष्यामि)

राजा—वअस्स ! मा एव्वं भण, कइतमत्तणे ट्ठिदा एसा । (वयस्य ! मैवं भण, कवितमत्वे स्थितैषा)

विदूषकः—[सक्रोधम्] । उज्जुअं ता किं ण भणइ, अम्हाणं चेडिआ हरिअंद-णंदिअंद-कोट्टिसहालप्पहुदीणं वि पुरदो सुकइ त्ति? (ऋज्वेव तत् किं न भण्यते, अस्माकं चेठिका हरिचन्द्र-नन्दिचन्द्र-कोटिशहालप्रभृतीनामपि पुरतः सुकविरिति ?)

राजा—एव्वं णेदं । (एवमेतत ।)

विदूषकः—[सक्रोधं परिक्रामति] ।

विचक्षणा—तहिं गच्छ जहिं मे पढमा साडिआ गदा । (तत्र गच्छ, यत्र मे प्रथमा शाटिका गता)

विचक्षणा—मैं भी तुम्हारे हाथ शीघ्र काट डालूँगी।

राजा—मित्र ! ऐसा मत कहो। यह वस्तुतः कवि है।

विदूषक—(क्रोध के साथ) तो स्पष्ट ही क्यों न कह देते कि हमारी चेटी हरिचन्द्र-नन्दिचन्द्र और कोटिश हाल इत्यादि कवियों से भी बढ़कर हैं।

राजा—हाँ, ऐसा ही समझो।

विदूषक—क्रोध में घूमता है।

विचक्षणा—वहाँ जाओ, जहाँ मेरी पहली साड़ी गई अर्थात् मर जाओ।

टिप्पणी—युधिष्ठिरज्येष्ठभ्रातृनामधेयम् =कर्ण नामका । उत्पाटयिष्यामि =उत् पाटि + इ + ष्यामि ।

उत्तरफल्गुनीपुरःसरनक्षत्रनामधेयम् =हस्त नाम का । खण्डयिष्यामि = खण्टि + इ + ष्यामि (चुरा०) खण्डि =तोड़ना । शाटिका =साड़ी ।

विदूषकः—[वलितग्रीवम्]। तुमं उण तहिं गच्छ, जहिं मे मादाए पढमा दंतावली गदा। ईदिसस्स राअउलस्स भद्दं होदु, जहिं चेडिआ बम्हणेण समं समसीसिआए दीसदि। मइरा पंचगव्वं च एक्कस्सिं भंडए कीरदि, कच्चं माणिक्कं च समं आहरणे पउंजीअदि। (त्वं पुनस्तत्र गच्छ यत्र मे मातुः प्रथमा दन्तावली गता। ईदृशस्य राजकुलस्य भद्रं भवतु, यत्र चेटिका ब्राह्मणेन समं समशीर्षिकया दृश्यते, मदिरा पञ्चगव्यं चैकस्मिन् भाण्डे क्रियते, काचं माणिक्यं च समसाभरणे प्रयुज्यते)

चेटी—इह राअउले तं ते होदु कंठट्ठिदं, जं भअवं तिलोअणो सीसे समुव्वहदि, तेण च ते मुहं चूरीअदु जेण असोअतरू दोहदं लहदि। (इह राजकुले तत्ते भवतु कण्ठस्थितं, यत् भगवांस्त्रिलोचनः शीर्षे समुद्वहति। तेन च ते मुखं चूर्ण्यतां, येनाशोकतरुदोहदं लभते)

विदूषक—(गर्दन टेढ़ी कर) तू भी वहाँ जा जहाँ मेरी माता की पहिली दाँतों की पङ्क्ति गई अर्थात् मर जा। ऐसे राजकुल का कल्याण हो जहाँ दासी ब्राह्मण के साथ प्रतिस्पर्धा करती है। मदिरा और पञ्चगव्य एक ही पात्र में रक्खे जाते हैं और कांच मानिक एक साथ आभूषण में काम में लाए जाते हैं।

चेटी—इस राजकुल में तेरे गले में वह डाला जाय, जिसको कि भगवान् शङ्कर अपने मस्तक पर धारण करते हैं अर्थात् तेरे गले में अर्धचन्द्राकार हाथ डाल कर तुझको राजकुल से निकाल दिया जाना चाहिए। उससे तेरा मुंह तोड़ दिया जाय जिससे कि अशोक वृक्ष खिलता है अर्थात् तेरा मुंह तो लात मार कर तोड़ दिया जाना चाहिए।

टिप्पणी—समशीर्षिका = प्रतिद्वन्द्विता, बराबरी। पञ्चगव्यम्—पञ्चानां गव्यानां समाहारः पञ्चगव्यम्—(समाहारद्वन्द्व) दधि, दुग्ध, घी, गोबर और गोमूत्र। भाण्ड = बर्तन। आभरण = गहना।

त्रिलोचनः—त्रीणि लोचनानि सन्ति यस्य सः त्रिलोचनः = शङ्करः। (बहु०)

विदूषकः—आः ! दासीए पुत्ति ! टंटाकराले ! कोससदवंचणि ! रच्छालोट्टणि ! एव्वं मं भणसि ? ता मह महवम्हणस्स भणिदेण तं तुमं लहसु, जं फग्गुणसमए सोहंजणो जणादो लहदि, जं पामराहिंतो वइल्लो लहदि । (आः दास्याः पुत्रि ! टेण्टाकराले ! कोपशतवञ्चनि ! रथ्यालुण्ठनि ! एवं मां भणसि ? तन्मम महाब्राह्मणस्य भणितेन तत् त्वं लभस्व, यत् फाल्गुनसमये शोभाञ्जनो जनाल्लभते, यत् पामरेभ्यो बलीवर्दो लभते)

विचक्षणा—अहं उण तुह एव्वं भणंतस्स णेउरस्स विअ पाअलग्गस्स पाएण मुहं चूरइस्सं । अण्णं च, उत्तरासाढापुरस्सरणक्खत्तणामहेअं अंगजुअलं उप्पाडिअ घाल्लिस्सं । (अहं पुनस्तवैवं भणतो नूपुरस्येव पादलग्नस्य पादेन मुखं चूर्णयिष्यामि । अन्यच्च, उत्तराषाढापुरःसरनक्षत्रनामधेयमङ्गयुगलमुत्पाट्य क्षेप्स्यामि)

विदूषक—अरे दासी की पुत्रि ! झगड़ालू ! दूसरों के धन को ठगने वाली ! गलियों में परपुरुषों के साथ घूमने वाली ! तू मेरे लिए इस तरह कहती है । मुझ महाब्राह्मण के वाक्य से तेरी वही दशा हो जो फागुन में शोभाञ्जन नामक वृक्ष की लोगों द्वारा होती है और बैल की दुर्जनों द्वारा जो दशा की जाती है । अर्थात् जिस तरह फागुन में शोभाञ्जन (सजना) वृक्ष की शाखाएँ लोग काट देते हैं और बैल की नाक जिस तरह काट (छेद) दी जाती है उसी तरह तेरे हाथ और नाक लोग काट डालें ।

विचक्षणा—पैरों में बँधे हुए नूपुरों के समान तू व्यर्थ प्रलाप करता है, मैं अपने पैर से तेरा मुंह तोड़ दूँगी और कान उखाड़ कर फेंक दूँगी ।

टिप्पणी—महाब्राह्मण = दुष्टब्राह्मण । शङ्ख, तैल, मांस, वैद्य, ज्योतिषी, ब्राह्मण, यात्रा, मार्ग और निद्रा के साथ महत् शब्द निन्दा वाची होता है ।

टिप्पणी—उत्तराषाढायाः पुरःसरं नक्षत्रं (श्रवणा) तन्नामधेयम् = उत्तराषाढापुरस्सरनक्षत्रनामधेयम् = श्रवणाख्यम् । उत्पाट्य = उत् + पाटि + य (ल्यप्) उत्पाट्य = उखाड़ कर ।

विदूषकः—[सक्रोधं परिक्रम्य, जवनिकान्तरे किञ्चिदुच्चैः] ईरिसं राअउलं दूरे वन्दीअदि, जहिं दासी बम्हणेण समं पडि-प्पद्धं करेदि। ता अज्ज प्पहुदि णिअगेहिणीए वसुंधराणामहेआए बम्हणीए चलणसुस्सूअओ भविअ गेहे जेव्व चिट्ठिस्सं। (ईदृशं राजकुलं दूरे वन्द्यतां, यत्र दासी ब्राह्मणेन समं प्रतिस्पर्द्धां करोति। तदद्य प्रभृति निजगेहिन्या वसुन्धरानामधेयाया ब्राह्मण्याश्चरणशुश्रूषुर्भूत्वा गेह एव स्थास्यामि)

[सर्वे हसन्ति]

देवी—अज्जउत्त ! कीदिसी कविंजलेण विणा गोट्ठी ? कीदिसी णअणंजणेण विणा पसाहणलच्छी ? (आर्यपुत्र ! कीदृशी कपिञ्जलेन विना गोष्ठी ? कीदृशी नयनाञ्जनेन विना प्रसाधनलक्ष्मीः ?)

[आकाशे]

ण हु ण हु आगमिस्सं, अण्णो को वि पिअवअस्सो अण्णेसीअदु। अहवा एसा दुट्ठदासी लंबकुचा टप्परकण्णी पडिसीसअं

विदूषक—(क्रोध में घूमता हुआ, यवनिका के भीतर कुछ जोर से) ऐसे राजकुल को दूर से ही छोड़ना अच्छा, जहाँ पर दासी ब्राह्मण के साथ प्रतिस्पर्धा करती है। आज अपनी पत्नी वसुन्धरा के चरणों का सेवक होकर घर पर ही रहूँगा।

(सभी हंसते हैं)

देवी—आर्यपुत्र ! कपिञ्जल के विना गोष्ठी का क्या आनन्द ? आँखों में अञ्जन लगाए विना शृङ्गार की शोभा ही क्या ?

(आकाश में)

मैं नहीं आऊँगा, नहीं आऊँगा, कोई और दूसरा प्रिय मित्र ढूंढ लो।



देइअ मह ट्टाणे उवहसणत्थं करीअदु। अहमेको मुदो तुम्हाणं सव्वाणं मज्झे, तुम्हे उण वरससअं जीअध। (न खलु न खलु आगमिष्यामि, अन्यः कोऽपि प्रियवयस्योऽन्विष्यताम्। अथवैषा दुष्ट-दासी लम्बकुचा टप्परकर्णा प्रतिशीर्षकं दत्त्वा मम स्थाने उपहसनार्थं क्रियताम्। अहमेको मृतो युष्माकं सर्वेषां मध्ये, यूयं पुनर्वर्षशतं जीवत)

[इति निष्क्रान्तः]

विचक्खणा—मा अणुबंधेहि। अणुणअकक्सो क्खु कविंजल वम्हणो सलिलसित्तो विअ सणगुणगंठी चिरं गाढअरो भोदि। णं दंसणीअं दीसदु। (मा अनुबधान। अनुनयकर्कशः खलु कपिञ्जलब्राह्मणः सलिलसिक्त इव शणगुणग्रन्थिश्चिरं गाढतरो भवति। ननु दर्शनीयं दृश्यताम्)

राजा—[समन्तादवलोक्य]

गाअंतगोवअबहुपदपंखिआसु
दोलासु विब्भमवदोसु णिसण्णदिट्ठी।
जं जादि खंजिद तुरंगरहो दिणेसो
तेणेव्व होंति दिअहा अइदीहदोहा ॥ २१ ॥

अथवा लम्बे स्तनों वाली और सूप (टप्पर) की तरह कानों वाली इस दुष्ट दासी को ही पगड़ी बांध कर मेरी जगह उपहास करने के लिए रख लो। तुम सब में मैं ही एक मरा हूँ, तुम सब सौ बरस जिओ।

विचक्षणा—आग्रह पूर्वक इसका आदर मत करो। अनुनय करने से यह कपिञ्जल और भी कठोर हो जाता है, जैसे कि सन की रस्सी में लगी हुई गांठ पानी पड़ने पर और भी कठोर हो जाती है। इसका जरा आचरण देखो तो।

राजा—(चारों तरफ देख कर):—

([गायद्गोपवधूपदप्रेङ्खितासु]
[दोलासु विभ्रमवतीषु निषण्णदृष्टिः ।]
[खञ्जगति खञ्जिततुरङ्गरथो दिनेशः]
[तेनैव यान्ति दिवसा अतिदीर्घदीर्घाः] ॥ २१ ॥)

[प्रविश्यापटीक्षेपेण]

विदूषकः—आसणमासणं । (आसनमासनम्)

राजा—किं तेण ? (किं तेन ?)

विदूषकः—भैरवाणंदो आअच्छदि । (भैरवानन्द आगच्छति)

अन्वयः—गायद्गोपवधूपदप्रेङ्खितासु विभ्रमवतीषु दोलासु निषण्णदृष्टिः दिनेशः खंजिततुरंगरथः (सन्) यत् याति, तेन एव दिवसाः अतिदीर्घदीर्घाः भवन्ति ॥

व्याख्या—गायन्तीनां गोपवधूनां दोलाधिरूढानामिति शेषः, पदैः प्रेङ्खितासु आन्दोलितासु विभ्रमवतीषु मनोहारिणीषु दोलासु निषण्णदृष्टिः निविष्टदृष्टिः दिनेशः सूर्यः खंजिततुरंगरथः विकलगत्यश्वयुक्तरथः सन् यत् याति विरचं परिक्रामति, अतः दिवसाः नितरां दीर्घाः संजायन्ते ॥ २१ ॥

गाती हुई और झूले पर चढ़ी हुई गोपियों के चरणों से आन्दोलित तथा मन को हरने वाले झूलों पर सूर्य की दृष्टि के कारण उसके घोड़ों की गति विकल हो गई है और उसका रथ अस्थिर रूप से चलता मालूम पड़ता है। इसी कारण दिन अधिक लम्बे होते जाते हैं ॥ २१ ॥

(यवनिका बिना हटाये रंगमंच पर आकर)

विदूषक—आसन लाओ, आसन लाओ ।

राजा—(किसलिये)

विदूषक—भैरवानन्द आ रहा है ।

टिप्पणी—गायन्त्यश्चामूः गोपवध्वः = गायद्गोपवध्वः, तासां पदैः प्रेंखितासु = गायद्गोपवधूपदप्रेंखितासु (तत्पु०) । निषण्णा दृष्टिः यस्य सः = निषण्णदृष्टिः (बहु०) । खंजिताः तुरङ्गाः यस्य सः = खंजिततुरंगः, तथाविधः रथो यस्य सः = खंजिततुरंगरथः । राजा के इस वचन का तात्पर्य यह है कि कपिंजल के बिना समय काटना बड़ा कठिन हो गया है, अतः कपिंजल को आदरपूर्वक] लाना चाहिए ॥ २१ ॥



देवी—किं सो, जो जणवअणादो अच्चब्भुदसिद्धी सुणीअदि ? (किं सः, यो जनवचनादत्यद्भुतसिद्धिः श्रूयते ?)

विदूषकः—अध इं । (अथ किम् ?)

राजा—पवेसअ । (प्रवेशय)

[विदूषको निष्क्रम्य तेनैव सह प्रविशति]

भैरवानन्दः—[किञ्चिन्मदमभिनीय पठति]—

मंतो ण तंतो ण अ किं पि जाणं
झाणं च णो किं पि गुरुप्पसादा ।
मज्जं पिआमो महिलं रमामो
मोक्खं च जामो कुलमग्गलग्गा ॥ २२ ॥

(मन्त्रो न तन्त्रं न च किमपि ज्ञानं
ध्यानञ्च नो किमपि गुरुप्रसादात् ।
मद्यं पिबामो महिलां रमयामो
मोक्षञ्च यामः कुलमार्गलग्नाः ॥ २२ ॥)

अवि अ (अपि च)—

देवी—क्या वह ही, जिसके बारे में सुना जाता है कि वह बड़ी अद्भुत सिद्धियों वाला है ।

विदूषक—और क्या ?

राजा—आने दो ।

(विदूषक बाहर जाता है और भैरवानन्द के साथ प्रवेश करता है)

भैरवानन्द—(कुछ मदिरापान का अभिनय करके पढ़ता है):—

न कोई मन्त्र जानता हूँ, न कोई शास्त्र जानता हूं, गुरु के मत के अनुसार कोई ध्यान अथवा समाधि लगाना भी नहीं जानता हूं । शराब पीते हैं, दूसरों की स्त्रियों के साथ सहवास करते हैं और मोक्ष पाते हैं यही हमारा कुलाचार है ॥२२॥

और भीः—

रंडा चंडा दिक्खिदा धम्मदारा
मज्जं मंसं पिज्जए खज्जए अ ।
भिक्खा भोज्जं चम्मखंडं च सेज्जा
कोलो धम्मो कस्स णो भादि रम्मो ? ॥२३॥

(रण्डा चण्डा दीक्षिता धर्मदारा
मद्यं मांसं पीयते खाद्यते च ।
भिक्षा भोज्यं चर्मखण्डञ्च शय्या
कौलो धर्मः कस्य नो भाति रम्यः ? ॥२३॥)

किं च—

मुत्तिं भणंति हरिबम्हमुहादिदेवा
झाणेण वेअपढणेण कदुक्किआए ।
एक्केण केवलमुमादइएण दिट्ठो
मोक्खो समं सुरअकेलिसुरारसेहिं ॥२४॥

(मुक्तिं भजन्ति हरिब्रह्ममुखादिदेवा
ध्यानेन वेदपठनेन क्रतुक्रियाभिः ।

व्याख्या—विष्णुब्रह्मादयः देवाः ध्यानेन वेदानां स्वाध्यायेन यज्ञादिभिश्च

रंडा (विधवा), चंडा और तान्त्रिक दीक्षा वाली स्त्रियाँ हमारी धर्मपत्नियां हैं, भिक्षा का अन्न हमारा भोजन है, चर्मखण्ड हमारी शय्या है, मद्य पीते हैं और मांस खाते हैं । हमारा यह कुलक्रम से आया हुआ धर्म किसको अच्छा नहीं लगता है, अर्थात् सबको अच्छा लगता है ॥ २३ ॥

और भी :—

विष्णु, ब्रह्मा इत्यादि देवता ध्यान, वेदपाठ, तथा यज्ञादिकों के अनुष्ठान



एकेन केवलमुमादयितेन दृष्टो

मोक्षः समं सुरतकेलिसुरारसैः ॥ २४ ॥)

राजा—एदं आसणं, उपविसदु भैरवाणंदो । (इदमासनम्, उपविशतु भैरवानन्दः)

भैरवानन्दः—[उपविश्य]—किं कादव्वं (किं कर्त्तव्यम् ?)

राजा—कहिं वि विसए अच्चरिअं दिट्ठुमिच्छामि । (कस्मिन्नपि विषये आश्चर्यं द्रष्टुमिच्छामि)

भैरवानन्दः—

दंसेमि तं पि ससिणं वसुहावतिण्णं

थंभेमि तस्स वि रविस्स रहं णहद्धे ।

आणेमि जक्खसुरसिद्धगणंगणाओ

तं णत्थि भूमिवलए मह जं ण सद्धं ॥ २५ ॥

(दर्शयामि तमपि शशिनं वसुधावतीर्णं

मुक्तिः भवति-इति वदन्ति । केवलम् एकेन शिवेन सुरतद्वारा सुरापानेन च मोक्षः उपदिष्टः ॥ २४ ॥

अन्वयः—तम् शशिनम् अपि वसुधावतीर्णम् दर्शयामि, नभोऽध्वनि तस्य रवेः अपि रथं स्तभ्नामि । यक्षसुरसिद्धगणांगनाः आनयामि । यत् मम साध्यम् न, तत् भूमिवलये नास्ति ।

से मोक्ष की प्राप्ति बताते हैं । केवल शिवजी ने सुरत और सुरा पान से मोक्ष की प्राप्ति बताई है ॥ २४ ॥

राजा—यह आसन है, भैरवानन्दजी, कृपया बैठिये ।

भैरवानन्द—(बैठ कर) तुम क्या चाहते हो ।

राजा—कोई आश्चर्य की बात देखना चाहता हूँ ।

भैरवानन्द—चन्द्रमा को भी पृथिवी पर उतार कर दिखा सकता हूँ । सूर्य

स्तम्भामि तस्यापि रवे रथं नभोऽध्वनि ।

आनयामि यक्षसुरसिद्धगणाङ्गनाः

तन्नास्ति भूमिवलये मम यन्न साध्यम् ॥ २५ ॥)

ता भण किं करीअदु ? (तद्भण किं क्रियताम् ?)

राजा—वअस्स ! तुए कहिं पि अपुव्वं दिट्ठं महिला-रअणं ? (वयस्य ! त्वया कुत्रापि अपूर्वं दृष्टं महिलारत्नम् ?)

विदूषकः—दिट्ठं दाव । (दृष्टं तावत्)

राजा—कहेहि । (कथय)

विदूषकः—अस्थि एत्थ दक्खिणावहे वेदब्भं णाम णअरं, तहिं मए एक्कं कण्णारअणं दिट्ठं, तमिहाणीअदु । (अस्ति तत्र दक्षिणापथे वैदर्भं नाम नगरं, तत्र मयैकं कन्यारत्नं दृष्टं, तदिह आनीयताम्)

व्याख्या—तं प्रसिद्धं शशिनं चन्द्रमपि वसुधायां भूमौ अवतीर्णमागतं दर्शयामि । नभोऽध्वनि आकाशमार्गे तस्य रवेः सूर्यस्यापि रथं स्तम्भामि स्थापयामि । यक्षसुरसिद्धगणानाम् अङ्गनाः स्त्रीः आनयामि । भूमण्डले न किमप्येतादृशं कार्यं यत्कर्तुमहं क्षमः न ॥ २५ ॥

का भी आकाश मार्ग में रथ रोक सकता हूँ। यक्ष, सुर और सिद्धगणों की स्त्रियों तक को ला सकता हूँ। भूमण्डल पर ऐसा कोई कार्य नहीं जिसको कि मैं न कर सकूं ॥ २५ ॥

कहिये, क्या करूँ ?

राजा—(विदूषक से) वयस्य ! तुमने कहीं कोई अद्वितीय स्त्रीरत्न देखा ?

विदूषक—हां, देखा ।

राजा—बतलाओ ।

विदूषक—दक्षिण देश में वैदर्भ नाम का नगर है, वहां मैंने एक कन्यारत्न देखा है, उसको यहां बुलाओ ।



भैरवानन्दः—आणीअदि। (आनीयते)

राजा—ओदारीअदु पुण्णिमाहरिणंको धरणीअले। (अवतार्यतां पूर्णिमाहरिणाङ्को धरणीतले)

[भैरवानन्दो ध्यानं नाटयति]

[ततः प्रविशति पटाक्षेपेण नायिका। सर्वे आलोकयन्ति]

राजा—अहह ! अच्चरिअं ! अच्चरिअं !। (अहह ! आश्चर्यम् ! आश्चर्यम् !)

जं धोअंजणसोणलोअणजुअं लग्गालअग्गं मुहं
हत्थालंबिदकेसपल्लवचए दोल्लंति जं विंदुणो।
जं एक्कं सिचअंचलं णिवसिदं तं ण्हाणकेलिट्ठिदा
आणीदा इअमब्भुदेक्कजणणी जोईसरेणामुणा ?॥ २६॥

(यत् धौताञ्जनशोणलोचनयुगं लग्नालकाग्रं मुखं
हस्तालम्बितकेशपल्लवचये दोलायन्ते यद्बिन्दवः।

अन्वयः—यत् धौतांजनशोणलोचनयुगम् लग्नालकाग्रम् मुखम्। यत् हस्तालम्बितकेशपल्लवचये विन्दवः दोलायन्ते। यत् एकम् सिचयाञ्चलं निवसितम्, तत् इयम् स्नानकेलिस्थिता अद्भुतैकजननी अमुना योगीश्वरेण आनीता।

व्याख्या—अस्याः नायिकायाः नयनयुगलं कज्जलरहितम् रक्तञ्चास्ति, मुखे च अलकाग्राणि सक्तानि सन्ति, इयं हस्तेन च केशान् गृहाणा अस्ति, केशेभ्यश्च

भैरवानन्द—बुलाता हूँ।

राजा—पूर्णिमा के चन्द्रमा की तरह सुन्दर उस कन्यारत्न को ही बुलाइये।

(भैरवानन्द ध्यान लगाने का अभिनय करता है)

(तब पर्दा हटा कर नायिका रंगमंच पर आती है। सब देखते हैं)

राजा—अहह ! आश्चर्य है ! आश्चर्य !!

इसकी आंखों से अञ्जन धुला हुआ है और इसीलिए इसकी आंखें लाल हैं,

टिप्पणी—धौतमञ्जनं यस्य तत् धौताञ्जनम्। धौताञ्जनं शोणं च लोचनयुगलं यस्मिन् तत् =धौताञ्जनशोणलोचनयुगलम् (यह मुख का विशेषण है, बहु० समा०)। प्रक्षालिता-

धौतैकं सिचयाञ्चलं निवसितं स्नानकेलिस्थिता
आनीताद्भुतवेषमानसी योगीश्वरेणामुना ? ॥ २६ ॥)

अवि अ (अपि च)—

एक्केण पाणिणलिणेण णिवेसअंती
वत्थं चलं घणथणत्थलसंसमाणं ।
चित्ते लिहिज्जदि ण कस्स वि संजमंती
अण्णेण चंकमणदो चलिदं कडिल्लं ? ॥ २७ ॥

(एकेन पाणिनलिनेन निवेशयन्ती
वस्त्राञ्चलं घनस्तनस्थलस्रंसमानम् ।

जलबिन्दवः पतन्ति, एकेनैव वसनेन शरीरमाच्छादितम्, अतः प्रतीयते इयं स्नानक्रीडानन्तरमेवात्रोपस्थापिता अनेन योगिना । विस्मयोत्पादिका चेयम् सर्वस्य चमत्कारं करोति अत्र स्वभावोक्तिरलंकारः ॥ २६ ॥

अन्वयः—एकेन पाणिनलिनेन घनस्तनस्थलस्रंसमानम् वस्त्राञ्चलं निवेशयन्ती, अन्येन चङ्क्रमणतः चलितं कटिवस्त्रम् संयच्छन्ती कस्य चित्ते नापि लिख्यते ॥

व्याख्या—एकेन करकमलेन घनाभ्यां स्तनस्थलाभ्यां पीनपयोधराभ्याम्

मुख पर अलकें बिखरी हुई हैं, हाथ से अपने केशों को पकड़े हुये है और केशों से पानी की बूँदे टपक रही हैं। एक ही वस्त्र से शरीर ढका हुआ है। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि इस योगीश्वर ने स्नान क्रीडा के बाद ही इस अपूर्व सुन्दरी को यहां पर उपस्थित किया है ॥ २६ ॥

और भी—उन्नत पयोधरों पर से सरकते हुये वस्त्र को एक हाथ से ठीक करती हुई और बार २ चलने से ढीले होते हुये कटि वस्त्र को दूसरे हाथ से संभालती

अनुरक्तनयनयुगलम् । लग्नानि अलकाग्राणि यस्मिन् तत्–लग्नालकाग्रम् = संसक्तकुन्तलाग्रम् (बहु०) । हस्तेन आलम्बितः = हस्तालम्बितः । हस्तालम्बितश्चासौ केशानां पल्लवचयः तस्मिन् = हस्तालम्बितकेशपल्लवचये (तत्पु०) (करगृहीतकेशप्रान्तनिचये । स्नानकेल्यां स्थिता = स्नानकेलिस्थिता = स्नानक्रीडोत्थिता । आनीता–आ + नी + त + आ = आनीता ॥२६॥

टिप्पणी—घनाभ्याम् स्तनस्थलाभ्यां स्रंसमानम् = घनस्तनस्थलस्रंसमानम् = निवेश-



चित्ते लिख्यते न कस्यापि संयच्छन्ती
अन्येन चङ्क्रमणतश्चलितं कटिवस्त्रम् ? २७ ॥)

विदूषकः—

ण्हाणावमुक्काभरणोच्चआए तरंगभंगक्खदमंडणाए ।
आद्दांसुओल्लासितणूलदाए सुंदेरसव्वस्समिमीअ दिट्ठी ॥
(स्नानावमुक्ताभरणोच्चयायास्तरङ्गभङ्गाक्षतमण्डनायाः ।
आर्द्रांशुकोल्लासितनुलतायाः सौन्दर्यसर्वस्वमस्या दृष्टिः ॥२८॥)

स्रंसमानम् अवपतन्तम् चञ्चलं निवेशयन्ती स्वस्थानं प्रापयन्ती, अन्येन च करकमलेन चङ्क्रमणतः पुनः पुनश्चलनात् चलितं स्रस्तं कटिवस्त्रं कटिवसनं संयच्छन्ती संबध्नती इयं नायिका कस्य पुरुषस्य चित्ते न लिख्यते न चित्र्यते, अपि तु सर्वस्यैव। इयं नायिका अखिलजनमनोहारिणीति भावः ॥ २७ ॥

अन्वयः—स्नानावमुक्ताभरणोच्चयायाः तरङ्गभङ्गाक्षतमण्डनायाः आर्द्रांशुको ल्लासि तनूलतायाः अस्याः दृष्टिः सौन्दर्यसर्वस्वम् अस्ति ।

व्याख्या—इयं नायिका यया स्नानकाले आभूषणानि परित्यक्तानि, यस्याः सौन्दर्यम् अलंकाराणामभावेऽपि विलासविशेषैः पूर्णमिव प्रतिभाति, यस्याश्च लता इव सुकुमारा अंगयष्टिः आर्द्रवसनेन अतीव चित्राकर्षिका अस्ति, स्वदर्शनेन सौन्दर्यं वर्षयति । इयं महासुन्दरीति भावः ॥ २८ ॥

हुई यह नायिका किस पुरुष के हृदयपटल पर चित्रित नहीं होती है ? अर्थात् सबके चित्त पर यह अपना प्रभाव डालती है ॥ २७ ॥

विदूपक—स्नान करते समय जिसने आभूषणों को छोड़ दिया है, तरंगों की तरह विलासमय चेष्टाओं से आभूषणों के न होने पर भी जिसका सौन्दर्य कम नहीं

यन्ती—नि + वेशय् + अत् + ई = निवेशयन्ती-शत्रन्त-स्त्रीलिङ्ग। लिख्यते-लिख् + य + ते (कर्मवा०)। संयच्छन्ती-सम्—यम् + अत् + ई = संयच्छन्ती (शत्रन्त) स्त्री. ॥ २७ ॥

टिप्पणी—स्नाने अवमुक्तः आभरणानामुच्चयः यया सा, तस्याः = स्नानावमुक्ताभरणोच्चयायाः = स्नानकालपरित्यक्ताभूषणनिवहायाः (बहु०)। तरङ्गाः इव भंगाः, तैः अक्षतं मण्डनं यस्याः, तस्याः = तरंगभंगाक्षतमण्डनायाः = विलासमयचेष्टाक्षतरूपायाः। आर्द्र ञ्च

नाअिआ—[सर्वानवलोक्य स्वगतम्] एसो महाराओ को वि इमिणा गंभीरमहुरेण सोहासमुदाएण जाणिज्जदि । एसा वि एदस्स महादेवी तक्कीअदि अद्धणारीसरस्स विअ अक्कंदिदा वि गोरी । एसो को वि जोइसरो । एस उण परिअणो । [विचिन्त्य] ता किं ति एदस्स महिलासहिदस्स दिट्ठी मं बहु मण्णेदि ? । (एष महाराजः कोऽप्यनेन गम्भीरमधुरेण शोभासमुदायेन ज्ञायते । एषाऽपि अस्य महादेवी तर्क्यते अर्द्धनारीश्वरस्येव आक्रन्दिताऽपि गौरी । एष कोऽपि योगीश्वरः । एष पुनः परिजनः । तत् किमित्येतस्य महिलासहितस्यापि दृष्टिर्मां बहु मन्यते ?) [इति अस्तं धीवते]

राजा—[विदूषकमपवार्य] एदाए (एतस्याः)—

जं मुक्का सवणंतरेण तरला तिक्खा कडक्खच्छडा
भुंगाधिट्ठिअकेद अग्गिमदलदोणीसरिच्छच्छई ।
तं कप्पूररसेण णं धवलिदो ? ज्योण्हाअ णं ण्हाविदो ?
मुत्ताणं घणरेणुणा व्व छुरिदो ? जादो म्हि एत्थंतरे ॥ २९ ॥

-हुआ है और जिसका लता की तरह सुकुमार शरीर गीले वस्त्र से और भी अधिक आकर्षक प्रतीत होता है ऐसी यह नायिका अपने दर्शनों से सौन्दर्य की वृष्टि करती है ॥

नायिका—(सबको देख कर अपने मनमें):—

इस गम्भीर और मधुर शोभासमुदाय से मालूम पड़ता है कि ये कोई महाराज हैं, अर्धनारीश्वर भगवान् शंकर की पार्वती की तरह यह भी इसकी रानी प्रतीत होती है । ये कोई योगीश्वर हैं, ये सेवकगण हैं । न मालूम क्या बात है कि स्त्रियों के साथ होते हुये भी इनकी निगाहें मेरी ओर बड़े आदर से लगी हुई हैं ।

राजा—विदूषक को एक ओर ले जाकर इसके तोः—

तदंशुकम् , तेन उल्लासिनी तनुलता अस्ति यस्याः तस्याः = आर्द्रांशुकोल्लासितनूलतायाः = आर्द्रवसनोल्लासिशरीरलतायाः ॥ २८ ॥



(यत् मुक्ता श्रवणान्तरेण तरला तीक्ष्णा कटाक्षच्छटा

शृङ्गाधिष्ठितकेतकाग्रिमदलद्रोणीसदृक्षच्छविः ।

तत् कर्पूररसेन ननु धवलितो ? ज्योत्स्नया ननु स्नापितः ?

मुक्तानां घनरेणुनेव छुरितो ? जातोऽस्म्यत्रान्तरे ॥ २९ ॥)

विदूषकः—अहो ! से रूअरेहा !! (अहो ! अस्या रूपरेखा !!)

मण्णे मज्झं तिवलिवलिअं डिंभमुट्ठीअ गेज्झं

णो वाहूहिं रमणफलअं वेड्ढिदुं जादि दोहिं ।

णेत्तक्खेत्तं तरुणिपसुईदिज्जमाणोवमाणं

ता पच्चक्खं मह विलिहिदुं जादि एसा ण चित्ते ॥ ३० ॥

अन्वयः—श्रवणान्तरेण तरला शृंगाधिष्ठितकेतकाग्रिमदलद्रोणीसदृक्षच्छविः तीक्ष्णाकटाक्षच्छटा यत् मुक्ता, तत् अत्रान्तरे कर्पूररसेन धवलितः ननु ? ज्योत्स्नया स्नापितः ननु ? मुक्तानां घनरेणुनेव छुरितः (किम्) जातः अस्मि ।

व्याख्या—श्रवणान्तरेण कर्णान्तरेण तरला चञ्चला, शृङ्गेण अधिष्ठितः यः केतकीकुसुमस्य अग्रदलः स एव द्रोणी तत्सदृक्षा छविः यस्याः सा तीक्ष्णा कटाक्ष-परम्परा यदनया मां प्रतिमुक्ता, तेन अत्रान्तरे कर्पूररसेन कर्पूरजले अहम् धवलितः किम्, उत ज्योत्स्नया स्नापितः, अथवा मुक्तानां घनरेणुना अनुलिप्तः संजातोऽस्मि किम् ॥

इस नायिका ने कानों तक फैले हुये, चञ्चल तथा केतकी के दलरूपी द्रोणी के समान छवि वाले तीक्ष्ण कटाक्षों से जो मुझको देखा है, उससे ऐसा मालूम पड़ता है कि जैसे मैं कर्पूर के जल से धो दिया गया हूँ, या चांदनी में मुझे स्नान करा दिया गया है अथवा मोतियों का अंगराग मुझ पर लगा दिया गया है ॥ २९ ॥

विदूषक—अहो ! क्या सौन्दर्य है ?ः—

टिप्पणी—अपवार्य=अन्यसंगोपनेन सम्भाष्य—औरों से छिपाकर कहना-देखिए दशरू० । त्रिपताककरेणान्यानपवार्यान्तरा कथाम् । अन्योन्यामन्त्रणं यत्स्याज्जनान्ते तज्जनान्तिकम् ॥ शृङ्गेण अधिष्ठितः यः केतकीकुसुमस्य अग्रदलः स एव द्रोणी, तत्सदृक्षा छविः यस्याः साः शृङ्गाधिष्ठितकेतकाग्रिमदलद्रोणीसदृक्षच्छविः (बहु०) द्रोणी=काष्ठाम्बुवाहिनी (डोङ्गा) । स्नापितः=स्नापि+तः=स्नापितः-स्नापि (ण्यन्त) से त (क्त) प्रत्यय ॥ २९ ॥

कर्णाभ्यां स्खलितं कपोलफलकौ द्विखण्डचन्द्रोपमौ ।

एषा पञ्चशरेण सज्जितधनुर्दण्डेन रक्ष्यते

येन शोषणमोहनप्रभृतयो विध्यन्ति मां मार्गणाः ॥ ३२ ॥)

विदूषकः—[विहस्य] **जाणे रत्थाए लोट्टदि से सोहार-अणं ।** (जाने रथ्यायां लुठत्यस्याः शोभारत्नम्)

राजा—[विहस्य] **पिअवअस्स ! कधेमि दे** (प्रियवयस्य ! कथयामि ते)—

अंगं चंगं णिअगुणगणालंकिदं कामिणीणं

पच्छाअंती उण तणुसिरिं भादि णेवच्छलच्छी ।

इत्थं जाणं अवअवगदा कावि सुंदेरमुद्दा

मण्णे ताणं वलइदधणू णिच्चभुच्चो अणंगो ॥ ३३ ॥

स्खलितम्, कपोलफलकौ द्विखण्डचन्द्रोपमौ, सज्जितधनुर्दण्डेन पञ्चशरेण एषा रक्ष्यते, येन शोषणमोहनप्रभृतयः मार्गणाः मां विध्यन्ति ।

व्याख्या—अस्याः नायिकायाः लावण्यं नवीनोत्कृष्टसुवर्णसदृशम्, नेत्रे च कर्णपर्यन्तमाकृष्टे, कपोलौ च अर्धचन्द्रसदृशौ । कामदेवः साक्षात् धनुर्गृहीत्वा अस्याः रक्षा करोति । शोषणमोहनादयः कामदेवप्रयुक्ताः शराः एतद्दर्शने मामाहतं कुर्वन्ति । एतां दृष्ट्वाऽहं मुग्धोऽस्मीति भावः ॥ ३२ ॥

धनुष लेकर साक्षात् कामदेव इसकी रक्षा कर रहा है इसको देखकर कामदेव के शोषण और मोहन इत्यादि बाण मुझे तो व्याकुल कर रहे हैं ॥ ३२ ॥

विदूषक—**(हँसकर) इसका सौन्दर्य रास्ते पर पड़े हुये रत्न के समान सबको आकृष्ट करता है।**

राजा—**(हँसकर) प्रियवयस्य, तुझे बतलाता हूं:—**

नवजात्यकाञ्चनविभम् = नवीनोत्कृष्टसुवर्णसदृशम् । धनुः एव दण्डः = धनुर्दण्डः । सज्जितः धनुर्दण्डः येन तेन सज्जितधनुर्दण्डेन = गृहीतधनुषा । पञ्चशर = कामदेव-शोषण, मोहन, मादन, तापन और मारण, यह पांच कामदेव के बाण है । मार्गण = बाण । विध्यन्ति = व्यध् + य + अन्ति । व्यध् (दिवादि-श्यन्) ॥ ३२ ॥



(अङ्गं सुन्दरं निजगुणगणालङ्कृतं कामिनीनां
प्रच्छादयन्ती पुनस्तनुश्रियं भाति नेपथ्यलक्ष्मीः ।
इत्थं यासामवयवगता काऽपि सौन्दर्यमुद्रा
मन्ये तासां वलयितधनुर्नित्यभृत्योऽनङ्गः ॥ ३३ ॥)

अबि अ एदाए (अपि च, एतस्याः)—

तहा रमणवित्थरो जह ण ठाइ कंचीलदा
तहा अ थणतुंगिमा जह ण एह णाहिं मुहं ।
तहा णअणबंकिमा जह ण किंपि कण्णुप्पलं
तहा अ मुहमुज्जलं दुसासिणी जहा पुण्णिमा ॥ ३४ ॥

अन्वयः—कामिनीनाम् सुन्दरम् अंगम् निजगुणगणालंकृतम् (भवति), नेपथ्यलक्ष्मीः पुनः तनुश्रियं प्रच्छादयन्ती भाति, यासाम् इत्थम् अवयवगता का अपि सौन्दर्यमुद्रा, तासाम् वलयितधनुः अनंगः नित्यभृत्यः (इति) मन्ये ।

व्याख्या—कामिनीनां विलासिनीनाम् सुन्दरम् अङ्गम् निजगुणैः विभ्रम-विलासादिभिः एव अलंकृतम् भवति, न तासां बाह्यप्रसाधनापेक्षा । नेपथ्यलक्ष्मीः परिच्छदकान्तिः पुनः अन्यासां स्त्रीणां तनुश्रियं शरीरशोभां प्रच्छादयन्ती भाति राजते। यासां कामिनीनां पूर्वप्रकारा कापि अनिर्वचनीया सौन्दर्यमुद्रा सौन्दर्यसम्पात् विद्यते, गृहीतसायकः कामदेवः तासां चिरकिङ्करः भवतीति मन्ये । भृत्यो यथा भर्तुराज्ञाम् विनैव तदाशयं ज्ञात्वा तत्कार्यं संपादयति एवमेव कामः अस्याः कटाक्षेनैव कामिनो स्ववशे करोति ॥ ३३ ॥

कामिनियों का सुन्दर अंग अपने विभ्रम और विलास गुणों से ही अच्छा लगता है, बाह्य सजावट तो दूसरी स्त्रियों की ही शोभा बढ़ाती है। जिन स्त्रियों का सौन्दर्य इस तरह अनिर्वचनीय होता है, कामदेव धनुष लिये हुये हमेशा उनकी सेवा में तत्पर रहता है। उनके आशय को जान कर उनके क[illegible] कामदेव कामियों को वश में कर लेता है ॥ ३३ ॥

और—

(तथा रमणविस्तरो यथा न तिष्ठति काञ्चीलता
तथा च स्तनतुङ्गिमा यथा नैति नाभिं मुखम् ।
तथा नयनवंहिमा यथा न किमपि कर्णोत्पलं
तथा च मुखमुज्ज्वलं द्विशशिनी यथा पूर्णिमा ॥ ३४ ॥

देवी—अज्ज कविंजल ! पुच्छिअ जाण, का एसा त्ति ।
(आर्य कपिञ्जल ! पृष्ट्वा जानीहि, कैषेति)

विदूषकः—[तां प्रति] एहि मुद्धमुहि ! उअविसिअ

अन्वयः—रमणविस्तरः तथा, यथा काञ्चीलता न तिष्ठति, स्तनतुंगिमा च तथा, यथा मुखं नाभिं न पश्यति, नयनवंहिमा तथा, यथा कर्णोत्पलम् न किमपि, मुखं च तथा उज्ज्वलम्, यथा द्विशशिनी पूर्णिमा ।

व्याख्या—अस्याः नायिकायाः जघनस्थली अतीव विस्तृता यत् रशना-कलापः तत्र न पर्याप्नोति, स्तनौ च तथा उन्नतौ यत् मुखं नाभिं न द्रष्टुं शक्नोति, नेत्रे च तथा विशाले यत् कर्णोत्पलानां न काप्यावश्यकता । मुखं च तथा उज्ज्वलं कान्तिमत् यथा चन्द्रद्वययुक्ता पूर्णमासी प्रतिभाति ॥ ३४ ॥

जंघायें इतनी चौड़ी हैं कि करधनी उन पर पर्याप्त ही नहीं होती, स्तन इतने ऊँचे हैं कि मुख नाभि तक आ ही नहीं सकता, आँखें इतनी बड़ी हैं कि कानों में कर्णोत्पल की आवश्यकता ही नहीं प्रतीत होती और मुख तो इस तरह कान्तिमान है जैसे कि पूर्णमासी की रात्रि में दो चन्द्रमा निकल आये हों ॥ ३४ ॥

देवी—आर्य कपिंजल ! पूछो तो यह कौन है ?

विदूषक—(उससे) अयि मुग्धानने ! आओ, बैठो, बताओ तो तुम, कौन हो ।

टिप्पणी—रथ्या = सड़क । नेपथ्य = वेषभूषा । वलयितं धनुः येन सः = वलयित-धनुः = आकृष्टसायकः (बहु०) । नित्यभृत्यः = दैनिकसेवक । तुंगिमा = ऊंचाई । वहिमा = विशालता । तुंगस्य भावः = तुंगिमा–तुंग + इमा = तुंगिमा (इमनिच् प्रत्ययः) । बहुलस्य-भावः = वंहिमा–बहुल = इमनिच्–वंहि + इमन् = वंहिमा—बहुल शब्द को वंह् आदेश हो गया । द्वौ शशिनौ यस्या सा द्विशशिनी = द्विचन्द्रा । पूर्णिमा = पूर्णमासी ॥ ३४ ॥



णिवेदेहि का तुमं त्ति १। (एहि मुग्धमुखि ! उपविश्य निवेदय का त्वमिति)

राजा—आसणमिमीए (आसनमस्यै)

विदूषकः—एदं मे उत्तरीअं आसणं। (एतन्मे उत्तरीयमासनम्)

[विदूषकनायिके वस्त्रदानोपवेशने नाटयतः]

विदूषकः—भोदि ! संपदं कहिज्जदु। (भवति ! साम्प्रतं कथ्यताम्)

नायिका—अत्थि एत्थ विदब्भं णाम णअरं कुंतलेसु, तहिं सअलजणवल्लहो वल्लहराओ णाम राजा। (अस्त्यत्र विदर्भं नाम नगरं कुन्तलेषु, तत्र सकलजनवल्लभो वल्लभराजो नाम राजा)

देवी—[स्वगतम्] जो मह माउस्सिआए पई होई। (यो मम मातृष्वसुः पतिर्भवति)

नायिका—तस्स घरिणी ससिप्पहा णाम। (तस्य गृहिणी शशिप्रभा नाम)

राजा—इसके लिये आसन दो।

विदूषक—लो, यह मेरा उत्तरीय बिछा लो।

(विदूषक और नायिका दोनों वस्त्र देने और बैठने का अभिनय करते हैं)

विदूषक—हां, अब कहो।

नायिका—कुन्तल देश में विदर्भ नाम का नगर है, वहां सारी जनता का प्रिय वल्लभराज नाम का राजा है।

देवी—(स्वगत) जो मेरी मौसी के पति हैं।

नायिका—उनकी रानी का नाम शशिप्रभा है।

---

१. मुग्धं मुखं यस्याः सा, तत्संबुद्धौ=मुग्धमुखि=वरानने।

२. उत्तरीयम्=दुपट्टा।

३. सकलस्य जनस्य वल्लभः=सकलजनवल्लभः=सर्वजनप्रियः।

४. मातुः स्वसा=मातृष्वसा-माता की बहिन, मौसी।

देवी—[स्वगतम्] भाणि मे माउस्सिआ। (साऽपि मे मातृष्वसा)

नायिका—तेहिं अहं उप्पण्णेत्ति। (ताभ्यामहमुत्पन्नेति)

देवी—[स्वगतम्] ण क्खु ससिप्पहागब्भुप्पत्तिमंतरेण ईदिसी रूअरेहा होदि। ण क्खु वेदुरिअभूमिगब्भुप्पत्तिमंतरेण वेदुरिअमणिसलाआ णिप्पज्जइ। [प्रकाशम्] णं तुमं कप्पूरमंजरी ? । (न खलु शशिप्रभागर्भोत्पत्तिमन्तरेणेदृशी रूपरेखा भवति। न खलु वैदूर्यभूमिगर्भोत्पत्तिमन्तरेण वैदूर्यमणिशलाका निष्पद्यते। [प्रकाशम्] ननु त्वं कर्पूरमञ्जरी ?)

[नायिका सलज्जमधोमुखी तिष्ठति]

देवी—एहि बहिणिए! आलिंगेसु मं। (एहि भगिनि! आलिङ्गय माम्) [इति परिष्वजते]

देवी—(स्वगत) वह भी मेरी मौसी है।

नायिका—उनसे मैं उत्पन्न हुई हूँ।

देवी—(स्वगत) इस तरह की सुन्दर रूपरेखा शशिप्रभा के गर्भ के अतिरिक्त और कहीं से उत्पन्न नहीं हो सकती। वैदूर्यमणि, वैदूर्यमणि की खान से ही निकल सकती है (प्रकाश में) तो तुम कर्पूरमंजरी हो ?

(नायिका लज्जा के साथ मुख नीचा किये रहती है)

देवी—आओ बहिन, मुझसे मिलो तो। (आलिंगन करती है)

---

१. रूपरेखा = सौन्दर्य।

२. वैदूर्यमणि = नीलम।

३. लज्जया सह = सलज्जम् (क्रि० वि०)।

४. परिष्वजते = परि √स्वज + अ + ते। (आत्मने० वर्तमान०)।



कर्पूरमञ्जरी—अज्जे ! कप्पूरमंजरीए एसो प्पढमो प्पणामो ।
(आर्ये ! कर्पूरमञ्जर्या एष प्रथमः प्रणामः)

देवी—अज्ज भैरवाणंद ! तुह प्पसादेण अपुव्वं संविधाणअं अणुभविदं कप्पूरमंजरीदंसणेण; ता चिट्ठदु दाव एसा पंचदसदिअसाइं, पच्छा झाणविमाणेण णइस्सध । (आर्य भैरवानन्द ! तव प्रसादेन अपूर्वं संविधानकमनुभूतं कर्पूरमञ्जरीदर्शनेन; तत् तिष्ठतु तावदेषा पञ्चदशदिवसानि, पश्चात् ध्यानविमानेन नेष्यथ)

भैरवानन्दः—जं भणादि देई । (यत् भणति देवी)

विदूषकः—[राजानमुद्दिश्य] भो वअस्स ! अम्हे परं दुए वि बाहिरा एत्थ, जदो एदाणं मिलिदं कुटुंबअं वट्टदि, जदो इमीए दुओ वि बहिणिआओ । भैरवाणंदो उण एदाणं संजोअअरो अच्चिदो मण्णिदो अ । एसा वि महीअलसरस्सई अ कुट्टणी देहंतरेण देवी ज्जेव्व । (भो वयस्य आवां परं द्वावपि बाह्यावत्र, यत एतयोः मिलितं कुटुम्बकं वर्त्तते, यत इमे द्वे अपि भगिन्यौ । भैरवानन्दः पुनरेतयोः संयोगकरोऽर्चितो मानितश्च । एषाऽपि महीतल-

---

कर्पूरमंजरी—आर्ये, कर्पूरमंजरी का यह पहिला प्रणाम स्वीकार करें ।

देवी—आर्य भैरवानंद ! तुम्हारी कृपा से कर्पूरमंजरी के दर्शन कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई । पन्द्रह बीस दिन इसको यहाँ ही रहने दो, बाद में अपने ध्यानरूपी विमान से इसको ले जाना ।

भैरवानन्द—जैसी महारानी की आज्ञा ।

विदूषक—(राजा को सम्बोधित कर) प्रिय मित्र ! हम दोनों तो यहाँ पर बाहर के हैं । इनका तो कुटुम्ब ही मिल गया, क्योंकि यह दोनों बहिनें हैं ।

टिप्पणी—बाह्य=बहिरंग, उदासीन । संयोगस्य करः=संयोगकरः–संयोग पूर्वक √कृ+अ=संयोगकरः । महीतलस्य सरस्वती=महीतलसरस्वती–यह विचक्षणा के लिये प्रयुक्त

वैतालिकः —

उग्घाडीअंति लीलामणिमअवलहीचित्तभित्तीणिवेसा
पल्लंका किंकरीहिं उदुसमअसुहा वित्थरिज्जंति झत्ति ।
सेरंधीलोलहत्थंगुलिचलणवसा पट्टणादो पउत्तो
हुंकारो मंडवेसुं विलसदि महुरो रुट्ठुंगणाणं ॥ २६ ॥
(उद्घाट्यन्ते लीलामणिमयवलभीचित्रभित्तिनिवेशाः
पर्यङ्काः किङ्करीभिः ऋतुसमयसुखा विस्तार्यन्ते झटिति ।
सैरन्ध्रीलोलहस्ताङ्गुलिचलनवशात् पट्टनादः प्रवृत्तः
हुङ्कारो मण्डपेषु विलसति मधुरो रुष्टाङ्गनानाम ॥ २६ ॥)

अन्वयः—लीलामणिमयवलभीचित्रभित्तिनिवेशाः उद्घाट्यन्ते, किंकरीभिः ऋतु-समयसुखाः पर्यंकाः झटिति विस्तार्यन्ते, सैरन्ध्रीलोलहस्ताङ्गुलिचलनवशात् पट्टनादः प्रवृत्तः, मण्डपेषु रुष्टांगनानाम मधुरः हुंकारः विलसति ।

व्याख्या—साम्प्रतं सायंकाले समागते लीलार्थं निर्मिताः मणिमय्यः वलभ्यः कपोतनिलयाः चित्रभित्तिनिवेशाश्च उद्घाट्यन्ते दिवसे सूर्यतापेन कपोतानां क्लेश-परिहाराय चित्रलिखितानां च आतपयोगे मालिन्यभयात् रात्रावेव तेषामुद्घाटनम् । किंकरीभिः दासीभिः ऋतुसमये वसन्तसमये सुखाः सुखकराः पर्यंकाः झटिति शीघ्रं विस्तार्यन्ते सज्जीक्रियन्ते । सैरन्ध्रीणाम् स्वाधीनानां स्त्रीणां लीलाभिः हस्ताङ्गुलिभिः चलनवशात् पट्टनादः मृदङ्गध्वनिः प्रवृत्तः । तथा मण्डपेषु रुष्टानां मानिनीनां

हि० वैतालिक—खेलने के लिये बनाई गई वलभियाँ और चित्रशालायें सन्ध्या होने पर खोली जा रही हैं। दासियाँ वसन्त में सुखकर शय्यायें बिछा रही हैं,

---

टिप्पणी—चण्डांशोः=चण्डाः अंशवः सन्ति यस्य तस्य चण्डांशोः=प्रखरकिरणस्य । मूर्च्छया मुद्रिते लोचने यस्याः सा मूर्च्छामुद्रितलोचना=मूर्च्छानिमीलितनयना (बहु०) । मीलन्ति पंकेरुहाणि यस्याः सा मीलत्पंकेरुहा=मुकुलितपद्मा । उद्घाट्यन्ते=



राजा—अह्मे वि संभं वंदिदुं गमिस्सामो। (वयमपि सन्ध्यां वन्दितुं गमिष्यामः)

[इति निष्क्रान्ताः सर्वे]

इति प्रथमं जवनिकान्तरम्।



तुष्टानां प्रीतमनसां नारीणां मधुरः मनोहरः हुंकारः प्रियेषु तर्जनरवः चाटुरवश्च विलसति प्रसरति॥ ३६ ॥



सैरिन्ध्री स्त्रियों का (स्वतन्त्र स्त्रियों का) अपनी चञ्चल अंगुलियों से मृदङ्ग बजाना प्रारम्भ हो गया है। घरों में कुपित तथा प्रसन्न अंगनाओं का अपने पतियों के साथ मधुर कोपसंलाप या प्रेमसंलाप चलने लगा है॥ ३६ ॥

राजा—हम लोग भी संध्या करने चलें।

(सब का प्रस्थान)

प्रथम जवनिका समाप्त



उद्√घाटि+य+अन्ते। (कर्मवा० वर्त० प्रथमपु० बहु०) वलभी=गोपानसी-कबूतरों के रखने का स्थान। सैरिन्ध्री=दूसरे के घर में रहने वाली, स्वतन्त्र और केश झाड़ना, गूथना इत्यादि शिल्पकार्य करने वाली स्त्री॥ ३६ ॥



द्वितीयं जवनिकान्तरम्

[ततः प्रविशति राजा प्रतीहारी च]

प्रतीहारी—(परिक्रामितकेन) इदो इदो महाराओ। (इत इतो महाराजः)

राजा—(कतिचित्पदानि गत्वा, तामनुसन्धाय) तहिं क्खु अवसरे (तस्मिन् खलु अवसरे)

ण ट्ठाणाहिं तिलांतरं वि चलिदा सुत्था णिदंबत्थली
थोउव्वेल्लवली तरंगमुदरं कंठो तिरच्छिट्ठिदो।
वेणीए उण आणणेन्दु वलणे लद्धं थणालिंगणं
जादा तीअ च उव्विधा तणुलदा णिज्झाअ अंतीअमं ॥१॥

(न स्थानात्तिलान्तरमपि चलिता स्वस्था नितम्बस्थली
स्तोकोद्वेल्लद्वलीतरङ्गमुदरं कण्ठस्तिर्यक् स्थितः।

अन्वयः—माम् निध्यायन्त्याः तस्याः तनुलता चतुर्विधा जाता, स्वस्था नितम्बस्थली स्थानात् तिलान्तरमपि न चलिता, उदरम् स्तोकोद्वेल्लद्वलीतरङ्गम्, कण्ठः तिर्यक् स्थितः, वेण्या पुनः आननेन्दुवलने स्तनालिङ्गनम् लब्धम्।

व्याख्या—राज्ञ उक्तिरियम्। माम् निध्यायन्त्याः नितरां ध्यायन्त्याः तस्याः नायिकायाः तनुलता अङ्गवल्ली चतुर्विधा जाता। लतारोपेण तन्वाः कार्श्य-चापल्य-शैत्य-कोमलतादिगुणवत्त्वं व्यज्यते। स्वस्था स्थिरा नितम्बस्थली स्वस्थानात्

(तब राजा और प्रतीहारी प्रवेश करते हैं)

प्रतीहारी—(घूम कर) महाराज। इस तरफ, इस तरफ।

राजा—(कुछ चल कर और कर्पूरमञ्जरी का ध्यान कर) उस समयः—

लगातार मेरा ध्यान करती हुई उस नायिका का लता की तरह सुकुमार

टिप्पणी—नितम्बमेव स्थली—नितम्बस्थली = नितम्बप्रदेशः। स्तोकम् उद्वेल्लन्त्यः = स्तोकोद्वेल्लन्त्यः। वलयः एव तरङ्गाः यस्मिन् तत् स्तोकोद्वेल्लद्वलीतरङ्गम् = स्वल्पप्रकटीभवद्रेखातरङ्गम्) तिरः अञ्चति (गच्छति) इति तिर्यक् तिरस् को (तिरि आदेश हो



वेण्या पुनराननेन्दुवलने लब्धं स्तनालिङ्गनं

जाता तस्याश्चतुर्विधा तनुलता निध्यायन्त्या माम् ॥ १ ॥)

प्रतीहारी—(स्वगतम्) **कधं अज्ज वि सो ज्जेव्व तालीपत्तसंचओ, ताओ ज्जेअ अक्खरपंतीओ; ता वसंतवण्णणेण सिढिलआमि से तग्गदं हिअआवेअं। (प्रकाशम्) दिट्ठिं देउ महाराओ ईसोसि जरढाअमाणे कुसुमाअरम्मि।** (कथमद्यापि स एव ताडीपत्रसंचयः, ता एव अक्षरपंक्तयः, तत् वसन्तवर्णनेन शिथिलयामि अस्य तद्गतं हृदयावेगम्। (प्रकाशम्) दृष्टिं ददातु महाराज! ईषदीषज्जरठायमाने कुसुमाकरे)

तिलान्तरमपि लेशमात्रमपि न चलिता गौरवातिशयादिति भावः। उदरं स्वल्पप्रकटीभवद्रेखाविशेषैः तरङ्गवदिव प्रतिभाति स्म। कण्ठः परिवृत्य दर्शनात् तिर्यक् तिरश्चीनं स्थित आसीत्। केशपाशेन पुनः मुखचन्द्रस्य वलने परावर्त्तने स्तनयोरालिङ्गनं प्राप्तम् परावर्तनकाले स्तनोपरि पतनादिति ॥ १ ॥

शरीर चार तरह का हो गया। उसके स्थिर नितम्ब जरा भी न हिलते थे, उसके पेट पर कुछ २ चमकती हुई रेखायें तरङ्गों की तरह लगती थीं, घूम कर देखने से उसकी गर्दन तिरछी थी और उसके बाल उसके स्तनों पर बिखरे हुये थे ॥ १ ॥

प्रतीहारी—**(अपने मन में) क्यों आज भी फिर वही ताड़पत्र और वे ही अक्षरपङ्क्तियाँ दिखाई देती हैं? वसन्तवर्णन के द्वारा मैं इसके हृदयावेग (कर्पूरमञ्जरीसम्बन्धी) को कम करूंगी। (प्रकाश में) महाराज! कुछ कुछ खिलते हुये बगीचे की ओर देखें।**

जाता है। तिर्यक्=तिरछा चलने वाला। वेणी=केशपाश। आननमेवेन्दुः तस्य वलने=मुखचन्द्रपरावर्तने=मुखचन्द्र के घुमाने पर। यहाँ स्मृति अलङ्कार है; स्थली, तरङ्ग इत्यादि साभिप्राय विशेषणों की वजह से परिकर अलङ्कार भी है तथा साथ में रूपक अलङ्कार भी प्रयुक्त किया गया है ॥ १ ॥

टिप्पणी—कथमद्यापि…अक्षरपङ्क्तयः–इस कथन में किसी मन्दबुद्धि छात्र का प्रसङ्ग लिया गया है जो बराबर एक ही पुस्तक पढ़ता रहे और एक सा ही लिखता रहे।

मूलाहिंतो परहुअवहूकंठमुद्दं दलंता
देंता दीहं महुरिमगुणं जम्पिदे छप्पआणम् ।
संचारेंता विरहिसु णवं पंचमं किंच राअं
राओम्मत्ता रइकुलघरा वासरा वित्थरंति ॥ २ ॥

(मूलात्प्रभृति परभृतवधूकण्ठमुद्रां दलन्तो
दधतो दीर्घं मधुरिमगुणं जल्पिते षट्पदानाम् ।
सञ्चारयन्तो विरहिषु नवं पञ्चमं किञ्च रागं
रागोन्मत्ता रतिकुलगृहा वासरा विस्तीर्यन्ते ॥ २ ॥)

अन्वयः—मूलात् परभृतवधूकण्ठमुद्रां दलन्तः, षट्पदानाम् जल्पिते दीर्घं मधुरिमगुणं दधतः, किञ्च विरहिषु नवम् (कोकिलेषु) पञ्चमं रागं सञ्चारयन्तः, रागोन्मत्ताः रतिकुलगृहाः वासराः विस्तीर्यन्ते ।

व्याख्या—मूलात्प्रभृति प्रारम्भादेव परभृतवधूनां कोकिलस्त्रीणाम् कण्ठमुद्रां कण्ठनिरोधं दलन्तः भिन्दन्तः (कोकिलरवं जनयन्तः), षट्पदानाम् भ्रमराणां जल्पिते गुञ्जने दीर्घं गम्भीरं मधुरिमगुणं माधुर्यं दधत उत्पादयन्तः, किञ्च विरहिषु नवमभिनवं कोकिलेषु पञ्चमं रागमनुरागं स्वरविशेषं च सञ्चारयन्तः रागोन्मत्ताः रागप्रेरकाः रतिकुलगृहाः रतेः स्थायिभावस्य उत्पादकाः वासराः वरान्तदिवसाः विस्तीर्यन्ते क्रमेण दीर्घीभवन्ति ॥ २ ॥

प्रारम्भ से ही कोयल के कण्ठ का विकास करते हुये, भ्रमरों के गुञ्जन को और भी मधुर बनाते हुये, विरहियों के हृदय में नवीन अनुराग तथा कोयलों का पञ्चम स्वर उत्पन्न करने वाले राग से भरे तथा शृङ्गार रस को उद्दीप्त करने वाले यह वसन्त के दिन कैसे लम्बे होते जाते हैं ॥ २ ॥

इसी तरह राजा को बराबर कर्पूरमञ्जरी का ही ध्यान बना हुआ है । कुसुमाकर = कुसुमनामाकरः उत्पत्तिस्थानम्, उद्यान ।

टिप्पणी—दलन्तः = √दल् + शतृ = अन्तः = दलन्तः । विस्तीर्यन्ते = क्रमेण वर्धन्ते (कर्मकर्तरि लट्) ॥ २ ॥



राजा—[तदनाकर्ण्य सानुरागम्]—

आत्थाणी जणलोअणाणं बहुला लावण्णकल्लोलिणी
लीलाविब्भमहासवासणअरी सोभग्गपारट्ठिआ ।
णेत्तेंदीवरदीहिआ मह उणो सिंगारसंजीअणी
संजादा अह मम्महेण धणुहे तिक्खो सरो पुंखिदो ॥ ३ ॥

(आस्थानीजनलोचनानां बहुला लावण्यकल्लोलिनी
लीलाविभ्रमहासवासनगरी सौभाग्यपारस्थिता ।
नेत्रेन्दीवरदीर्घिका मम पुनः शृङ्गारसञ्जीविनी
सञ्जाताऽथ मन्मथेन धनुषि तीक्ष्णः शरः पुङ्खितः ॥ ३ ॥)

व्याख्या—आस्थान्यां सभायामुपविष्टाः ये जनाः सभ्याः तेषां लोचनानां बहुला पूर्णा लावण्यकल्लोलिनी लावण्यतरङ्गिणी । इयं नायिका सभ्यानां नेत्राणि लावण्यस्रोतोभिरिव पूरयतीति भावः । लीलया विभ्रमेण च यो हासः मन्दस्मितं तस्य वासनगरी मृदुमन्दहासिनीति यावत् । सौभाग्यस्य पारे स्थिता सौभाग्यपारस्थिता परमसौभाग्ययुक्ता चेयम् । नेत्रेन्दीवरयोः दीर्घिका वापी, तां दृष्ट्वा नेत्रे परमानन्दमनुभवतः । मम तु पुनः शृङ्गारसञ्जीविनी शृङ्गाररसोद्दीपिनी सा सञ्जाता । अथ अनन्तरमेव मन्मथेन कामेन धनुषि तीक्ष्णः मर्मभित् शरः बाणः प्रक्षिप्तः । अहं तु तद्दर्शनादेव कामवश आसम् तत्रापि पुनस्तेन शरेणान्तर्विद्धः ॥ ३ ॥

राजा—(प्रतीहारी के वचनों पर ध्यान न देकर अनुरागपूर्वक):—

सभा में उपस्थित सभासदों के नेत्रों को नदी की तरह अपने सौन्दर्य से तृप्त करती हुई, लीला और विभ्रम से मन्द २ मुस्कराती हुई, परम सौभाग्य वाली, नेत्ररूपी कमलों के लिये वापी के समान अर्थात् नेत्रों को प्रसन्न करने वाली तथा शृङ्गार रस को बढ़ाने वाली वह कर्पूरमञ्जरी अब भी मेरे हृदय में वर्तमान है । फिर भी कामदेव ने मुझ पर अपने धनुष से तीक्ष्ण बाण छोड़ ही दिया ॥ ३ ॥

टिप्पणी—आस्थान्यां ये जनाः आस्थानीजनाः तेषां लोचनानाम् = आस्थानीजनलोचनानाम् । आस्थानी = सभाभवन । नेत्रे एव इन्दीवरे = नेत्रेन्दीवरे, तयोः दीर्घिका = नेत्रेन्दीवरदीर्घिका दीर्घिका = वापी, बावड़ी । पुङ्खितः = चढ़ा दिया— √पुंख + इ + तः ॥ ३ ॥

[सस्मरणमिव] अवि च (अपि च)—

अग्गम्मि भिंगसरणी णअणाण तीए
मज्झे उणो कढिददुद्धतरंगमाला।
पच्चा अ से सरदि तंसणिरीक्खिदेसु
आकण्णमंडलिअचावधरो अणंगो॥ ६ ॥

(अग्रे भृङ्गसरणिर्नयनयोस्तस्या
मध्ये पुनः क्वथितदुग्धतरङ्गमाला।
पश्चाच्च तस्याः सरति तिर्यङ्निरीक्षितेषु
आकर्णमण्डलितचापधरोऽनङ्गः॥ ६ ॥)

[विचिन्त्य] कधं चिरअदि प्पिअवअस्सो ? (कथं चिरयति प्रियवयस्यः ?)

अन्वयः—तस्याः नयनयोः अग्रे भृङ्गसरणिः, पुनः मध्ये क्वथितदुग्धतरङ्गमाला, पश्चात् तस्याः तिर्यङ्निरीक्षितेषु आकर्णमण्डलितचापधरः अनङ्गः सरति।

व्याख्या—तस्याः कर्पूरमञ्जर्याः नयनयोः नेत्रयोः अग्रे भृङ्गानां भ्रमराणां सरणिः पङ्क्तिः चरतीवेति भावः। पुनः मध्ये क्वथितस्य आवर्तितस्य दुग्धस्य तरङ्गमाला ऊर्मिमाला विराजते। पश्चात् तस्याः तिर्यगवलोकनेषु कामः कर्णपर्यन्तम् धनुराकृष्य सञ्चरन्निव प्रतीयते॥ ६ ॥

(कुछ याद सा कर के) और भीः—

उस कर्पूरमञ्जरी के नेत्रों के आगे भौंरे मंडराते हैं, मध्य में विलोये हुये दूध की तरङ्गमाला जैसी मालूम पड़ती है, जब वह पीछे की ओर तिरछा होकर देखती है तो ऐसा लगता है जैसे कि कान तक धनुष खींचे साक्षात् कामदेव ही चल रहा हो॥६॥

(सोचकर) प्रिय वयस्य ! (विदूषक !) क्यों देर कर रहा है ?

टिप्पणी—सरणिः=पङ्क्तिः। आकर्ण मण्डलितः=आकर्णमण्डलितः, यः चापस्तम् धरतीति आकर्णमण्डलितचापधरः=आकर्णाकृष्टधनुर्धरः। आकर्णमण्डलित चापपूर्वक √धृ धातु से अप् (अ) प्रत्यय। मण्डलित=झुका हुआ॥ ६॥



[प्रविश्य विदूषको विचक्षणा च परिक्रामतः]

विदूषकः—अइ विअक्खणे ! सव्वं सच्चं एदं ? (अयि विचक्षणे ! सर्वं सत्यमिदम् ?)

विचक्षणा—सव्वं सच्चअरं । (सर्वं सत्यतरम्)

विदूषकः—णाहं पत्तिज्जामि, जदो परिहाससीला क्खु तुमं । (नाहं प्रत्येमि, यतः परिहासशीला खलु त्वम्)

विचक्षणा—अज्ज ! मा एव्वं भण; अण्णो वक्कुत्तिकालो, अण्णो कज्जविआरकालो । (आर्य ! मैवं भण; अन्यो वक्रोक्तिकालः, अन्यः कार्यविचारकालः)

विदूषकः—[पुरोऽवलोक्य] एसो प्पिअवअस्सो हंसो विअ विमुक्कमाणसो, करी विअ मदक्खामो, मुणालदंडो विअ घणघम्ममिलाणो, दिणदीओ विअ विगलिअच्छाओ, प्पभाद-पुण्णिमाचंदो विअ पंडुरपरिक्खीणो चिट्ठदि । (एष प्रियवयस्यो हंस इव विमुक्तमानसः, करीव मदक्षामः, मृणालदण्ड इव घनघर्म-

---

(विदूषक और विचक्षणा रंगमंच पर आकर घूमते हैं)

विदूषक—अरी विचक्षणे ! क्या यह सब सच है ?

विचक्षणा—सब सच्चा ही समझो ।

विदूषक—मुझे तो विश्वास नहीं होता क्योंकि तुम्हारा तो परिहास करने का स्वभाव ही है ।

विचक्षणा—आर्य ! ऐसा मत कहो, हंसने का समय और होता है, काम करने का समय और होता है ।

विदूषक—(सामने देखकर) यह मेरा प्रिय मित्र (राजा) तो मानसरोवर से

टिप्पणी—प्रत्येमि = प्रति— √इ + मि । इण् गतौ (अदादि) विश्वास करना । वक्राचासौ उक्तिः = वक्रोक्तिः, तस्याः कालः = वक्रोक्तिकालः = हंसी करने का समय । विमुक्तं त्यक्तं मानसं सरः येन सः = वि ... पक्षे) ।

म्लानः, दिनदीप इव विगलितच्छायः, प्रभातपूर्णिमाचन्द्र इव पाण्डुर-परिक्षीणस्तिष्ठति)

उभे—[परिक्रम्य] जअदु जअदु महाराओ। (जयतु जयतु महाराजः)

राजा—वअस्स ! कधं उण विअक्खणाए मिलिदोसि ? (वयस्य ! कथं पुनर्विचक्षणया मिलितोऽसि ?)

विदूषकः—अज्ज विअक्खणा मए सह संधिं कादुं आअदा। किदसंधीए इमीए सह मतअंतस्स एत्तिआ वेला लग्गा। (अद्य विचक्षणा मया सह सन्धिं कर्त्तुमागता। कृतसन्ध्यैतया सह मन्त्रयमाणस्यैतावती वेला लग्ना)

छूटे हुये हंस के समान तथा उद्विग्न मन वाला मदस्राव से दुर्बल हाथी की तरह एवं प्रचण्ड सूर्यताप मे मुरझाये हुये कमलनाल की तरह या दिन में कान्तिहीन दीपक की तरह तथा प्रभात कालीन पूर्णिमा के चन्द्रमा की तरह पीला और थका सा बैठा हुआ है।

दोनों—(घूमकर) महाराज की जय हो, जय हो।

राजा—मित्र ! विचक्षणा से फिर कैसे मेल हुआ ?

विदूषकः—आर्य ! विचक्षणा मेरे साथ सन्धि करने आई थी। सन्धि करने के बाद इससे बातचीत करते हुये इतना समय लग गया।

विमुक्तं विरहितमुद्विग्नं वा मानसं हृदयं यस्य सः = विमुक्तमानसः = उद्विग्नमनाः (नृपपक्षे)। मदेन मदस्रावेण क्षामः क्षीणः = मदक्षामः = दानवारि के छूटने से दुर्बल। क्षामः = √क्षै क्षये—क्त प्रत्यय त को म आदेश—क्षामः। घनेन घर्मेण म्लानः = घनघर्मम्लानः = प्रचण्डातपक्लान्तः। विगलिता छाया यस्य सः = विगलितच्छायः = विगतप्रभः, कान्तिहीन। पाण्डुरश्चासौ परिक्षीणश्च = पाण्डुरपरिक्षीणः = पीला और दुबला सा। परिक्षीण = परि— √क्षि + त = परिक्षीण—त को न आदेश हो जाता है।

टिप्पणी—कृतसन्ध्या = कृता सन्धिः सम्मेलनं यया सा, तया कृतसन्धया = कृतसम्मेलनया। मन्त्रयमाण = √मन्त्रि + आन (शानच्-म् का आगम) मन्त्रयमाण = बातचीत करता हुआ।





राजा—संधिकरणस्स किं फलं ?। (सन्धिकरणस्य किं फलम् ?)

विदूषकः—एसा अहिमदजणप्पेसिदा लेहहत्था णं विअक्खणा आअदा। (एषा अभिमतजनप्रेषिता लेखहस्ता[1] ननु विचक्षणा आगता)

राजा—[गन्धं सूचयित्वा] केदईकुसुमगंधो विअ आआदि ? (केतकीकुसुमगन्ध इव आयाति)

विचक्षणा—केदईदललेहो ज्जेव्व एसो मह हत्थे। (केतकी[2]-दललेख एवैष मम हस्ते)

राजा—महुसमए कधं केदईकुसुमं ?। (मधुसमये[3] कथं केतकीकुसुमम् ?)

विचक्षणा—भैरवाणंददिण्णमंतप्पहावेण देवीभवणुज्जाणे केदईलदाए एक्को दाव प्पसवो दंसिदो। तस्स ताए देवीए दलसंपुडेहिं अज्ज हिंदोलअप्पभंजणीए चउत्थीए हरवल्लहा देवी अच्चिदा। अण्णं च दलसंपुडजुअलं वण कण्ठिव्वहिणीआए

राजा—सन्धि करने का क्या फल हुआ ?

विदूषक—प्रियजन के द्वारा भेजी हुई और हाथ में पत्र लिए हुए यह विचक्षणा आई है।

राजा—(कुछ सूंघकर) केतकी के फूल की गन्ध सी आरही है।

विचक्षणा—मेरे हाथ में यह केतकी पत्र पर लिखा हुआ ही लेख है।

राजा—वसन्त ऋतु में यह केतकी का फूल कैसे ?

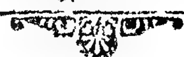
विचक्षणा—भैरवानन्द के द्वारा दिए गए मन्त्र के प्रभाव से महारानी के भवन

---

१. लेखहस्ता—लेखः हस्ते यस्या सा लेखहस्ता=पत्रहस्ता।

२. केतकी=केवड़ा।

३. मधुसमयः=वसन्तऋतु।

कप्पूरमंजरीए प्पसादीकिदं । ताए वि एक्केण दलसंपुडेण भअवदी गोरी ज्जेव्व अच्चिदा । अण्णं च—(भैरवानन्ददत्तमन्त्रप्रभावेण देवीभवनोद्याने केतकीलतया एकस्तावत् प्रसवो दर्शितः । तस्य तया देव्या दलसम्पुटैश्च हिन्दोलकप्रभञ्जन्यां चतुर्थ्यां हरवल्लभा देवी अर्चिता । अन्यच्च दलसम्पुटयुगलं पुनः कनिष्ठभगिन्यै कर्पूरमञ्जर्यै प्रसादीकृतम् । तयाऽपि एकेन दलसम्पुटेन भगवती गौरी एव अर्चिता । अन्यच्च)—

केदईकुसुमपत्तसंपुडं पाहुदं तुम्र सहीअ पेसिदं ।
एणणाहिमसिवण्णसोहिणा तं सिलोअजुअलेण लंछिदं ॥ ७ ॥

(केतकीकुसुमपत्रसम्पुटं प्राभृतं तव सख्या प्रेपितम् ।
एणनाभिमसीवर्णशोभिना तत् श्लोकयुगलेन लाञ्छितम् ॥७॥)

(इति लेखमर्पयति)

अन्वयः—तव सख्या एणनाभिमसीवर्णशोभिना श्लोकयुगलेन लाञ्छितम् तत् केतकीकुसुमपत्रसम्पुटम् तत् प्राभृतम् प्रेषितम् ।

व्याख्या—तव सख्या कर्पूरमञ्जर्या कस्तूरीलिखितेन श्लोकद्वयेन अलंकृतम्

के बगीचे में केवड़े की लता पर एक फूल दिखलाई दिया। उस फूल के दलों से आज हिन्दोलक उत्सव की समाप्ति पर चतुर्थी के दिन महारानी ने पार्वती की पूजा की और कुछ दल अपनी छोटी बहिन कर्पूरमञ्जरी को प्रसाद रूप में दिए। उसने भी एक दलसम्पुट से गौरी की पूजा की। और :—

तुम्हारी सखी (कर्पूरमञ्जरी) ने कस्तूरी की स्याही से यह दो श्लोक लिख कर केतकीकुसुम के यह दल उपहार में भेजे हैं ॥ ७ ॥

(लेख हाथ में देती है)

टिप्पणी—प्रसवः=फूल। हिन्दोलक—भगवान् का हिण्डोले का उत्सव। प्रभञ्जनी=समाप्त करने वाली। हरस्य वल्लभा प्रिया=हरवल्लभा=गौरी। अर्चिता=पूजिता—√अर्च पूजायाम् क्त प्रत्यय। अप्रसादः प्रसादः कृतम्=प्रसादीकृतम् (च्विप्रत्ययान्त)।

टिप्पणी—एणनाभिः=कस्तूरी। प्राभृतम्=भेट, उपहार। लाञ्छितम्=अलंकृतम्, शोभित।

राजा—[प्रसार्य्य वाचयति]—

हंसिं कुंकुमपंकपिंजरतणुं काऊण जं बंचिदो

तब्भत्ता किल चक्कबाअघरिणी एमत्ति मण्णंतओ !

एदं तं मह दुक्किदं परिणदं दुक्खाणां सिक्खबणं

एकत्थो बि ण जासि जेण बिसअं दिट्ठित्तिभाअस्स बि ॥

(हंसीं कुङ्कुमपङ्कपिञ्जरतनुं कृत्वा यद्वञ्चितः

तद्भर्त्ता किल चक्रवाकगृहिण्येषेति मन्यमानः ।

एतत्तन्मम दुष्कृतं परिणतं दुःखानां शिक्षकं

एकस्थोऽपि न यासि येन विषयं दृष्टित्रिभागस्यापि ॥८॥)

एतत् केतकीकुसुमपत्रसम्पुटम् उपहारीकृतं तवेति भावः। कर्पूरमञ्जरी महिष्याः भगिनी, अतः राज्ञः सखीत्वेन सा व्यवहृता ॥ ७ ॥

अन्वयः—हंसी कुङ्कुमपङ्कपिञ्जरतनुं कृत्वा चक्रवाकगृहिणी एषा इति मन्यमानः तद्भर्ता यत् वञ्चितः (दैवेन)। तत् एतत् दुःखानाम् शिक्षकम् मम दुष्कृतम् परिणतम् येन एकस्थः अपि दृष्टित्रिभागस्यापि विषयं न यासि।

व्याख्या—हंसः स्वानुरक्ताम् हंसीम् पूर्वं कुङ्कुमरागेण पिङ्गलवर्णां करोति पश्चात् भ्रमवशात् तां चक्रवाकीं मन्यमानः त्यजति, एवं यथा दैवेन हंसः प्रतार्यते तथैवाहम्। एषः मे दुःखदायिनां दुष्कृतानामेव परिणामः यदेकदेशस्थितोपि त्वम् मया नेत्रापाङ्गेनापि द्रष्टुं न शक्यते ॥ ८ ॥

राजा—(खोलकर पढ़ता है):—

अपने से प्रेम करनेवाली हंसिनी को कुङ्कुमराग से सजाकर पुनः भूल से उसे चक्रवाकी समझने वाला हंस उसे छोड़ देता है। यह मेरे दुःखद पापों का ही परिणाम है कि तुम्हारे एक स्थान पर रहने पर भी मैं तुम्हें जरा भी नहीं देख पाती हूँ ॥ ८॥

टिप्पणी—प्रसार्य्य=खोल कर, फैला कर। प्र— √सारि+य— √सारि (ण्यन्त) से ल्यप् प्रत्यय।

टिप्पणी—कुङ्कुमस्य पङ्केन पिञ्जरा तनुः यस्याः सा ताम् कुङ्कुमपङ्कपिञ्जरतनुम्=

[द्वित्रिर्वाचयित्वा]—एदाइं ताइं मअणरसाअणक्खराइं। (एतानि तानि मदनरसायनाक्षराणि ।)

विचक्खणा—दुदीओ उण मए प्पिअसहीए अवत्थाणिवेदओ कदुअ सिलोओ लिहिदो एत्थ, तं वाचेदु महाराओ। (द्वितीयः पुनर्मया प्रियसख्या अवस्थानिवेदकः कृत्वा श्लोको लिखितोऽत्र, तं वाचयतु महाराजः ।)

राजा—[वाचयति]—

सह दिवसणिसाइं दीहरा सासदंडा
सह मणिवलएहिं बाहधारा गलंति ।
सुहअ ! तुअ विओए तेअ उव्वेअणीए
सह अ तणुलदाए दुब्बला जीविदासा ॥ ९ ॥

(सह दिवसनिशाभ्यां दीर्घाः श्वासदण्डाः

अन्वयः—हे सुभग तव वियोगे उद्वेगिन्याः तस्याः दिवसनिशाभ्यां सह

(दो तीन बार पढ़कर) यह शब्द तो काम के वेग को शान्त करने वाली ओषधि के समान हैं।

विचक्षणा—अपनी प्रिय सहेली की अवस्था बताने वाला एक दूसरा श्लोक मैंने लिखा है। उसे महाराज पढ़ें।

राजा—पढ़ता है :—

हे प्रिय ! तुम्हारे वियोग में कर्पूरमञ्जरी के लिए दिन रात बड़े लम्बे हो गए हैं

कुङ्कुमरागपिङ्गलाङ्गाम् । एकत्र तिष्ठति—इति एकस्थः—एकपूर्वक— √स्था धातु से अ (क) प्रत्यय । विषय =गोचर । शिक्षकम् =सिखाने वाला । √शिक्ष् धातु से अक (वुञ्) प्रत्यय ।

टिप्पणी—मदनस्य रसायनानि मदनरसायनानि तानि एव अक्षराणि =मदनरसायनाक्षराणि= मन्मथोपचारवाक्यानि ।

टिप्पणी—निवेदयतीति निवेदकः, अवस्थायाः निवेदकः अवस्थानिवेदकः =हाल बताने वाला = नि √वेदि + अक् ।



सह मणिवलयैर्बाष्पधारा गलन्ति ।

सुभग ! तव वियोगे तस्या उद्वेगिन्या

सह च तनुलतया दुर्बला जीविताशा ॥ ६ ॥)

विचक्षणा—**एत्थ ज्जेव्व एदाए अवत्थाए मह ज्जेट्ठबहिणिआए सुलक्खआए उग्गाविआए भविअ सिलोओ किदो, तं महाराओ सुणादु ।** (इहैव एतस्या अवस्थाया मम ज्येष्ठभगिन्या सुलक्षणया उद्गारिण्या भूत्वा श्लोकः कृतः, तं महाराजः शृणोतु ।) [पठति]—

श्वासदण्डाः दीर्घाः, बाष्पधाराः मणिवलयैः सह गलन्ति, जीविताशा च तनुलतया सह दुर्बला ।

व्याख्या—हे सुभग ! वल्लभ ! तव वियोगे विरहे तस्याः कर्पूरमञ्जर्याः दिवसनिशे आयते सञ्जाते कथमपि न अतिवाह्येते, एवमेव तस्याः श्वासाः अपि दीर्घाः सञ्जाताः, सा दीर्घमुच्छ्वसितीति भावः । कार्श्यात् तस्याः मणिवलयाः अधः पतन्ति, एवमेव तस्याः अश्रूण्यपि पतन्ति । तव वियोगे सा महत् उद्विग्ना, यथा तस्याः शरीरं दुर्बलं सञ्जातम् तथैव तस्याः जीवनस्याशापि क्षीणाऽस्ति, न सा चिरकालं जीविष्यतीति भावः ॥ ९ ॥

और वह लम्बी २ सांसे छोड़ती है । विरह में दुबले हो जाने से मणिकङ्कण उसके हाथ से गिर पड़ते हैं । इसी तरह उसकी आंखों से अश्रुधारा बहती रहती है । जैसे २ उसका शरीर दुबला होता जाता है, उसके जीवन की आशा भी घटती जाती है ॥ ९ ॥

विचक्षणा—इस पत्र पर ही मेरी बड़ी बहिन सुलक्षणा ने कर्पूरमञ्जरी की पूर्वोक्त अवस्था का निवेदन करते हुए एक श्लोक लिखा है, महाराज उसे भी सुनें । (श्लोक पढ़ती है)

टिप्पणी—मणिवलय = मणियों का कङ्कण । जीवितस्य आशा = जीविताशा = जीवन की आशा ॥ ८ ॥

मुणाली बाणाली जलदि अ जलद्दा तणुलदा
वरिट्ठा जं दिट्ठा कमलवअणा सा सुणअणा ॥ ११ ॥
(परं ज्योत्स्ना उष्णा गरलसदृशश्चन्दनरसः
क्षतक्षारो हारो रजनिपवना देहतपनाः ।
मृणाली बाणाली ज्वलति च जलार्द्रा तनुलता
वरिष्ठा यत् दृष्टा कमलवदना सा सुनयना ॥ ११ ॥)

राजा—वअस्स ! तुमं पि थोएण चंदणरसेण समालद्धि-स्ससि; ता कहेदि तगादं किंपि वुत्तंतं । अध अंतेउरं णइअ देवीए

अन्वयः—यत् सा कमलवदना वरिष्ठा सुनयना दृष्टा, परम् ज्योत्स्ना उष्णा, चन्दनरसः गरलसदृशः, हारः क्षतक्षारः, रजनिपवनाः देहतपनाः, मृणाली बाणाली, जलार्द्रा तनुलता ज्वलति च ।

व्याख्या—यत् यस्मात् कालात् सा कमलवदना अरविन्दानना वरिष्ठा सर्वाङ्ग-सुन्दरी सुनयना दृष्टा, ततः परम्, ज्योत्स्ना चन्द्रिका उष्णा उत्तापकरी सञ्जाता, चन्दनरसः चन्दनलेपः गरलसदृशः विषमिव कटुरित्यर्थः, हारः मुक्तामाला क्षते व्रणे क्षारः लवणमिव वेदनां वर्धयति, रजनिपवनाः शीतलाः निशावाताः अपि देहं तपन्तीत्यर्थः, मृणाली मृणाललता बाणावली इव विध्यति, जलार्द्रा जलेन सिच्यमाना अपि तनुलता अङ्गयष्टिः ज्वलति ॥ ११ ॥

तब से चांदनी गर्म मालूम पड़ती है, चन्दन का लेप विष की तरह कटु प्रतीत होता है, हार घाव पर नमक की तरह और कष्ट को बढ़ाता है, रात्रि की ठण्ढी २ हवायें भी शरीर को झुलसाती हैं, कमल के नाल बाणों की तरह लगते हैं, स्नान करने पर भी शरीर जलता ही रहता है ॥ ११ ॥

राजा—वयस्य ! तुम्हें भी थोड़ा सा चन्दनरस लगेगा । (तुम्हें भी कुछ पुर-

---

टिप्पणी—कमलस्येव वदनं यस्याः सा कमलवदना (बहु०) । वरिष्ठ=अतिशयेन उरुः—वरिष्ठ—इष्ठप्रत्यय—उरु शब्द को 'वर्' आदेश । देहं तपन्ति—इति देहतपनाः= देह— √तप्+यु (अन) । (कृदन्त) । इस श्लोक में उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक अर्था-लङ्कार हैं, अनुप्रास शब्दालङ्कार है ॥ ११ ॥

किं किदं तीस ? (वयस्य ! त्वमपि स्तोकेन चन्दनरसेन समालभ्यसे; तत् कथय तद्गतं कमपि वृत्तान्तम् । अथान्तःपुरं नीत्वा देव्या किं कृतं तस्याः ?)

विदूषकः—विअक्खणे ! किं किदं, कहेहि । (विचक्षणे ! किं कृतं, कथय)

विचक्षणा—देव ! मंडिदा टिक्किदा भूसिदा तोसिदा अ । (देव ! मण्डिता तिलकिता भूषिता तोपिता च)

राजा—कधं विअ ? (कथमिव ?)

विचक्षणा—

घणमुव्वट्टिदमंगं कुंकुमरसपंकपिंजरं तिस्सा ।
(घनमुद्वर्तितमङ्गं कुङ्कुमरसपङ्कपिञ्जरं तस्याः ।)

राजा—

रोसाअणं किदं ता कंचणमअवालिआरूवम् ॥ १२ ॥
(उज्ज्वलीकृतं तत् काञ्चनमयवालिकारूपम् ॥ १२ ॥)

स्कारमिलेगा)। कर्पूरमञ्जरी का कुछ हाल तो बताओ। उसको अन्तःपुर में लेजाकर महारानी ने क्या किया ?

विदूषक—विचक्षणे ! क्या किया, कहो तो।

विचक्षणा—देव ! महारानीने उसे अलंकरण पहिनाया, तिलक लगाया, सुन्दर वस्त्रों से सजाया और प्रसन्न किया।

राजा—कैसे ?

विचक्षणा—उसके शरीर पर खूब उबटन किया और कुङ्कुमरस का लेप किया।

राजा—बलिका के सोने जैसे रूप को और भी उज्ज्वल कर दिया ? ॥ १२ ॥

टिप्पणी—उद्वर्तितम् = उबटन किया—उत्— √वृत + इ + त = क्त प्रत्यय। कुङ्कुमरसस्य पङ्केन पिञ्जरम् = कुङ्कुमरसपङ्कपिञ्जरम् = कुङ्कुमरसलेपरञ्जितम्। काञ्चनस्य इयं = काञ्चनमयी, सा चासौ वालिका तस्याः रूपम् = काञ्चनमयवालिकारूपम् ॥ १२ ॥

विचक्खणा—

मरगअमंजीरजुअं चरणे से लंभिआ वअस्साहिं ।

(मरकतमञ्जीरयुगं चरणायस्या लम्भितौ वयस्याभिः ।)

राजा—

भमिदमधोमुहपंकअजुअलं ता भमरमालाए ॥ १३ ॥

(भ्रमितमधोमुखपङ्कजयुगलं तत् भ्रमरमालया ॥ १३ ॥)

विचक्खणा—

राअसुअपिच्छणीलं पट्टंसुअजुअलअं णिवसिदा सा ।

(राजशुकपिच्छनीलं पट्टांशुकयुगलकं निवसिता सा ।)

राजा—

कअलीकंदलिआ ता खरपवणविलोलिअदलग्गा ॥ १४ ॥

(कदलीकन्दली तत् खरपवनविलोलितदलाग्रा ॥ १४ ॥)

विचक्खणा—

तीए णिदंबफलए णिवेसिआ पद्दराअमणिकंची ।

विचक्षणा—सखियों ने उसके चरणों में पन्नों से बनी हुई पायजेबें पहिनाई ।

राजा—तब तो भौंरों की पंक्ति ने नीचे मुखवाले दो कमलों को जैसे घेर लिया हो।

विचक्षणा—फिर उसको तोते के पंख की तरह हरे रंग के वस्त्र पहिनाये ।

राजा—तब तो वह तेज हवा से उड़ते हुए पत्तों वाले केले के वृक्ष की तरह लगी होगी ॥ १४ ॥

विचक्षणा- तब उसके नितम्बों पर पद्मरागमणि से जड़ी हुई करधनी पहिनाई ।

टिप्पणी—लम्भितौ= √लम्भि+त । ण्यन्त लभ् से क्तप्रत्यय । भ्रमितम्= √भ्रम्+इ+त ॥ १३ ॥

टिप्पणी—पिच्छ=पंख निवसिता=परिधापिता, पहिनाया । खरश्चासौ पवनः= खरपवनः, तेन विलोलितं दलाग्रं यस्याः सा खरपवनविलोलितदलाग्रा=तीव्रवायुसञ्चलित-पत्राग्रा । कदलीकन्दली=रम्भातरुः—केले का वृक्ष ॥ १४ ॥



(तस्या नितम्बफलके निवेशिता पद्मरागमणिकाञ्ची ।)

राजा—

कंचणसेलसिलाए ता वरिही कारिओ णिच्चं ॥ १५ ॥

(काञ्चनशैलशिलायां तद्बर्ही कारितो नृत्यम् ॥ १५ ॥

विचक्षणा—

दिण्णा वलआवलिओ करकमलपउट्टणालजुअलम्मि ।

(दत्ता वलयावल्यः करकमलप्रकोष्ठनालयुगे ।)

राजा—

ता भण कधं ण सोहइ विपरीअं मअणतूणीरम् ? ॥ १६ ॥

(तद्भण कथं न शोभते विपरीतं मदनतूणीरम् ? ॥ १६ ॥)

विचक्षणा—

कंठम्मि तीअ ठविदो छम्मासिअमोत्तिआण वरहारो ।

(कण्ठे तस्याः स्थापितः षाण्मासिकमौक्तिकानां वरहारः ।)

राजा—तब तो सोने के पर्वत पर जैसे मोर को नचाया ॥ १५ ॥

विचक्षणा—करकमलों के प्रकोष्ठ भाग में कङ्कण पहिनाए ।

राजा—तब तो उसके हाथ उलटे हुए कामदेव के तरकस के समान क्यों न अच्छे लगते होंगे ? कहो तो सही ॥ १६ ॥

विचक्षणा—पक्के मोतियों का सुन्दर हार उसके गले में पहिनाया ।

टिप्पणी—पद्मरागमणिकांञ्ची = पद्मरागमणीनां काञ्ची, लाल जड़ी हुई करधनी । बर्हीं = मोर । कारितः = √कारि + तः । कराया ॥ १५ ॥

टिप्पणी—करकमलयोः प्रकोष्ठ एव नालयुगं तस्मिन् करकमलप्रकोष्ठनालयुगे = करकमलों के प्रकोष्ठरूपी नालों में—कलाईयों में । मदनतूणीरम् = कामदेव का तरकस ॥ १६ ।

टिप्पणी—षाण्मासिकमौक्तिकानाम् = छः महीनों के अन्दर तैयार हुए मोतियों का—स्वाती नक्षत्र में आकाश से सीप में पड़ा हुआ जल मोती बन जाता है । यदि यह जल

राजा—

सेवइ ता पंतीहिं मुहचंदं तारआणिअरो ॥ १७ ॥

(सेवते तन् पङ्क्तिभिर्मुखचन्द्रं तारकानिकरः ॥ १७ ॥)

विचक्खणा—

उभएसु वि सुवणेसु णिवेसिदं रअणकुंडलजुअं से ।

(उभयोरपि श्रवणयोर्निवेशितं रत्नकुण्डलयुगं तस्याः ।)

राजा—

ता वदणम्महरहो दोहिं वि चक्केहिं चंकमिदो ॥ १८ ॥

(तद्वदनमन्मथरथो द्वाभ्यामिव चक्राभ्यां चङ्क्रमितः ॥१८॥)

विचक्खणा—

जच्चंजणजणिदपसाहणाइं जादाइं तीअ णअणाइं ।

(जात्याञ्जनजनितप्रसाधने जाते तस्या नयने ।)

राजा—

उप्पुंखिअ णवकुवलअसिलीमुहे पंचवाणस्स ॥ १९ ॥

राजा—तब तो मानों तारागणों ने घेरा बनाकर चन्द्रमा को घेर लिया ॥ १७ ॥

विचक्षणा—उसके दोनों कानों में रत्नों से जड़े हुए कुण्डल पहिनाये ।

राजा—तब तो उसका मुखरूपी कामदेव का रथ दोनों पहियों पर चला होगा (अर्थात् वह बड़ी सुन्दर लगी होगी) ॥ १८ ॥

विचक्षणा—उसके नेत्रों में बढ़िया काजल लगाया ।

राजा—कामदेव के नीलकमल रूपी बाण जैसे सजा दिए गए हों ॥ १९ ॥

छः महीने तक सीप में पड़ा रहता है तो बहुत अच्छे मोती के रूप में बदल जाता है। तारकानिकरः = नक्षत्रों का समूह ॥ १७ ॥

टिप्पणी—रत्नकुण्डलयुगम् = रत्नजड़े हुए कुण्डलों का जोड़ा । चङ्क्रमितः—√चङ्क्रम् (यङ्लुगन्त) + इ + तः । (क्त प्रत्यय) । वदनमेव मन्मथस्य रथः = वदनमन्मथरथः = मुखरूपी कामदेव का रथ ॥ १८ ॥

टिप्पणी—जात्यं च तदञ्जनं = जात्याञ्जनम् तेन जनितं प्रसाधनं ययोस्ते जात्याञ्जन-



(उत्पुङ्खितौ नवकुवलयशिलीमुखौ पञ्चबाणस्य ॥ १९ ॥)

विचक्षणा—

कुडिलालआणं माला ललाडफलअग्गसंगिणी रइदा ॥

(कुटिलालकानां माला ललाटफलकाग्रसङ्गिनी रचिता ।)

राजा—

ता ससिबिंबस्सोवरि वट्टइ मज्झम्मि किसणसारंगो ॥२०॥

(तच्छशिबिम्बस्योपरि वर्त्तते मध्ये कृष्णसारङ्गः ॥ २० ॥)

विचक्षणा—

घणसारतारणअणाइ गूढकुसुमोच्चओ चिउरभारो ।

(घनसारतारनयनाया गूढकुसुमोच्चयश्चिकुरभारः ।)

राजा—

ससिराहुमल्लजुज्झं विअ दंसिअमेणणअणाए ॥ २१ ॥

(शशिराहुमल्लयुद्धमिव दर्शितमेणनयनायाम् ॥ २१ ॥)

विचक्षणा—उसके ललाट पर घुंघराले बालों को सजाया ।
राजा—तब तो उसके मुखरूपी चन्द्रबिम्ब के ऊपर कृष्ण मृग सा घूमता होगा ॥
विचक्षणा—फिर उस सुन्दरनयनों वाली के केशों में फूलों को सजाया ।
राजा—उस मृगनयनी में चन्द्रमा और राहु का जैसे मल्लयुद्ध दिखाया हो ॥२१॥

जनितप्रसाधने =उत्कृष्टकज्जलालंकृते—बढिया काजल लगे हुए । उत्पुंखितौ =सजाए । नवकुवलये एव शिलीमुखौ = नवकुवलयशिलीमुखौ—नए कमल जैसे बाण ॥ १९ ॥

टिप्पणी—कुटिलालकानाम् घुंघराले बालों का । ललाटफलकस्य अग्रसङ्गः अस्ति यस्याः सा ललाटफलकाग्रसंगिनी—मस्तक पर स्थित । कृष्णसारङ्गः =काला हरिण ॥ २० ॥

टिप्पणी—चिकुरभारः =बालों का बांधना । गूढः कुसुमानाम् उच्चयः यस्मिन् सः = गूढकुसुमोच्चयः =गुम्फितपुष्पनिकरः, जिसमें फूल गूंथे गए हैं । एणस्य इव नयने यस्याः सा, तस्याम् =एणनयनायाम् =मृगाक्ष्याम्, हिरन जैसे नयन वाली ॥ २१ ॥

जलनिनिटमेतस्याः श्लक्ष्णं स्नानवस्त्रं

पिशुनयति तनुयष्टिचङ्गिमानं तारुण्यञ्च ॥ २४ ॥)

विदूषकः—[सक्रोधमिव] । भो ! मए सव्वालंकारसहिदा वण्णिदा । तुमं उण जलविलुत्तप्पसाहणं उजेव्व सुमरसि, ता किं ण सुदं देवेण ? ।—(भोः ! मया सर्वालङ्कारसहिता वर्णिता । त्वं पुनर्जलविलुप्तप्रसाधनामेव स्मरसि, तत् किं न श्रुतं देवेन ?)—

उच्छ्वसत् जलनिचितम् एतस्याः श्लक्ष्णम् स्नानवस्त्रम् तनुयष्टिचङ्गिमानम् तारुण्यम् च पिशुनयति ।

व्याख्या—त्रिवलीभिः तिसृभिः रेखाभिः वलितायां युक्तायां नाभ्याम्, बाहुमूलयोः च लग्नं सम्पृक्तं, कलसोपमयोः स्तनयोः, नितम्बभागे चोर्ध्वम् उच्छ्वसत्, जलनिचितम् जलसिक्तम्, अस्याः कान्तायाः कर्पूरमञ्जर्याः श्लक्ष्णं चिक्कणं कोमलं च स्नानवस्त्रं स्नानपरिधानम् शरीरसौन्दर्यं नवं यौवनं च पिशुनयति सूचयति ॥ कर्पूरमञ्जर्याः शरीरे स्नानपरिधानमतीव सूक्ष्मं चिक्कणं चासीत्, अतः स्नानानन्तरं तस्याः नाभिः, बाहुमूले, कलसोपमौ उरोजौ चक्राकारौ नितम्बौ च स्पष्टं व्यक्तावास्ताम्, तेन च तस्याः सौन्दर्यं यौवनं च न कस्याप्यगूढमभवत् ॥ २४ ॥

समान ऊंचे उठे हुए स्तनों तथा नितम्बों पर ऊपर को उठते हुए जल से भीगे उसके महीन कपड़े नहाने के समय उसके शरीर की सुन्दरता तथा जवानी को प्रकट करते हैं ॥ २४ ॥

विदूषक—**(क्रुद्ध सा होकर) मैंने तो उसका सब अलङ्कारों के साथ वर्णन किया ।**

नाभी = त्रिवलिवलितनाभी—त्रिवलिवलितनाभी बाहुमूले च = त्रिवलिवलितनाभीबाहूमूलानि तेषु = त्रिवलिवलितनाभीबाहुमूलेषु = त्रिवलियुक्तनाभिस्कन्धेषु । लग्नम् = संपृक्तम् । स्तनावेव कलसौ स्तनकलसौ—स्तनकलशौ नितम्बाडम्बरश्च तेषु स्तनकलसनितम्बाडम्बरेषु = कलस के समान ऊंचे स्तन और खूब चौड़े नितम्बों पर । चङ्गस्य भावः चङ्गिमा, तनुयष्टेः चङ्गिमा तनुयष्टिचङ्गिमा तं तनुयष्टिचङ्गिमानम् = अङ्गसौन्दर्यम्—चङ्ग शब्द से भावार्थक इमनिच् प्रत्यय । तरुणस्य भावः तारुण्यम्—तरुण शब्द से भावार्थक ष्यञ् (य) प्रत्यय ॥२४॥

टिप्पणी—क्रोधेन सह = सक्रोधम् (अव्ययी भाव), सह को स आदेश । विभक्ति को



णिसग्गचंगस्स वि माणुसस्स
सोहा समुम्मीलदि भूषणेहिं ।
मणीणं जच्चाणं वि कंचणेहिं
विहूसणे सज्जदि कावि लच्छी ॥ २५ ॥

(निसर्गचङ्गस्यापि मानुषस्य
शोभा समुन्मीलति भूषणैः ।
मणीनां जात्यानामपि काञ्चनै-
र्विभूषणे सज्जति काऽपि लक्ष्मीः २५)

राजा—

मुद्धाणं णाम हिअआइं हरंति हंत !
णेवच्छकप्पणगुणेण णिदंबिणीओ ।

अन्वयः—निसर्गचङ्गस्य अपि मानुषस्य शोभा भूषणैः समुन्मीलति । जात्यानाम् मणीनाम् अपि काञ्चनैः विभूषणे का अपि लक्ष्मीः सज्जति ।

व्याख्या—स्वभावतः सुन्दरस्यापि पुरुषस्य शोभा आभूषणानां धारणेन अधिकं वर्धते । यथा उत्कृष्टरत्नानि सुवर्णसंयोगेन कामप्यनिर्वचनीयां शोभां गृह्णन्ति, एवमेव निसर्गसुन्दराः मनुष्याः अलङ्कारपरिधानेन अधिकं शोभन्ते ॥ २५ ॥

और आपको वह केवल उस अवस्था में ही याद आती है जब कि स्नान करने से उसके सारे प्रसाधन बिगड़ गए रहते हैं । क्या आपने यह नहीं सुना है कि :—

स्वभाव से ही सुन्दर मनुष्य आभूषणों से और अच्छे लगते हैं, जैसे कि उत्तम रत्न सोने के साथ और भी शोभायमान होते हैं ॥ २५ ॥

राजा—बड़े दुःख की बात है कि सुन्दर नितम्बों वाली स्त्रियां अपनी अनोखी

अम् आदेश । सर्वे च ते अलङ्काराः, सर्वालङ्काराः तैः सहिता = सर्वालङ्कारसहिता = सर्वालङ्करणशोभिता । जलेन विलुप्तं प्रसाधनं यस्याः ताम् = जलविलुप्तप्रसाधनाम् = जलार्द्रमुक्ताकल्पाम्—जल से जिसकी सजावट नष्ट हो गई है ।

टिप्पणी—चंग = सुन्दर । समुन्मीलति = खिल उठती है । जात्य = उत्तम । सज्जति = प्राप्त होती है ॥ २५ ॥




छेआ उणो प्पकिदिचंगिमभावणिज्जा
दक्खारसो ण महुरिज्जइ सक्कराए ॥ २६ ॥
(मुग्धानां नाम हृदयानि हरन्ति हन्त !
नेपथ्यकल्पनगुणेन नितम्बिन्यः ।
छेकाः पुनः प्रकृतिचङ्गिमभावनीयाः
द्राक्षारसो न मधुरीयति शर्करया ॥ २६ ॥)

अन्वयः—हन्त ! नितम्बिन्यः नेपथ्यकल्पनगुणेन मुग्धानां हृदयानि हरन्ति नाम । छेकाः पुनः प्रकृतिचङ्गिमभावनीयाः, द्राक्षारसः शर्करया न मधुरीयति ।

व्याख्या—अस्ति अयं महान् खेदः यत् नितम्बिन्यः सुन्दरनितम्बाः कामिन्यः नेपथ्यकल्पनगुणेन सुन्दरवेपरचनया मुग्धानां, अविदग्धानाम् हृदयानि मनांसि हरन्ति आकर्षन्ति । ये पुनः छेकाः विदग्धाः, ते प्रकृतिचङ्गिमभावनीयाः स्वाभाविकसौन्दर्येण आकृष्टाः भवन्ति । यः स्वभावसुन्दरः, तस्य न कस्यापि वेपरचनस्यावश्यकता किं द्राक्षारसः माधुर्यार्थम् शर्करामपेक्षते, नहि, स तु स्वभावमधुर इति भावः ॥ २६ ॥

वेषरचना के द्वारा मुग्धों (मूर्खों) का मन अपनी ओर आकृष्ट कर लेती हैं। जो अनुभवी और चतुर हैं, वे स्वाभाविक सौन्दर्य पर ही मुग्ध होते हैं। क्या मिठास के लिए द्राक्षारस को शक्कर की आवश्यकता पड़ती है ? वह तो स्वतः मीठा होता है। इसी तरह स्वाभाविक सुन्दर व्यक्ति को बाह्य सजावट की आवश्यकता नहीं है ॥

टिप्पणी—हन्त = खेद । प्रशस्तौ नितम्बौ यस्याः सा नितम्बिनी = सुन्दर नितम्बों वाली—प्रशंसा में मत्वर्थीय इन् प्रत्यय—स्त्रीत्व विवक्षा में ई प्रत्यय । नेपथ्य = आभूषण, वस्त्रों आदि से उत्पन्न शोभा । मुग्धः = सुन्दर, भोलेभाले । छेकः = चतुर, विदग्धा प्रकृत्या यः चङ्गिमा = प्रकृतिचङ्गिमा, तेन भावनीयाः = प्रकृतिचङ्गिमभावनीयाः = नैसर्गिक-सौन्दर्यहरणीयाः—स्वाभाविक सौन्दर्य से आकृष्ट होने वाले। मधुरमिच्छति = मधुरीयति—मधुर शब्द से नामधातु य (क्यच्) प्रत्यय । अ को ई—मधुरीयति = मिठास चाहता है ॥ २६ ॥



विचक्षणा—जधा देवेणादिट्ठं (यथा देवेनादिष्टम्)—

थोआणं थणआणं कण्णकलिआलंघोणं अच्छोणं वा
भूचंदस्य मुहस्स कंतिसरिआसोत्तस्स गत्तस्स अ।
को णेवच्छकलाहिं कीरदि गुणा ? जं तं वि सव्वं प्पिअं
संजुत्तं सुणु तत्थ कारणमिणं रूढोअ का खंडणा ? ॥ २७ ॥

(स्थूलानां स्तनानां कर्णकलिकालङ्घिनोरक्षणोर्वा
भूचन्द्रस्य मुखस्य कान्तिसरित्स्रोतसो गात्रस्य च ।
को नेपथ्यकलाभिः क्रियते गुणो यत्तदपि सर्वं प्रियं
संयुक्तं शृणु तत्र कारणमिदं रूढेः का खण्डना ॥ २७ ॥)

अन्वयः—स्थूलानाम् स्तनानाम् कर्णकलिकालङ्घिनोः अक्षणोः वा भूचन्द्रस्य मुखस्य कान्तिसरित्स्रोतसः गात्रस्य च नेपथ्यकलाभिः कः गुणः क्रियते ? तत्र इदम् कारणम् शृणु यत् अपि सर्वम् प्रियम् संयुक्तम् तत् रूढेः का खण्डना ?।

व्याख्या—स्थूलानाम् वर्तुलानाम् स्तनानाम् उरोजानाम्, कर्णकलिकालङ्घिनोः कर्णपर्यन्तमायतयोः अक्षणोः नयनयोर्वा, चन्द्रोपमस्य मुखस्य, अत्यन्तं कान्तिमतः शरीरस्य च नेपथ्यकलाभिः विविधाभिः वेशरचनाभिः को गुणः किं वैशिष्ट्यं क्रियते सम्पाद्यते ? प्रत्युत तैस्तैः प्रसाधनैः प्राकृतिकसौन्दर्यं परिच्छाद्यते एव। तथापि

विचक्षणा—जैसा कि महाराज ने आदेश दिया :—

उठे हुए स्तनों, बड़ी २ आंखों, चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख और कान्तिमान् शरीर को विभिन्न प्रसाधनों से कोई लाभ नहीं होता है। (वल्कि ये चीजें सौन्दर्य को और विगाड़ देती हैं) जैसे कि वस्त्रों से सुन्दर स्तन ढक जाता है, काजल से आंखों के चारों ओर काले निशान वन जाते हैं, चेहरे का प्राकृतिक सौन्दर्य अङ्गराग से ढक जाता है तथा शरीर की सुन्दर वनावट वस्त्रों से ढक जाती है। फिर भी लोगों को यह अच्छे लगते हैं। उक्त कथन में कारण यही है कि जिस तरह रूढि

टिप्पणी—कर्णौ च ते कलिके=कर्णकलिके, तयोः लंघिनोः=कर्णकलिकालंघिनोः= कर्णकोरकातिक्रामिणोः। भुवः चन्द्रः=भूचन्द्रस्तस्य=भूचन्द्रस्य। कान्तिरेव सरित्= कान्तिसरित्, तस्याः स्त्रोतः, तस्य कान्तिसरित्स्त्रोतसः=कान्तिप्रवाहवहतः, कान्तिमत



तिस्सा दाव परिक्खणाअ णिहिदो हत्थो थणोत्थंगदो
दाहोड्डामरिदो सहीहिं बहुसो हेलाअ कड्ढिज्जदि ।
किं तेणावि इमं णिसामअ गिरं संतोसिणिं त्तासिणिं
हत्थच्छत्तणिवारिदेंदुकिरणा वोल्लेइ सा जामिणीं ॥ २६ ॥

(तस्यास्तावत्परीक्षणाय निहितो हस्तः स्तनोत्सङ्गतो
दाहोड्डामरितः सखीभिर्बहुशो हेलया कृष्यते ।
किं तेनापीमां निशामय गिरं सन्तोषिणीं त्रासिनीं
हस्तच्छत्रनिवारितेन्दुकिरणाऽतिवाहयति सा यामिनीम् ॥२६॥)

अन्वयः—तस्याः तावत् परीक्षणाय सखीभिः स्तनोत्संगतः निहितः हस्तः दाहोड्डामरितः बहुशः हेलया कृष्यते । किं तेन अपि, इमाम् सन्तोषिणीं त्रासिनीं गिरम् निशामय । सा हस्तच्छत्रनिवारितेन्दुकिरणा यामिनीम् अतिवाहयति ।

व्याख्या—तस्याः कर्पूरमञ्जर्याः तावत् साकल्येन सम्यग्वा परीक्षणाय किंनिमित्तः कीदृशश्चास्याः सन्ताप इति निश्चयाय सखीभिः स्तनयोः उत्संगतः समीपात् निहितः अर्पितः हस्तः दाहोड्डामरितः सन्तापेन भृशमुत्तापितः बहुशः पुनः पुनः हेलया अवज्ञया कृष्यते अपनीयते इति भावः । यदि एतेनापि तस्याः सन्तापः सम्यग् न ज्ञायते तदा इमाम् सन्तोषिणी सन्तोषजनिकां त्रासिनीं त्रासोत्पादिकां

नहीं रहती हूँ, बल्कि मेरा कर्पूरमञ्जरी से स्वाभाविक प्रेम भी हो गया है। इस लिए उसके काम में लगे होने पर भी सेवक रूप से मैं कुछ निवेदन करती हूँ:—

सखियों के द्वारा कर्पूरमञ्जरी के सन्ताप के कारण और स्वरूप को पूर्णतया जानने के लिए उसके स्तनों पर रखा हुआ हाथ अत्यन्त गरम लगने पर बार बार हटा लिया जाता है। यदि इससे भी उसका सन्ताप ठीक न जाना जाय, तो सन्तोष और डर उत्पन्न करने वाली यह बात सुनिए। हाथ के छत्र से ही चन्द्रमा

टिप्पणी—निहितः=रखा हुआ—नि √धा+त=निहित—धा धातु को हि आदेश, क्तप्रत्यय। दाहेन उड्डामरितः=दाहोड्डामरितः=सन्तापेन भृशमुत्तापितः। हेला=खेल, अवज्ञा। कृष्यते=हटा लिया जाता है √कृष्+य+ते (कर्मवाच्य वर्तमान)। निशामय=सुनिए—नि √शामि+अ=निशामय—लोट् मध्यमपुरुष का एकवचन। 'सन्तुष्यति' इति



कज्जसेसं कविंजलो णिवेदइस्सदि, तं च देवेण तधा कादव्वं।
(कार्यशेषं कपिञ्जलो निवेदयिष्यति, तच्च देवेन तथा कर्त्तव्यम्)

[इति परिक्रम्य निष्क्रान्ता]

राजा—**वअस्स। किं उण तं कज्जसेसं ?।** (वयस्य ! किं पुनस्तत् कार्यशेषम् ?)

विदूषकः—**अज्ज हिंदोलणचउत्थी, तहिं देवीए गोरीं कदुअ कप्पूरमंजरीं हिंदोलए आरोहइदव्वा। ता मरगअकुंजट्ठिदेण देवेण कप्पूरमंजरी हिंदोलंती दट्ठव्वा; एदं तं कज्जसेसं।**
(अद्य हिन्दोलनचतुर्थी, तत्र देव्या गौरीं कृत्वा कर्पूरमञ्जरी हिन्दोलके आरोहयितव्या। तन्मरकतकुञ्जस्थितेन देवेन कर्पूरमञ्जरी हिन्दोलन्ती द्रष्टव्या; एतत्तत् कार्यशेषम्)

गिरं वाणीं शृणु। हस्तच्छत्रेण चन्द्रमयूखान् निवारितवती सा यथाकथंचित् यामिनीम् अतिवाहयति यापयति। 'सा देवे अनुरक्ता' इति प्रतिपादकत्वेन इयं वाक् देवस्य सन्तोषकरी, 'चन्द्रकिरणानि अपि दुःसहतापमुत्पादयन्ति, विलम्बोऽसह्यः' इतीयंवाणी भयमुत्पादयति अनिष्टाशंकया॥ २९॥

की किरणों को बचाती हुई वह किसी तरह रात काटती है। 'कर्पूरमञ्जरी महाराज से प्रेम करती है' यह बात तो महाराज को सन्तोष पहुँचाती है लेकिन चन्द्रमा की किरणों तक से अपने को बचाने का समाचार डर उत्पन्न करता है॥ २९॥

बाकी काम कपिञ्जल बतलायगा, उसे भी महाराज उसके अनुसार करें।

(यह कह कर घूमकर बाहर चली जाती है)

राजा—मित्र ! वह बाकी काम क्या है ?

विदूषक—आज हिंडोला झूलने की चतुर्थी है, महारानी गौरी की पूजा कर कर्पूरमञ्जरी को हिंडोले में झुलायेंगी, आप मरकतकुञ्ज नामक प्रासाद में बैठकर

या सा सन्तोषिणी=सन्तोष देने वाली—सम् √तुष्+इन्+ई=सन्तोषिणी (णिनि प्रत्यय, स्त्रीलिङ्ग का ई प्रत्यय)। हस्त एव छत्रम्=हस्तच्छत्रं तेन निवारिताः इन्दुकिरणाः यया सा हस्तच्छत्रनिवारितेन्दुकिरणा=करातपत्राच्छादितचन्द्रमयूखा—हाथ से ही चन्द्रमा की किरणों को बचाती हुई। यामिनी=रात्रि। अतिवाहयति=बिताती है॥ २९॥

राजा—[विचिन्त्य] ता अदिणिउणा वि छलिदा देवी। (तदतिनिपुणाऽपि छलिता देवी)

विदूषकः—पाइआ जोण्णमज्जारिआ दुद्धं त्ति तक्कं। (पायिता जीर्णमार्जारिका दुग्धमिति तक्रम्।)

राजा—को अण्णो तुम्हाहिंतो मह कज्जसज्जो ? को अण्णो चंदाहिंतो समुद्दवड्ढणणिट्ठो ?। (कोऽन्यो युष्मत्तो मम कार्य-सज्जः ? कोऽन्यश्चन्द्रतः समुद्रवर्द्धननिष्ठः ?।)

[इति परिक्रम्य कदलीगृहप्रवेशं नाटयतः]

विदूषकः—इअं उत्तुंगफडिअमणिवेदिआ, ता इह उवविसदु पिअवअस्सो। (इयमुत्तुङ्गस्फटिकमणिवेदिका, तदिहोपविशतु प्रिय-वयस्यः।)

कर्पूरमञ्जरी को झूला झूलता हुआ देखें। यही काम बाकी है।

राजा—(कुछ सोचकर) अत्यन्त चतुर महारानी कोभी हम लोगों ने धोखा दे दिया।

विदूषक—बूढ़ी बिल्ली को दूध के नाम से मट्ठा पिला दिया।

राजा—तुम्हारे अतिरिक्त और कौन मेरे कार्य में इतना तत्पर हो सकता है ? चन्द्रमा के अतिरिक्त और कौन समुद्र को बढ़ाने का काम कर सकता है ?

(इसके बाद दोनों घूमकर कदलीगृह में प्रवेश करने का अभिनय करते हैं)

विदूषक—यह स्फटिक मणि का ऊँचा चबूतरा है, मित्र ! यहाँ बैठो।

टिप्पणी—आरोहयितव्या = चढ़ानी चाहिए—आ √रोहि + इ + तव्या = आरोहयि-तव्या (तव्य प्रत्ययान्त)। हिन्दोलकम् = हिंडोला।

टिप्पणी—पायिता = पिलाया √पायि + त + अ। ण्यन्त पा धातु से कर्मवाच्य में क्त प्रत्यय। जीर्णा-च सा मार्जारिका = जीर्णमार्जारिका = बूढ़ी बिल्ली।

टिप्पणी—युष्मत्तः = तुमसे भिन्न = अन्य योग में पञ्चमी। कार्ये सज्जः कार्यसज्जः = कार्य में लगा हुआ। समुद्रस्य वर्धने निष्ठा यस्य स समुद्रवर्धननिष्ठः = समुद्राह्लादनतत्परः।

टिप्पणी—स्फटिकमणीनां वेदिकाः स्फटिकमणिवेदिका—उत्तुंगा चासौ स्फटिकमणि-वेदिका = उत्तुंगस्फटिकमणिवेदिका = स्फटिकमणि का ऊँचा चबूतरा। स्फटिक = सफेद पत्थर। वेदिका = चबूतरा।



[राजा तथा करोति]

विदूषकः—[हस्तमुद्यम्य] भो ! दीसदु पुण्णिमाचंदो ।
(भोः ! दृश्यतां पूर्णिमाचन्द्रः !)

राजा—[विलोक्य] अए ! दोलारूढाए मह वल्लभाए वअणं पुण्णिमाचंदो त्ति णिद्दिससि (आये दोलारूढाया मम वल्लभाया वदनं पूर्णिमाचन्द्र इति निर्दिशसि) [समन्तादवलोक्य]—

विच्छाअंतो णअररमणीमंडलस्साणणाइं
पच्छालंतो गगणकुहरं कंतिजोण्हाजलेण ।
पेच्छंतोणं हिदअणिहिदं णिद्दलंतो अ दप्पं
दोलालीलासरलतरलो दीसए से मुहेंदू ॥ ३० ॥

(विच्छाययन्नगररमणीमण्डलस्याननानि
प्रक्षालयन् गगनकुहरं कान्तिज्योत्स्नाजलेन ।

अन्वयः—अस्याः मुखेन्दुः नगररमणीमण्डलस्य आननानि विच्छाययन् कान्तिज्योत्स्नाजलेन गगनकुहरम् प्रक्षालयन् प्रेक्षमाणानाम् हृदयनिहितम् दर्पम् निर्दलयन् दोलालीलासरलतरलः दृश्यते ।

व्याख्या—अस्याः कर्पूरमञ्जर्याः मुखेन्दुः मुखचन्द्रः नगररमणीमण्डलस्य

(राजा बैठता है)

विदूषक—(हाथ उठाकर) महाराज ! पूर्णिमा का चन्द्रमा देखिए ।

राजा—(देख कर) अरे ! हिंडोले पर बैठी हुई मेरी प्रेमिका के मुख को पूर्णिमा का चन्द्र बतलाता है । (चारो ओर देखकर):—

कर्पूरमञ्जरी का चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख नगर की समस्त स्त्रियों के मुखों को अपने सौन्दर्य से मलिन करता हुआ, कान्तिरूपी चांदनी के विस्तार से

टिप्पणी—विगता छाया यस्य तत् विच्छायम्-विच्छायं करोति = विच्छाययति (नामधातुण्यन्त) विच्छाययतीति विच्छाययन् (शत्रन्त) मलिनीकुर्वन् = मलिन करता हुआ । प्रक्षालयन् = उज्ज्वल बनाता हुआ प्र √क्षालि + अन् (शत्रन्त) । निर्दलयन् =

प्रेक्षमाणानां हृदयानिहितं निर्दलयंश्च दर्पं
दोलालीलासरलतरलो दृश्यतेऽस्या मुखेन्दुः ॥ ३० ॥)

अवि अ (अपि च)—

उच्चेहिं गोपुरेहिं धवलधअपडाडंबरिल्लावलीहिं
घंटाहिं विद्दुरिल्लासुरतरुणिविमाणाणुरूअं वहंती ।
प्पाकारं लंघअंती कुणइ रअवसा उण्णमंती णमंती
एंती जंती अ दोला जणमणहरणं कट्टणुक्कट्टणेहिं ॥ ३१ ॥
(उच्चेषु गोपुरेषु धवलध्वजपटाडम्बरवहलावलीषु
घण्टाभिर्विद्राणसुरतरुणिविमानानुरूपं वहन्ती ।

नगरकामिनीसंघस्य आननानि मुखानि विच्छाययन् विच्छायानि विगतकान्तीनि कुर्वन् दृश्यते । अस्याः मुखचन्द्रः स्वकान्तिरूपायाः ज्योत्स्नायाः चन्द्रिकायाः जलेन गगनकुहरम् अन्तरिक्षविवरम् प्रक्षालयन् धवलयन् प्रकाशयन् वा दृश्यते । कर्पूरमंजरीं पश्यतां पश्यन्तीनां च नराणां नारीणां च 'ममैव भार्या सुन्दरी नान्या, अहमेव सुन्दरी नान्येति वा हृदयस्थं दर्पमभिमानं निर्दलयन् निरसयन, उन्मूलयन् वा अस्याः मुखचन्द्रः दोलायाः लीलया सरलतरलः संनिकृष्टविप्रकृष्टश्च दृश्यते । यदा दोला सन्मुखमायाति तदा सन्निकृष्टं समीपं दृश्यते, यदा पृष्ठतः गच्छति तदा दूरमिति भावः ॥ ३० ॥

अन्वयः—धवलध्वजपटाडम्बरवहलावलीषु उच्चेषु गोपुरेषु घण्टाभिः विद्राण-

---

आकाश को उज्ज्वल करता हुआ तथा देखने वाले पुरुषों और स्त्रियों के हृदय के (अपनी प्रेयसियों तथा अपने सौन्दर्य सम्बन्धी) गर्व को चूर करता हुआ झूले के आने जाने से पास तथा दूर दिखाई पड़ता है ॥ ३० ॥

और भी :—

श्वेत ध्वजाओं की पङ्क्तियों से युक्त ऊँचे गोपुरों में घण्टे के शब्द से शीघ्र जाते

चूर करता हुआ (शत्रन्त) दृश्यते=दिखाई पड़ता है ($\surd$दृश्+य+ते—कर्मवाच्य-लट्-वर्तमान) मुखमेव इन्दुः मुखेन्दुः=मुखचन्द्रः (उपमानसमास) ॥ ३० ॥

गोपुर=नगर का द्वार । धवलाश्च ते ध्वजपटाः=धवलध्वजपटाः, तेषां ये आडम्बराः



प्राकारं लङ्घयन्ती करोति रयवशादुन्नमन्ती नमन्ती
आयान्ती यान्ती च दोला जनमनोहरणं कर्षणोत्कर्षणैः॥३१॥

अवि अ (अपि च)—

रणंतमणिणेउरं झणझणंतहारच्छडं
कलक्कणिदकिंकिणीमुहरमेहलाडंबरं।
विलोलवलआवलीजणिदमंजुसिंजारवं
ण कस्स मणमोहणं ससिमुहीअ हिंदोलणं ? ॥३२॥

सुरतरुणिविमानानुरूपम् वहन्ती प्राकारं लङ्घयन्ती रयवशात् उन्नमन्ती नमन्ती कर्षणोत्कर्षणैः आयान्ती यान्ती दोला जनमनोहरणम् करोति।

व्याख्या—धवलानां श्वेतानां ध्वजपटानां ये आडम्बराः विस्ताराः तैः वहलाः पूर्णाः आवल्यः येषु तादृशेषु उच्चेषु गोपुरेषु पुरद्वारेषु घण्टाभिः घण्टारवैः विद्राणं वेगेन गच्छत् यत् सुरतरुणीनां विमानम् तदनुरूपं वहन्ती चलन्ती, प्राकारं प्राचीरं लङ्घयन्ती अतिक्रामन्ती, तथा रयवशात् वेगहेतोः उन्नमन्ती ऊर्ध्वं गच्छन्ती, नमन्ती अधोभवन्ती, कर्षणोत्कर्षणैः आकर्षणेन त्यागेन च आयान्ती आगच्छन्ती समीपमिति यावत्, यान्ती दूरं गच्छन्ती दोला जनानां मनांसि हरति ॥ ३१ ॥

हुए देवाङ्गनाओं के विमान की तरह चलता हुआ, चहारदीवारी को भी लाङ्घने वाला, वेग से ऊपर और नीचे जाता हुआ, तथा खैंचने और छोड़ देने से पास आता और जाता हुआ यह झूला लोगों के मन को अपनी ओर आकृष्ट करता है॥३१॥

और भीः—

विस्ताराः, तैः वहलाः पूर्णाः आवल्यः पङ्क्तयः येषु तेषु धवलध्वजपटाडम्बरवहलावलीषु = श्वेतध्वजपटविस्तारपूर्णपङ्क्तिषु। विद्राणं वेगेन गच्छन् यत् सुरतरुणिविमानम् = विद्राणसुरतरुणिविमानं तस्यानुरूपम् = विद्राणसुरतरुणिविमानानुरूपम्। प्राकार=प्राचीर, चाहारदीवारी। लङ्घयन्ती = √लङ्घि + अ + अन्ती (शत्रन्त, स्त्रीप्रत्ययान्त) कर्षण = खींचना। उत्कर्षण = छोड़ना। विद्राण-वि √द्रा + त = विद्राण क्त प्रत्यय का त न हो गया ॥ ३१ ॥

(रणन्मणिनूपुरं झणझणायमानहारच्छटं
कलक्वणितकिङ्किणीमुखरमेखलाडम्बरम् ।
विलोलवलयावलीजनितमञ्जुशिञ्जारवं
न कस्य मनोमोहनं शशिमुख्या हिन्दोलनम् ? ॥३२॥)

विदूषकः—**भो ! सुत्तआरो तुमं । अहं उण वित्तिआरो भविअ वित्थरेण वण्णेमि ।** (भोः ! सूत्रकारस्त्वम् । अहं पुनर्वृत्ति-

---

अन्वयः—रणन्मणिनूपुरम् झणझणायमानहारच्छटम् कलक्वणितकिङ्किणी-मुखरमेखलाडम्बरम् विलोलवलयावलीजनितमञ्जुशिञ्जारवम् शशिमुख्याः हिन्दोलनं कस्य मनोमोहनं न ।

व्याख्या—रणन्तौ ध्वनन्तौ मणिनूपुरौ यस्मिन् तादृशं शब्दायमाननूपुर-संयुक्तं, झणझणायमानया हारच्छटया च मिश्रितम्, कलं मधुरं क्वणन्त्यः याः किङ्किण्यः क्षुद्रघण्टिकाः ताभिः मुखरः यः मेखलायाः रशनायाः आडम्बरः तेन संयुक्तम्, विलोलाभिः चपलाभिः वलयावलीभिः उत्पन्नः यः मञ्जुः मनोहरः शिञ्जारवः, तेन च युक्तम् चन्द्रवदनायाः कर्पूरमञ्जर्या हिन्दोलनं कस्य मनो न मोहयति, अपि तु सर्वस्यै-वेति भावः। यदा कर्पूरमञ्जरी हिन्दोलति, तदा तस्याः नूपुरौ शब्दं कुरुतः, हारच्छटा च झणझणायते, मेखलायां च याः क्षुद्रघण्टिकाः ताः मधुरं कूजन्ति, तस्याः कङ्कणानि च मञ्जुशिञ्जारवं कुर्वन्ति । एतादृशं तस्याः हिन्दोलनं कस्य मनः नाह्लादयति, अपि तु सर्वस्यैव ॥ ३२ ॥

मणिनूपुरों की झङ्कार से युक्त, हारावली के झन् झन् शब्द से पूर्ण, करधनी की छोटी २ घण्टियों के मधुर शब्द से भरा हुआ तथा चञ्चल कङ्कणों से उत्पन्न मधुर शब्दवाला यह चन्द्रमुखी कर्पूरमञ्जरी का झूलना किसके मन को अच्छा नहीं लगता ? ॥ ३२ ॥

विदूषक—**मित्र ! तुम तो सूत्रकार हो—अर्थात् संक्षेप में बोलते हो, मैं वृत्तिकार**

टिप्पणी—हिन्दोलनम् = झूला झूलना । मनसः मोहनम् = मनोमोहनम्—मन को मुग्ध करने वाला ॥ ३२ ॥

टिप्पणी—सूत्रं करोतीति सूत्रकारः—कर्म में अण् प्रत्यय। सूत्रलक्षण-स्वल्पाक्षरम-



कारो भूत्वा विस्तरेण वर्णयामि)—

उवरिठ्ठिअथणपाब्भारपीडिअं चरणपंकजजुअं से।
फुक्कारइव्व मअणं रणंतमणिणेउररवेण ॥ ३३ ॥

(उपरिस्थितस्तनप्राग्भारपीडितं चरणपङ्कजयुगं तस्याः।
फूत्कारयतीव मदनं रणन्मणिनूपुररवेण ॥ ३३ ॥)

हिंदोलणलीलाललणलंपडं चक्कवत्तुलं रमणं।
किलकिलइव्व सहरिसं कंचीमणिकिंकिणिरवेण ॥ ३४ ॥

(हिन्दोलनलीलाललनलम्पटं चक्रवर्त्तुलं रमणम्।
किलकिलायतीव सहर्षं काञ्चीमणिकिङ्किणीरवेण ॥ ३४ ॥)

व्याख्या—उपरिस्थितेत्यादि–तस्याः कर्पूरमञ्जर्याः चरणपङ्कजयुगम् पादपद्म-युगलम्, उपरिस्थितयोः स्तनयोः प्राग्भारेण पीडितं भाराक्रान्तं सत्, रणन्तौ यौ मणिनूपुरौ तयोः रवेण मदनम् कामदेवं फूत्कारयतीव आह्वयतीव। कर्पूरमञ्जर्याः मणिनूपुराणां शब्दमात्रमेव श्रुत्वा कामिनां मदनावेशः जायते। अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः। फूत्कारयति = फूत्कारं करोति। फूत्कार शब्द से णिच् √फूत्कारि + अ + ति ॥ ३३ ॥

अन्वयः—हिन्दोलनलीलाललनलम्पटं चक्रवर्तुलम् रमणम् काञ्चीमणि किङ्किणी-रवेण सहर्षम् किलकिलायति इव।

व्याख्या—हिन्दोलनस्य या लीला तस्याः ललने लम्पटं हिन्दोलनविलास-प्रसरणलुब्धम् चक्रवत् वर्तुलं गोलाकारम् रमणम् नितम्बस्थलम् काञ्ची रशना तत्र

के रूप में विस्तारपूर्वक वर्णन करूंगा।

कर्पूरमञ्जरी के चरण कमल, ऊपर उठे हुए स्तनों के उभार से दब कर मणि-नूपुरों के शब्द द्वारा कामदेव को बुलाते हुए से लगते हैं ॥ ३३ ॥

हिंडोले की लीला के साथ लीला (खेलने) करने के लालची और चक्र की तरह गोल कर्पूरमञ्जरी के नितम्ब, करधनी में लगी हुई रत्नों की छोटी २ घण्टियों के शब्द द्वारा हर्ष के साथ मानों किलकिलाते हैं ॥ ३४ ॥

संदिग्धं सारवद्विश्वतोमुखम्। अस्तोभमनवद्यं च सूत्रं सूत्रविदो विदुः। वृत्ति = टीका ॥

दोलांदोलणलीलासरंतसरिआच्छलेण से हारो ।
वित्थारइव्व कुसुमाउहणरवइणो कित्तिवल्लीओ ॥ ३५ ॥
(दोलान्दोलनलीलासरत्सरिकाच्छलेनास्या हारः ।
विस्तारयतीव कुसुमायुधनरपतेः कीर्त्तिवल्लीः ॥ ३५ ॥)

संमुहपवणप्पेरिदोवरिवत्थे दरदस्सिदाइं अंगाइं ।
हक्कारिऊण मअणं पासम्मि णिवेसअंति व्व ॥ ३६ ॥
(सम्मुखपवनप्रेरितोपरिवस्त्रे दरदर्शितान्यङ्गानि ।
आकार्य्य मदनं पार्श्वे निवेशयन्तीव ॥ ३६ ॥)

स्थिताः याः मणिकिङ्किण्यः मणिमयक्षुद्रघंटिकाः तासां रवेण सहर्षं प्रसादपूर्वकम् किलकिलेति शब्दं करोति । यदा कर्पूरमञ्जरी हिन्दोलते, तदा तस्याः नितम्बोपरि स्थिता काञ्चीकिङ्किण्यः किलकिलेति गुञ्जन्ति ॥ ३४ ॥

अन्वयः—अस्याः हारः दोलान्दोलनलीलासरत्सरिकाच्छलेन कुसुमायुधनरपतेः कीर्तिवल्लीः विस्तारयति इव ।

व्याख्या—अस्याः कर्पूरमञ्जर्याः हारः दोलायाः आन्दोलनलीला तस्यां सरन्ती चलन्ती या सरिका मुक्तावली तस्याः छलेन कामदेवभूपतेः कीर्तिवल्लीः कीर्तिलताः कीर्तिपरम्पराः विस्तारयति प्रसारयतीवेत्यर्थः । यदा कर्पूरमञ्जरी हिन्दोलते तदा दोलान्दोलनानुसारं तस्याः हारस्य मुक्तावली अपि चलति । एतद्दृष्ट्वा इदं प्रतिभाति यत् हारः कामदेवस्य कीर्तिं प्रसारयन्नास्ते ॥ ३५ ॥

अन्वयः—सम्मुखपवनप्रेरितोपरिवस्त्रे दरदर्शितानि अङ्गानि, मदनम् आकार्य पार्श्वे निवेशयन्ति इव ।

व्याख्या—सम्मुखेन सम्मुखादागतेन पवनेन वायुना प्रेरितं सञ्चालितं यत् उपरिवस्त्रं तस्मिन् दरदर्शितानि ईषदुद्घाटितानि अङ्गानि ऊरुप्रभृतीनि मदनमनङ्गम्

झूले के चलने के साथ चलती हुई मुक्तावली के द्वारा कर्पूरमञ्जरी का हार कामदेवरूपी राजा की कीर्तिपरम्परा को फैलाता सा है ॥ ३५ ॥

सामने से आती हुई हवा के द्वारा ऊपर के वस्त्र के हट जाने पर कुछ २ दिखाई देती हुई इसकी जङ्घाएँ कामदेव को बुला कर पास बैठाती हुई सी दिखाई देती है ॥ ३६ ॥



ताडंकजुअं गंडेसु वहलघुसिणेसु घडणलीलाहिं ।
देइ व्व दोलांदोलणरेहाओ गणणकोदुएण ॥ ३७ ॥

(ताटङ्कयुगं गण्डयोर्बहलघुसृणयोर्घटनलीलाभिः ।
ददातीव दोलान्दोलनरेखा गणनकौतुकेन ॥ ३७ ॥)

णअणाइं प्पसिदिसरिसाइं झत्ति फुल्लाइ कोदुहलेण ।
अप्पेतिअ व्व कुवलअसिलीमुहे पंचवाणस्स ॥ ३८ ॥

(नयने प्रसृतिसदृशे झटिति फुल्ले कौतूहलेन ।
अर्प्यते इव कुवलयशिलीमुखे पञ्चवाणस्य ॥ ३८ ॥)

आकार्य आहूय पार्श्वे समीपे निवेशयन्ति इव दृश्यन्ते । पवनेन वस्त्राणां सञ्चालने ईषदुन्मिपितानामूर्वादीनां दर्शनादेव कामिनां कामोद्रेकः सञ्जायते अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः ॥

अन्वयः—ताटङ्कयुगम् वहलघुसृणयोः गण्डयोः घटनलीलाभिः गणनकौतुकेन दोलान्दोलनरेखाः ददाति इव ।

व्याख्या—कर्पूरमञ्जर्याः ताटङ्कयुगम् कर्णभूपणयुगलम् वहलं घुसृणं ययोः तयोः प्रभूतकुङ्कुमरागवतोः गण्डयोः कपोलयोः घटनलीलाभिः घर्पणविलासैः गणनकौतुकेन कति वारान् हिन्दोल्यते इति संख्याकरणकुतूहलेन दोलाया आन्दोलनस्य रेखाः चिह्नविशेषान् ददातीव ॥ ३७ ॥

अन्वयः—प्रसृतिसदृशे नयने झटिति कौतूहलेन फुल्ले पञ्चवाणस्य कुवलयशिलीमुखे अर्प्यते इव ।

व्याख्या—प्रसृतिसदृशे अर्धाञ्जलिपरिमिते अतिदीर्घे कर्पूरमञ्जर्याः नयने

कर्पूरमञ्जरी के कानों में पड़े हुए ताटङ्क उसके कुङ्कुम लगे हुए कपोलों पर बार २ लगने से ऐसे मालूम देते हैं जैसे झूला झूलने की गिनती करने के लिए रेखाएँ लगाते हों ॥ ३७ ॥

कर्पूरमञ्जरी की बड़ी २ आंखे कुतूहल में एकाएक खुली हुई ऐसी लगती हैं मानों कामदेव ने नीलकमलरूपी बाण कामिपुरुषों के मन पर छोड़ दिए हों ॥३८॥

टिप्पणी—घुसृण=कुंकुम । ताटंक=कान का गहना । कितने बार यह झूलती है यह गिनने के लिए ताटङ्क उसके गालों पर रेखाएँ सी बनाते हैं ॥ ३७ ॥

दोलारअविच्छेओ कहं वि मा होउ इत्ति पडइव्व ।
पुट्ठम्मि वेणिदंडो मम्महचम्मजट्ठिआअंतो ॥ ३९ ॥
(दोलारसविच्छेदः कथमपि मा भवत्विति पततीव ।
पृष्ठे वेणीदण्डो मन्मथचर्मयष्टिकायमानः ॥ ३९ ॥)
इत्तिएदाइं विलासुज्जलाइं दोलापवंचचरिआइं ।
कस्स ण लिहइ चित्ते णिउणा कंदप्पचित्तअरो ॥ ४० ॥
(इत्येतानि विलासोज्ज्वलानि दोलाप्रपञ्चचरितानि ।
कस्य न लिखति चित्ते निपुणः कन्दर्पचित्रकरः ? ॥ ४० ॥)

कौतूहलेन झटिति सहसा फुल्ले विकासं गते । तस्याः नेत्रे दृष्ट्वा एतत् प्रतीयते यत् कामदेवेन कामिनां मनस आघाताय स्वनीलकमलरूपिणौ बाणौ संधत्तौ । तस्याः नेत्रे नीलकमलोपमौ कामिनां मनांसि च संहरन्ति ॥ ३८ ॥

अन्वयः—दोलारसविच्छेदः कथमपि मा भवतु इति मन्मथचर्मयष्टिकायमानः वेणीदण्डः पृष्ठे पतति इव ।

व्याख्या—दोलारसस्य दोलनव्यापारस्य विच्छेदः विरामः कथमपि न भवेदित्यर्थं मन्मथस्य कामस्य चर्मयष्टिकायमानः चर्मनिर्मिता यष्टिरिव आचरन् वेणीदण्डः वेणीकृतकेशयष्टिः पृष्ठे पतति इव आघातं करोतीव ॥ ३९ ॥

अन्वयः—निपुणः कन्दर्पचित्रकरः इत्येतानि विलासोज्ज्वलानि दोलाप्रपञ्चचरितानि कस्य चित्ते न लिखति ।

व्याख्या—निपुणः कुशलः कन्दर्प एव चित्रकरः आलेख्यकरः इत्येतानि

झूलने में किसी भी तरह कमी न आए—इस विचार से कर्पूरमञ्जरी की वेणी कामदेव की चर्मनिर्मित कशा की तरह उसकी पीठ पर पड़ती है ॥ ३९ ॥

कामदेवरूपी चतुर चित्रकार ऊपर वर्णन किए गए विलास से पूर्ण झूला झूलने के विस्तृत चित्रों को किसके हृदय पर चित्रित नहीं करता है ? ॥ ४० ॥

टिप्पणी—कर्पूरमञ्जरी के झूला झूलने का यह विस्तृत वर्णन (३३-४० श्लो०) विदूषक का किया हुआ है। राजा ने केवल सूत्ररूप में (संक्षेप में) वर्णन किया था। विदूषक ने उसकी यह वृत्ति (विशद व्याख्या) कर दी ॥ ४० ॥



राजा—[सविषादम्] कधमवतिण्णा कप्पूरमंजरी ! रित्ता दोला, रित्तं अ मह चित्तं, रित्ताइं दंसणुस्सुआइं मह णअणाइं।
(कथमवतीर्णा कर्पूरमञ्जरी ! रिक्ता दोला, रिक्तं च मम चित्तं, रिक्ते दर्शनोत्सुके मम नयने ।)

विदूषकः—ता बिज्जुल्लेहा विअ खणदिट्ठणट्ठा । (तद्विद्युल्लेखेव क्षणदृष्टनष्टा ।)

राजा—मा एव्वं भण; हरिचंदपुरी विअ दिट्ठा पणट्ठा अ। (मैवं भण, हरिश्चन्द्रपुरीव दृष्टा प्रनष्टा च।) [स्मृतिनाटितकेन]—

मांजिट्ठी ओट्ठमुद्दा णवघडणसुवण्णुज्जला अंगजट्ठी
दिट्ठी वालेंदुलेहाधवलिमजइणी कुंतला कज्जलाहा ।

पूर्वोक्तानि विलासेन उज्ज्वलानि विचित्राणि दोलाप्रपञ्चचरितानि दोलान्दोलनविस्तृतचरित्राणि कस्य जनस्य चित्ते हृदयपटले न लिखति न चित्रयति । अपि तु सर्वस्यैव कामिनः चित्रे इमानि चित्राणि कन्दर्पेण आलिख्यन्ते ॥ ४० ॥

राजा—(दुःख के साथ) अरे, कर्पूरमञ्जरी तो उतर पड़ी ? झूला खाली हो गया, मेरा मन भी खाली हो गया और उसको देखने के लिये लालायित मेरी आंखे भी खाली हो गई ?

विदूषक—वह बिजली की चमक की तरह कभी दिखाई देती है कभी छिप जाती है।

राजा—ऐसा मत कहो, हरिश्चन्द्र की नगरी की तरह दिखाई दी और नष्ट हो गई । (स्मृति का अभिनय कर):—

कर्पूरमञ्जरी के ओठ लाल हैं, उसका पतला शरीर नवीन सुवर्ण की तरह चमकता है, आंखे द्वितीया के चन्द्रमा से भी अधिक उज्ज्वल हैं, केश काजल की तरह काले हैं—इस तरह कर्पूरमञ्जरी में रंगों का अनिर्वचनीय सौन्दर्य झलक

टिप्पणी—हरिश्चन्द्रपुरीव—राजा हरिश्चन्द्र की नगरी निरन्तर उत्सवों से पूर्ण रहने के कारण लोगों को आनन्द देती रहती थी बाद में विश्वामित्र ऋषि ने अपने पराक्रम से उसे छीन कर नष्ट कर दिया—इसी तरह कर्पूरमञ्जरी को हरिश्चन्द्र की उपमा दी गई है।

इत्थं वण्णाणं रेहा विहरइ हरिणीचंचलक्खी अ एसा
कंदप्पो दीहदप्पो जुअजणजअणे पुण्णलक्खो व्व भादि ॥४१॥

(माञ्जिष्ठी ओष्ठमुद्रा नवघटनसुवर्णोज्ज्वलाऽङ्गयष्टिः
दृष्टिर्बालेन्दुरेखाधवलिमजयिनी कुन्तलाः कज्जलाभाः ।
इत्थं वर्णानां रेखा विहरति हरिणीचञ्चलाक्षी चैषा
कन्दर्पो दीर्घदर्पो युवजनजये पूर्णलक्ष्य इव भाति ॥ ४१ ॥)

अन्वयः—ओष्ठमुद्रा माञ्जिष्ठी, अङ्गयष्टिः नवघटनसुवर्णोज्ज्वला, दृष्टिः बालेन्दुरेखाधवलिमजयिनी, कुन्तलाः कज्जलाभाः, इत्थं वर्णानां रेखा विहरति, एषा च हरिणीचञ्चलाक्षी, दीर्घदर्पः कन्दर्पः युवजनजये पूर्णलक्ष्य इव भाति ।

व्याख्या—कर्पूरमञ्जर्याः ओष्ठमुद्रा ओष्ठावयवः माञ्जिष्ठी मञ्जिष्ठारागरक्ता, अङ्गयष्टिः तनुलता नवसुवर्णमिव उज्ज्वला, दृष्टिः बालाया अभिनवायाः इन्दुरेखायाः चन्द्रकलायाः धवलिमानं जयति, कुन्तलाः केशाः कज्जलाभाः कज्जलसदृशाः गाढनीलाः, इत्थम् एवंरूपा वर्णानां रेखा माधुरी विहरति विलसति । इयं च स्वयं हरिणीवत् चपलनेत्रा वर्तते । अत एवं प्रतीयते यत् महान् गर्वशीलः कामदेव एव युवजनानां मनांसि जेतुं पूर्णमनोरथोऽस्ति ॥ ४१ ॥

रहा है, कर्पूरमञ्जरी स्वयं भी हिरनी की तरह चञ्चल नेत्र वाली है । ऐसा लगता है कि साक्षात् महान् गर्वशाली कामदेव ही नवयुवकों के हृदय को जीतने का अपना मनोरथ पूरा कर रहे हैं ॥ ४१ ॥

टिप्पणी—ओष्ठयोः मुद्रा = ओष्ठमुद्रा । माञ्जिष्ठी = मजीठ के राग से रंगी हुई—लाल । मजीठ एक प्रकार की लकड़ी, जिससे रंग बनता है । नवं घटनं निर्माणं यस्य तत् नवघटनं, नवघटनं च तत्सुवर्णं नवघटनसुवर्णम् , तद्वत् उज्ज्वला = नवघटनसुवर्णोज्ज्वला = नये बने हुये सोने के समान उज्ज्वल । बाला च सा इन्दुरेखा = बालेन्दुरेखा तस्याः धवलिमानं जयतीति बालेन्दुरेखाधवलिमजयिनी—नवीन चन्द्रकला की उज्ज्वलता को भी जीतनेवाली—अर्थात् अत्यन्त उज्ज्वल । हरिण्याः इव चञ्चले अक्षिणी यस्याः सा रिणीचञ्चलाक्षी—हिरनी के समान चञ्चल नेत्र वाली । दीर्घो दर्पः यस्य सः दीर्घदर्पः = बड़े गर्व वाला ॥ ४१ ॥



विदूषकः—एदं तं मरगअकुंजं। इह उवविसिअ प्पिअवअस्सो प्पडिवालेदु तं। संझावि सण्णिहिदा वट्टदि। (एतत्तन्मरकतकुञ्जम्। इहोपविश्य प्रियवयस्यः प्रतिपालयतु ताम्। सन्ध्याऽपि सन्निहिता वर्त्तते।)

[उभौ तथा कुरुतः]

राजा—अदिसिसिरं वि हिमाणिं संदावदाइणिं अणुहवामि। (अतिशिशिरामपि हिमानीं सन्तापदायिनीमनुभवामि।)

विदूषकः—ता लच्छीसहअरो खणं चिट्ठदु देवो, जाव अहं सिसिरोपआरसामग्गिं संपादेमि। [इति नाट्येन निष्क्रम्य पुरोवलोक्य च] किं उण एसा विअक्खणा इदो णिअडे आअच्छदि? (तल्लक्ष्मीसहचरः क्षणं तिष्ठतु देवः, यावदहं शिशिरोपचारसामग्रीं सम्पादयामि [इति नाट्येन निष्क्रम्य पुरोऽवलोक्य च] किं पुनरेषा विचक्षणा इतो निकटे आगच्छति?)

विदूषक—यह मरकत कुञ्ज है, प्रिय मित्र! यहाँ बैठकर उनकी प्रतीक्षा करो शाम भी हो गई है।

(दोनों बैठते हैं)

राजा—अत्यन्त शीतल हिम भी गरम मालूम पड़ता है।

विदूषक—श्रीमान् लक्ष्मी (राजलक्ष्मी) के साथ यहाँ प्रतीक्षा करें, मैं गर्मी दूर करने की सामग्री तैयार करता हूँ (अभिनय के साथ बाहर जाकर और सामने देख कर) क्या विचक्षणा पास आ रही है?

टिप्पणी—उपविश्य=बैठकर-उप √विश्+य-ल्यबन्त। प्रतिपालयतु=प्रतीक्षा करें। सन्निहिता=निकट।

टिप्पणी—हिमानी=हिमस्य अलयः=हिमानी-हिम शब्द से बाहुल्य में ई स्त्री प्रत्यय, मध्य में आन् आगम। सन्तापं दातुं शीलमस्याः इति सन्तापदायिनी ताम्=सन्तापदायिनीम् दाह उत्पन्न करने वाली-सन्ताप पूर्वक √दा धातु से इन् (णिनि) प्रत्यय, य् का आगम-फिर स्त्रीलिङ्ग का ई प्रत्यय।

१. सम्पादयामि=तैयार करता हूँ।

राजा—संणिहिदो संकेअकालो कहिदो मंतीहिंपि ।
(सन्निहितः सङ्केतकालः कथितो मन्त्रिभ्यामपि ।) [स्मृत्वा मदना-कृतमभिनीय]—

किसलअकरचरणा वि खु कुवलअणअणा मिअंकवअणा वि ।
अहह ! णवचंपअंगी तह वि तावेइ अच्चरिअं ॥ ४२ ॥
(किसलयकरचरणाऽपि खलु कुवलयनयना मृगाङ्कवदनाऽपि ।
अहह ! नवचम्पकाङ्गी तथाऽपि तापयत्याश्चर्यम् ॥ ४२ ॥)

विदूषकः—[सम्यगवलोक्य] अए ! विअक्खणा सिसिरोवआरसामग्गीसहिदहत्था आअदा । (अये ! विचक्षणा शिशिरोपचारसामग्रीसहितहस्ता आगता ।)

व्याख्या—इयं कर्पूरमञ्जरी नवपल्लवाविव कोमलौ करचरणौ दधाति, अस्याः नयने नीलोत्पले इव मनोहरे, अस्याः मुखम् चन्द्रवत सुधामयम्, अङ्गानि च नवानि चम्पकपुष्पाणि इव दीप्यमानानि मृदूनि च सन्ति । तथापि सा तापयति दाहज्वर-मुत्पादयति-महान खेदोऽयम्, आश्चर्यं चाऽस्ते । सन्तापनिवर्तकानां गुणानां सद्भावेऽपि सन्तापस्य निवृत्तिर्न-इति विशेषोक्तिरलंकारः, सन्तापहेतुं विनाऽपि सन्तापोत्पत्तिरिति विभावनालङ्कारः-उभयोः सन्देहसंकरः ॥ ४२ ॥

राजा—मन्त्रियों ने भी सङ्केत काल के पास होने का जिक्र किया है। (याद करके—कामावेश को प्रकट कर):—

नये पत्तों के समान कोमल चरणों वाली, नीलकमल के समान नेत्रों वाली, चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख वाली तथा चम्पा के नये फूल के समान मनोहर अङ्गों वाली भी यह कर्पूरमञ्जरी सन्ताप उत्पन्न करती है—यह बड़ा आश्चर्य है॥४२॥

विदूषक—(अच्छी तरह देखकर) अरे ! शिशिरोपचार की सामग्री हाथ में लिये विचक्षणा आ रही है ?

टिप्पणी—किसलयौ नवपल्लवौ इव करचरणौ यस्याः सा किसलयकरचरणा (बहुव्रीहि)। नये पत्तों के समान कोमल हाथपैर वाली । कुवलये इव नयने यस्याः सा कुवलयनयना= नीलकमलाक्षी । मृगाङ्क इव वदनं यस्याः सा मृगाङ्कवदना=चन्द्रमुखी। नवानि चम्पकानि इव अंगानि यस्याः सा नवचम्पकांगी । विरहदाहज्वरः=विरह की जलन ॥ ४२ ॥



[ततः प्रविशति शिशिरोपचारसामग्रीसहिता विचक्षणा]

विचक्षणा—[परिक्रम्य] अहो ! प्पिअसहीए महंतो क्खु विरहदाहज्जरो । (अहो ! प्रियसख्या महान् खलु विरहदाहज्वरः)

विदूषकः—[उपसृत्य] भोदि ! किं एदं ? (भवति ! किमेतत् ?)

विचक्षणा—सिसिरोवआरसामग्गी । (शिशिरोपचारसामग्री)

विदूषकः—कस्स किदे ? (कस्य कृते ?)

विचक्षणा—प्पिअसहीए किदे । (प्रियसख्याः कृते ।)

विदूषकः—ता मह वि अद्धं देहि ? (तन्ममापि अर्द्धं देहि ?)

विचक्षणा—किं णिमित्तं ? (किं निमित्तम् ?)

विदूषकः—महाराअस्स किदे । (महाराजस्य कृते ।)

विचक्षणा—किं उण कारणं तस्स ? (किं पुनः कारणं तस्य ?)

विदूषकः—कप्पूरमंजरिए वि किं ? (कर्पूरमञ्जर्या अपि किम् ?)

(शिशिरोपचार की सामग्री लिये विचक्षणा आती है)

विचक्षणा—(घूम कर) प्रिय सखी को बड़ा दाहज्वर है ।
विदूषक—(पास जाकर) बहिन जी ! यह क्या है ?
विचक्षणा—शीतलता पहुँचाने का सामान ।
विदूषक—किसके लिये ?
विचक्षणा—अपनी प्रिय सखी के लिये ।
विदूषक—मेरे लिये भी आधा दो ।
विचक्षणा—किस लिये ?
विदूषक—महाराज के लिये ।
विचक्षणा—उनको क्या हो गया है ?
विदूषक—कर्पूरमञ्जरी को क्या हो गया है ?

टिप्पणी—शिशिरोपचारस्य सामग्री = शिशिरोपचारसामग्री = सन्तापनिवर्तकद्रव्य-समूह-चन्दन लेप इत्यादि ।

एण्हिं तं संपादइस्सदि । (इदानीं तत् सम्पादयिष्यति)

विदूषकः—ता मरगअकुंजादो प्पिअवअस्सं आणीअ तमालविडवंतरिदं ठाविअ एदं पच्चक्खं कारइस्सं । (तन्मरकतकुञ्जात् प्रियवयस्यमानीय तमालविटपान्तरितं स्थापयित्वा एतत्प्रत्यक्षं कारयिष्यामि) [तथा नाटयित्वा राजानं प्रति] भो भो ! उट्ठिअ पेक्ख णिअहिअअसमुद्दचंदलेहं । (भो भो ! उत्थाय प्रेक्षस्व निजहृदयसमुद्रचन्द्रलेखाम् ।)

[राजा तथा करोति]

[ततः प्रविशति विशेषभूषिताङ्गी कर्पूरमञ्जरी]

कर्पूरमञ्जरी—कहिं उण विअक्खणा ? (क्व पुनर्विचक्षणा ?)

विचक्षणा—[तामुपसृत्य] सहि ! करीअदु देवीए समादिट्ठं । (सखि ! क्रियतां देव्या समादिष्टम् ।)

अब वह उसे पूर्ण करेगी ।

विदूषकः—मरकत कुञ्ज से महाराज को लाकर तमालविटप में छिपाकर यह दृश्य प्रत्यक्ष दिखलाऊंगा । (ऐसा अभिनय कर—राजा से) अरे, अरे उठो, अपने हृदय समुद्र की चन्द्रलेखा को देखो ?

(राजा वैसा ही करता है)

(विशेष रूप से अंगों को सजाये हुये कर्पूरमञ्जरी आती है)

कर्पूरमजरी—विचक्षणा कहाँ है ?

विचक्षणा—(उसके पास जाकर) सखी ! महारानी की आज्ञा पूर्ण करो ?

टिप्पणी—तमालविटपेन अन्तरितम् = तमालविटपान्तरितम्—तमाल वृक्ष में छिपा हुआ । स्थापयित्वा = बैठाकर— √स्थापि + इ + त्वा । क्त्वा प्रत्यय । उत्थाय = उठकर उद्— √स्था + य = उत्थाय—उद् + स्था = उत्था—हलसंधि, ल्यप् प्रत्यय । निजं च तत् हृदयम् = निजहृदयम्, तदेव समुद्रः, तस्य चन्द्रलेखा तां, निजहृदयसमुद्रचन्द्रलेखाम्—जिस तरह चन्द्रमा के देखने से समुद्र उमड़ता है, उसी तरह तुम्हारे हृदय को प्रसन्न करने वाली ।

टिप्पणी—विशेषं भूषितानि अंगानि यस्याः सा विशेषभूषितांगी—खास तौर से अंगो को सजाये हुये ।

राजा—वअस्स ! किं उण तं ? (वयस्य ! किं पुनस्तत् ?)

विदूषकः—तमालविडवांतरितो जाण । (तमालविटपान्तरितो जानीहि ।)

[राजा तथा करोति]

विचक्षणा—एस कुरवअतरू । (एष कुरवकतरुः ।)

[कर्पूरमञ्जरी तमालिङ्गति]

राजा—

णवकुरवअरुक्खो कुंभथोरत्थणीये
रहसविरइदेण णिब्भरालिंगणेण ।
तह कुसुमसमिद्धिं लंभिदो सुंदरीए
जह भमलकुलाणं तत्थ जत्ता पउत्ता ॥ ४४ ॥

(नवकुरवकवृक्षः कुम्भस्थूलस्तन्या
रभसविरचितेन निर्भरालिङ्गनेन ।

अन्वयः—कुम्भस्थूलस्तन्या सुन्दर्या नवकुरवकवृक्षः रभसविरचितेन निर्भरालिंगनेन तथा कुसुमसमृद्धिं लम्भितः, यथा भ्रमरकुलानाम् यात्रा तत्र प्रवृत्ता ।

व्याख्या—कुम्भाविव पीनपयोधरया सुन्दर्या रभसविरचितेन सहसा कृतेन निर्भरालिंगनेन गाढालिंगनेन नवकुरवकवृक्षः तथा कुसुमानां समृद्धिं सम्पदं लम्भितः

राजा—मित्र ! वह कैसी आज्ञा है ?

विदूषक—तमाल विटप में छिप कर देखो ।

(राजा वैसा ही करता है)

विचक्षणा—यह कुरवक का वृक्ष है ।

(कर्पूरमञ्जरी उसका आलिंगन करती है)

राजा—कुम्भों के समान स्थूल स्तनवाली अर्थात् खूब उभरे हुये स्तनवाली, इस नायिका ने यकायक किये हुये अपने प्रगाढ आलिंगन से नये कुरवक वृक्ष में इतने

टिप्पणी—कुम्भौ इव स्थूलौ स्तनौ यस्यास्तया कुम्भस्थूलस्तन्या =घटपीनपयोधरया ।

विचक्खणा—एसो असोअसाही । (एष अशोकशाखी ।)

[कर्पूरमञ्जरी चरणताडनं नाटयति]

राजा—

असोअतरुताडणं रणिदणेउरेणंघिणा
किदं अ मिअलंछणच्छविमुहीअ हेलोछसं ।
सिहासु सुअलासु वि त्थवअमंडणाडंबरं
हिदं अ गअणंगणं जणणिरिक्खणिज्जं क्खणं ॥४७॥

(अशोकतरुताडनं रणितनूपुरेणाङ्घ्रिणा
कृतञ्च मृगलाञ्छनच्छविमुख्या हेलोल्लासम् ।

शरं कामदेवं पार्श्वे कुर्वतोः कामदेवशरसाम्यं दधतोः अस्याः मृगाक्ष्याः नेत्रयोः घाटी दर्शनव्यापारविशेषः यत् तिलकद्रुमे निपतिता, तत् तस्मात् स मञ्जरीणां पुञ्जैः दन्तुराणि सांकुराणि शिरांसि यस्य एवं भूतः रोमाञ्चित इव सञ्जातरोमाञ्च इव स्थितः वर्तते ॥ ४६ ॥

अन्वयः—मृगलाञ्छनच्छविमुख्या रणितनूपुरेण अंघ्रिणा हेलोल्लासम् अशोकतरुताडनम् कृतम् च, सकलासु अपि शिखासु स्तवकमण्डनाडम्बरं गगनाङ्गनं क्षणम् जननिरीक्षणीयम् स्थितम् च ।

व्याख्या—चन्द्रवत् कान्तिमन्मुखं धारयन्त्या अनया कर्पूरमञ्जर्या नूपुराणां ध्वनिमता चरणेन हेलोल्लासम् सविलासम् अशोकतरुः पादेन आहतः, सकलासु

विचक्षणा—यह अशोक का वृक्ष है ।

(कर्पूरमंजरी पैर मारने का अभिनय करती है)

राजा—चन्द्रमा के समान कान्ति से युक्त मुखवाली इस कर्पूरमंजरी ने नूपुर बजते हुये अपने चरण से विलास पूर्वक ज्यों ही अशोक वृक्ष पर पादाघात किया

टिप्पणी—रणितः नूपुरः यस्मिन् तेन रणितनूपुरेण = नूपुरों के शब्द से युक्त। अंघ्रिः = चरण । मृगस्य लांछनमस्ति यस्य स मृगलाञ्छनः, तस्य छविः यस्य तत् मृगलाञ्छनच्छवि, तादृशं मुखं यस्याः तया मृगलाञ्छनच्छविमुख्या = चन्द्रवदनया । स्तवकानां मण्डनेन



शिखासु सकलास्वपि स्तवकमण्डनाडम्बरं
स्थितञ्च गगनाङ्गनं जननिरीक्षणीयं क्षणम् ॥४७॥)

विदूषकः—भो वअस्स ! जं सअं ण किदं दोहदअदाणं देवीए, जाणेसि एत्थ किं कारणं ? (भो वयस्य ! यत् स्वयं न कृतं दोहदकदानं देव्या, जानासि तत्र किं कारणम् ?)

राजा—तुमं जाणेसि ? (त्वं जानासि ?)

विदूषकः—भणामि, जइ देवो ण कुप्पदि । (भणामि, यदि देवो न कुप्यति ।)

राजा—को एत्थ रोसावसरो ? भण उम्मुद्दिआए जीहाए । (कोऽत्र रोपावसरः ? भण उन्मुद्रितया जिह्वया ।)

विदूषकः—

इह जइ वि कामिणीणं सुंदेरं धरइ अवअवाणं सिरी ।
अहिदेवदे व्व णिवसइ तह वि क्खु तारुण्णए लच्छी ॥ ४८ ॥

सर्वास्वपि शिखासु स्तवकविकाससमुज्ज्वलं गगनाङ्गनं गगनाजिरं क्षणं क्षणेनैव जनानां निरीक्षणीयम् दर्शनीयम् स्थितं च सञ्जातञ्च । चकारद्वयेनात्र यौगपद्यं द्योत्यते ॥४७॥

कि क्षण मात्र में ही सब चोटियों पर गुच्छों के खिलने से चमकता हुआ आकाश सुन्दर हो गया ॥ ४७ ॥

विदूषक—मित्र ! महारानी ने स्वयं दोहद देने का कार्य नहीं किया, क्या इसका कारण जानते हो ?

राजा—क्या तुम जानते हो ?

विदूषक—कहूँ यदि श्रीमान् क्रोध न करें ।

राजा—इसमें क्रोध का क्या अवसर है, जबान खोलकर कहो ?

विदूषक—संसार में यद्यपि स्त्रियों के अंगो की शोभा में ही सौन्दर्य होता है,

---

आडम्बरः यस्य तत् स्तवकमण्डनाडम्बरम् = स्तवकविकाससमुज्ज्वलम् । जनानां निरीक्षणीयम् = जननिरीक्षणीयम् = सुन्दरम् । उन्मुद्रिता = खुली हुई स्वच्छन्द ॥ ४७ ॥

जातोऽस्ताचलार्थी सपदि दिनमणिः पक्कनारङ्गपिङ्गः ॥५०॥)

राजा—भो वअस्स ! संणिहिदो संझासमओ वट्टदि । (भो वयस्य ! सन्निहितः सन्ध्यासमयो वर्त्तते ।)

विदूषकः—संकेअकालो कहिदो वंदीहिं । (सङ्केतकालः कथितो वन्दिभिः ।)

कर्पूरमञ्जरी—सहि विअक्खणे ! गमिस्सं दाव, विआलो संवुत्तो वट्टदि । (सखि विचक्षणे ! गमिष्यामि तावत् । विकालः संवृत्तो वर्त्तते ।)

विचक्षणा—एव्वं करीअदु । (एवं क्रियताम् ।)

[इति परिक्रम्य निष्क्रान्ताः सर्वे]

इति द्वितीयजवनिकान्तरम्

चक्रवाकाणां मुख्यं मित्रम्, पक्कं नारङ्गमिव पीतरक्तः दिनमणिः सूर्यः लोकानां जनानां लोचनैः सह कमलवनम् अर्धनिद्रं मुकुलितं कुर्वन्, यथा सन्ध्यायां मानिन्यः प्रणयकोपं त्यजन्ति तथा स्वतीक्ष्णभावं परिहरन् सपदि क्षणादेव अस्ताचलार्थी अस्ताचलं जिगमिषुः जातः ॥ ५० ॥

मानिनियों के मन के साथ साथ अपने तेज को घटाता हुआ एक दम अस्ताचल की ओर जाने लगा है ॥ ५० ॥

राजा—मित्र ! सन्ध्या समय निकट आगया है ।

विदूषक—वन्दिगणों ने संकेत काल बता दिया है ।

कर्पूरमञ्जरी—सखि विचक्षणे ! मैं तो चलूँगी, शाम हो रही है ।

विचक्षणा—ऐसा ही करो ।

(घूम कर सब चले जाते हैं)

वाली किरणों से युक्त । दिनमणिः=सूर्य । पक्कं च तत् नारंगं=पक्वनारंगम् तद्वत् पिंगः=पक्वनारङ्गपिंगः=पकी हुई नारंगी के समान लाल और पीला । जिस तरह मानिनी स्त्रियाँ सन्ध्या होने पर अपने प्रेमियों से मान करना छोड़ देती हैं उस तरह अपनी तीव्रता को सूर्य भी छोड़ देता है ॥ ५० ॥

दूसरा जवनिकान्तर समाप्त

तृतीयं जवनिकान्तरम्

(ततः प्रविशति राजा विदूषकश्च)

राजा—[तामनुसन्धाय[1]]—

दूरे किज्जदु चंपअस्स कलिआ कज्जं हरिद्दाअ किं ?
उत्तत्तेण अ कंचणेण गणणा का णाम जच्चेण वि ।
लावण्णस्स णवुग्गदेंदुमहुरच्छाअस्स तिस्सा पुरो
पच्चग्गेहिं वि केसरस्स कुसुमक्केरेहिं किं कारणं ॥ १ ॥

(दूरे क्रियतां चम्पकस्य कलिका कार्यं हरिद्रायाः किम् ?
उत्तप्तेन च काञ्चनेन गणना का नाम जात्येनापि ?
लावण्यस्य नवोद्गतेन्दुमधुरच्छायस्य तस्याः पुरः

अन्वयः—चम्पकस्य कलिका दूरे क्रियताम्, हरिद्रायाः कार्यम् किम् ? नवोद्गतेन्दुमधुरच्छायस्य तस्याः लावण्यस्य पुरः जात्येन अपि उत्तप्तेन काञ्चनेन का नाम गणना ? प्रत्यग्रैः अपि केसरस्य कुसुमोत्करैः किम् कारणम् ? ।

व्याख्या—चम्पकस्य कलिका दूरे क्रियताम्, हरिद्रायाः कार्यम् प्रयोजनं किम्, न किमपीत्यर्थः । नवोद्गतस्य नवोदितस्य इन्दोः चन्द्रस्येव मधुरां मनोहारिणीं कान्तिं धारयतः तस्याः कर्पूरमञ्जर्याः लावण्यस्य पुरः अग्रतः जात्येन उत्कृष्टेन उत्तप्तेन ज्वलता काञ्चनेन सुवर्णेनापि का नाम गणना को विचारः ? न कोऽपीत्यर्थः ।

(राजा और विदूषक रंगमंच पर आते हैं)

राजा—(उसको याद कर):—

चम्पा की कली को दूर रखो, हल्दी से भी क्या प्रयोजन ? नवीन चन्द्रमा की तरह मधुर कान्तिवाले कर्पूरमञ्जरी के लावण्य के सामने विशुद्ध और तपे हुये सोने की भी क्या गिनती ? नये केसर के फूलों से क्या फल ? अर्थात् कर्पूरमञ्जरी

---

१. अनुसन्धाय=स्मरण कर–अनु+सम्+ √धा+य–ल्यबन्त ।

टिप्पणी—हरिद्रा=हल्दी । जात्य=उत्तम । लावण्य=मोतियों की तरल छाया की तरह अंगों में चमकने वाली कान्ति । नवश्चासौ उद्गतः=नवोद्गतः, नवोद्गतश्चासौ इन्दुः=

प्रत्यग्रैरपि केसरस्य कुसुमोत्करैः किं कारणम् ? ॥ १ ॥)

अवि अ (अपि च)—

मरगअमणिजुट्ठा हारजट्ठि व्व तारा
भमरकवलिअद्धा मालईमालिए व्व ।
रहसवलिअकंठी तीअ दिट्ठी वरिट्ठा
सवणपहणिविट्ठा माणसं मे पविट्ठा ॥ २ ॥

(मरकतमणिजुष्टा हारयष्टिरिव तारा
भ्रमरकवलितार्द्धा मालतीमालिकेव ।

प्रत्यग्रैः अभिनवैः केसरस्य बकुलस्य कुसुमोत्करैः पुष्पराशिभिः किं कारणम् फलम् ? न किमपीत्यर्थः । कर्पूरमञ्जर्याः लावण्यं न कस्याप्युपमां क्षमेत । चम्पककलिका हरिद्रा तप्तकाञ्चनं केसरकुसुमनापि न तदुपमानयोग्यानि ॥' 'मुक्ताफलेषुच्छायाया-स्तरलत्वमिवान्तरा । प्रतिभाति यदङ्गेषु तल्लावण्यमिहोच्यते । इति लावण्यलक्षणम् ॥

अन्वयः—तस्याः रभसवलितकण्ठी वरिष्ठा दृष्टिः मरकतमणिजुष्टा तारा हार-यष्टिः, इव, भ्रमरकवलितार्धा मालतीमालिका इव, श्रवणपथनिविष्टा मे मानसं प्रविष्टा ।

व्याख्या—रभसेन वेगेन हर्षेण वा दर्शकानां कण्ठं ध्यानं स्वाभिमुखमाकर्षन्ती

के सौन्दर्य की चम्पा, हरिद्रा, तपे हुये सोने तथा केसर के फूल इन किसी से भी उपमा नहीं बन सकती ॥ १ ॥

और भीः—

वेग से अथवा प्रसन्नता से दर्शकों के ध्यान को अपनी ओर खींचने वाली कर्पूरमञ्जरी की सुन्दर दृष्टि श्यामवर्ण की मरकत मणियों से युक्त उत्तम हार की

नवोद्गतेन्दुः, तस्येव मधुरा छाया यस्य तस्य नवोद्गतेन्दुमधुरच्छायस्य = नवोदितचन्द्रमधुर-कान्तेः । प्रत्यग्र = नया । कुसुमोत्कर = फूलों का समूह ॥ १ ॥

टिप्पणी—मरकतमणिभिः जुष्टा = मरकतमणिजुष्टा = हरिन्मणियुक्ता । तारा = उत्तम । भ्रमरैः कवलितम् अर्धं यस्याः सा भ्रमरकवलितार्धा = भ्रमरग्रस्तार्धा = भौंरो से आधी घिरी हुई। रभसेन वलितः कण्ठो (दर्शकानामिति यावत्) यया सा रभसवलितकण्ठी = रभसाकृष्ट-



रभसवलितकण्ठी तस्या दृष्टिर्वरिष्ठा

श्रवणपथनिविष्टा मानसं मे प्रविष्टा ॥ २ ॥)

विदूषकः—भो वअस्स ! किं तुमं भज्जाजिदो विअ किंपि किंपि कुरुकुराअंतो चिट्ठसि ? । (भो वयस्य ! किं त्वं भार्याजित इव किमपि किमपि कुरुकुरायमाणस्तिष्ठसि ?)

राजा—वअस्स ! सिविणअं दिट्ठमणुसंधेमि । (वयस्य ! स्वप्नं दृष्टमनुसन्दधामि ।)

विदूषकः—ता कहेदु प्पिअवअस्सो (तत् कथयतु प्रियवयस्यः ?)

राजा—

जाणे पंकरुहाणणा सिविणए मं केलिसज्जागदं
कंदोट्टेण तडित्ति ताडिदुमणा हत्थंतरे संट्ठिदा ।

तस्याः वरिष्ठा उत्कृष्टा दृष्टिः मरकतमणिभिः श्यामलैः हरितमणिभिः जुष्टा युक्ता तारा उत्तमा हारयष्टिरिव, भ्रमरैः अर्धग्रसिता मालतीमालिका इव, श्रवणपथनिविष्टा आकर्णकृष्टा दीर्घायतेत्यर्थः मे मम मानसं हृदयं प्रविष्टा । कर्पूरमञ्जर्याः नयने मम हृदि सन्निविष्टे, अहं मनसा सततमेव तन्नयने ध्यायामि ॥ २ ॥

तरह, भ्रमरों से आधी घिरी हुई मालती पुष्पों की माला की तरह और उसके कानों तक खिंची हुई मेरे मन में समा गई है ॥ २ ॥

विदूषक—मित्र ! पत्नी द्वारा जीते हुये पुरुष की तरह यह तुम क्या कुरकुराते हो ?

राजा—मित्र ! एक स्वप्न देखा था, उसे याद कर रहा हूँ ।

विदूषक—प्रियमित्र ! मुझे भी बतलाओ ?

राजा—मुझे ऐसा याद पड़ता है कि कमल के समान मुख वाली वह कर्पूर-

---

ध्याना–एकाएक दर्शकों का अपनी ओर ध्यान खींचने वाली । वरिष्ठा=उत्कृष्टा–अतिशयेन उरुरिति वरिष्ठा–उरु शब्द से इष्ठन् प्रत्यय और वर् आदेश । श्रवणयोः पन्थाः=श्रवणपथः, तम् निविष्टा=श्रवणपथनिविष्टा=कर्णपर्यन्तमाकृष्टा ॥ २ ॥

टिप्पणी—भार्यया जितः=भार्याजितः=कान्तावशंवदः, स्त्रैणः । कुरुकुरायमाणः=कुरकुर करता हुआ–अनुकरणात्मक शब्द ।

ता कोदेण मए वि झत्ति धरिदा ढिल्लं वरिल्लंचले
तं मोत्तूण गदं अ तीअ सहसा णट्ठा अ णिद्दा वि मे ॥३॥
(जाने पङ्करुहानना स्वप्ने मां केलिशय्यागतम्
इन्दीवरेण झटिति ताडितुमना हस्तान्तरे संस्थिता ।
तत् कौतूहलेन मयाऽपि झटिति धृता शिथिलं वस्त्राञ्चले
तन्मोचयित्वा गतं तया च सहसा नष्टा च निद्राऽपि मे ॥३॥)

अन्वयः—जाने, पङ्करुहानना (सा) स्वप्ने केलिशय्यागतम् माम् इन्दीवरेण ताडितुमनाः झटिति हस्तान्तरे संस्थिता । तत् मया अपि कौतूहलेन झटिति वस्त्राञ्चले शिथिलं धृता, तया तत् मोचयित्वा सहसा गतम्, मे निद्रा अपि नष्टा च ।

व्याख्या—जाने स्मरामि, कमलानना सा कर्पूरमञ्जरी स्वप्ने केलिशय्यागतम् क्रीडातल्पशायिनम् माम् इन्दीवरेण नीलोत्पलेन नयनेनेति भावः। ताडितुमनाः प्रहर्तुकामा झटिति सहसा हस्तान्तरे संस्थिता संनिषण्णा । तत् तदा मयाऽपि कौतूहलेन उत्सुकतया झटिति वस्त्राञ्चले वसनप्रान्ते शिथिलं यथास्यात्तथा धृता गृहीता, तया तत् मम वारणम् मोचयित्वा सहसा गतं प्रस्थितम् च, मे मम निद्रा अपि नष्टा च । चकारद्वयं यौगपद्यद्योतनार्थम्, यदैव सा गता तदैव मे निद्राऽपि भग्ना ॥ ३ ॥

मञ्जरी स्वप्न में मेरी विहारशय्या पर आई और नीलकमल जैसे अपने नेत्रों से प्रहारकरने की इच्छा से एकाएक मेरी भुजाओं के बीच बैठ गई । तब मैंने भी कुतूहल से एक दम अपने अञ्चल में धीरे से उसको पकड़ा, लेकिन वह छुड़ाकर भाग गई और मेरी निद्रा भी टूट गई ॥ ३ ॥

टिप्पणी—पङ्के रोहति=पङ्करुहः (कृदन्त क (अ) प्रत्यय)। पङ्करुहस्येव आननम् यस्याः सा पङ्करुहानना=कमलवदना । इन्दीवर=नीलकमल (नयन)। ताडितुं मनः यस्याः सा ताडितुमनाः । 'तं काममनसोरपि' इस सूत्र से मकार का लोप । मोचयित्वा=√मोचि+इ+त्वा–ण्यन्त मुच् धातु से त्वा प्रत्यय ॥ ३ ॥



विदूषकः—[स्वगतम्] भोदु एव्वं दाव। [प्रकाशम्] भो वअस्स ! अज्ज मए वि सिविणं दिट्ठं। (भवतु एवं तावत् (प्रकाशम्) भो वयस्य ! अद्य मयाऽपि स्वप्नो दृष्टः।)

राजा—[सप्रत्याशम्] ता कहिज्जदु कीरिसं तं सिविणअं ? (तत् कथ्यतां कीदृशः स स्वप्नः ?)

विदूषकः—अज्ज जाणे, सिविणए सुरसरिआसोत्ते सुत्तोम्हि, ता हरसिरसोवरि दिण्णलीलाचलणाए गंगाए पक्खालिदोम्हि तोएण। (अद्य जाने, स्वप्ने सुरसरितस्रोतसि सुप्तोऽस्मि; तद्धरशिरस उपरि दत्तलीलाचरणाया गङ्गायाः प्रक्षालितोऽस्मि तोयेन।)

राजा—तदो तदो ? (ततस्ततः ?)

विदूषकः—तदो सरअसमअवरिसिणा जलहरेण जहिच्छं पीदोम्हि। (ततः शरत्समयवर्षिणा जलधरेण यथेच्छं[1] पीतोऽस्मि।)

राजा—अच्छरिअं !! अच्छरिअं !! तदो तदो ? (आश्चर्यमाश्चर्यम् !! ततस्ततः ?)

विदूषक—(अपने मनमें) होगा ऐसा। (प्रकाशमें) मित्र ! आज मैंने भी स्वप्न देखा है !

राजा—(प्रत्याशा के साथ) बताओ तो तुम्हारा स्वप्न कैसा है ?

विदूषक—आज ऐसा लगता है मानो स्वप्न में गंगा के प्रवाह में सो गया हूँ और फिर शिवजी के सिर पर लीला में चरण रखने वाली गंगा के जल से जैसे मुझे स्नान करा दिया गया है।

राजा—फिर, फिर ?

विदूषक—फिर शरत् ऋतु में वरसने वाले वादलों में खूब भीगा।

राजा—आश्चर्य है ! आश्चर्य है ! फिर क्या हुआ ?

---

१. इच्छामनतिक्रम्य यथेच्छम् ('अव्ययीभाव) इच्छा के अनुसार।

विदूषकः—तदो सत्तिरणक्खत्तगदे भअवदे मत्तंडे तम्मवण्णी-णईसंगदं समुद्दं गदो महामेहो; जाणे, अहं वि मेहगब्भट्ठिदो गच्छेमि। (ततः स्वातीनक्षत्रगते भगवति मार्त्तण्डे ताम्रपर्णीनदीसङ्गतं समुद्रं गतो महामेघः; जाने, अहमपि मेघगर्भस्थितो गच्छामि।)

राजा—तदो तदो ? (ततस्ततः ?)

विदूषकः—तदो सो तहिं थूलजलबिंदूहिं वरिसिदुं पउत्तो। अहं अ रअणाअरसुत्तीहिं मुत्ताणामहेआहिं संपुडं समुग्घाडिअ जलबिंदूहिं समं पीदोम्हि; ताणं अ दसमासप्पमाणं मोत्ताहलं भविअ गब्भे ट्ठिदो। (ततोऽसौ तत्र स्थूलजलबिन्दुभिर्वर्षितुं प्रवृत्तः, अहञ्च रत्नाकरशुक्तिभिर्मुक्तानामधेयाभिः सम्पुटं समुद्घाट्य जल-बिन्दुभिः समं पीतोऽस्मि, तासाञ्च दशमाषप्रमाणं मुक्ताफलं भूत्वा गर्भे स्थितः।)

राजा—तदो तदो ? (ततस्ततः ?)

विदूषक—तब भगवान् सूर्य के स्वाती नक्षत्र में पहुँचने पर महामेघ ताम्रपर्णी नदी से मिले हुये समुद्र पर गया, याद पड़ता है जैसे मैं भी मेघ के गर्भ में चला जा रहा था।

राजा—फिर, फिर ?

विदूषक—फिर यह वहाँ पर बड़ी बड़ी बूँदों के साथ बरसने लगा, मुझे भी समुद्र में रहने वाली मुक्ता नाम की सीपियाँ आवरण तोड़ कर जल की बूँदों के साथ पी गई। दस माष (पचास घुंघची) के बराबर आकार का मोती बनकर मैं उनके गर्भ में रहा।

राजा—फिर, फिर ?

टिप्पणी—सम्पुट =आवरण। समुद्घाट्य=निर्भिद्य-तोड़ कर। समम्-साथ। माष= पांच घुंघुची के बराबर-'दशार्धगुञ्जं प्रवदन्ति माषम्।' (लीलावती)।



विदूषकः—

तदो चउस्सट्ठिसु सुत्तिसु ट्ठिदो
घणंबुबिंदू जिदवंसरोअणो।
सुवत्तुलं णित्तलमच्छमुज्जलं
कमेण पत्तो णवमुत्तिअत्तणं ॥ ४ ॥

(ततश्चतुःषष्टिषु शुक्तिषु स्थितो
घनाम्बुबिन्दुर्जितवंशरोचनः ।
सुवर्त्तुलं निस्तलमच्छमुज्ज्वलं
क्रमेण प्राप्तो नवमौक्तिकत्वम् ॥ ४ ॥)।

राजा—तदो तदो ? (ततस्ततः ?)

विदूषकः—तदो सोहमत्ताणं ताणं सुत्तीणं गब्भगअं मुत्ताहलत्तणेण मण्णेमि। (ततः सोऽहमात्मानं तासां शुक्तीनां गर्भगतं मुक्ताफलत्वेन मन्ये ।)

अन्वयः—ततः चतुःषष्टिषु शुक्तिषु स्थितः घनाम्बुबिन्दुः जितवंशरोचनः (अहम्) सुवर्तुलम् निस्तलम् अच्छम् उज्ज्वलम् नवमौक्तिकत्वम् क्रमेण प्राप्तः ।

सरलार्थः—ततः चतुःषष्टिषु शुक्तिषु स्थितः घनाम्बुबिन्दुसमानः वंशरोचनादपि उत्कृष्टः अहम् सुवर्तुलं गोलाकारं निस्तलम् कान्तिमत् उज्ज्वलं नवमौक्तिकत्वं क्रमेण प्राप्तः नवमौक्तिकोऽभूवम् ॥ ४ ॥

विदूषक—**फिर ६४ सीपियों के अन्दर स्थित जल की बूँद के समान और वंशलोचन से भी उत्कृष्ट मैं गोल और चमकीले नये मोती में धीरे धीरे बदल गया ॥४॥**

राजा—**फिर, फिर ?**

विदूषक—**तब उन शुक्तियों के गर्भ में पड़ा हुआ मैं अपने को मोती समझने लगा।**

टिप्पणी—चतुःषष्टि=चौसठ। जितं वंशरोचनं येन सः जितवंशरोचनः=तिरस्कृत वंशरोचनः। सुवर्तुलम्=खूब गोल ॥ ४ ॥

राजा—तदो तदो ? (ततस्ततः ?)

विदूषकः—तदो परिण्णदे काले समुद्दाहिंतो कड्ढिदाओ ताओ सुत्तीओ फाडिदाओ अ । अहं चतुस्सट्ठिमुत्तहलत्तणं गदो ट्ठिदो । किणिदो अ एक्केण सेट्ठिणा सुवण्णलक्खं देइअ । (ततः परिणते काले समुद्रात् कर्षितास्ताः शुक्तयः विदारिताश्च । अहं चतुः-षष्टिमुक्ताफलत्वं गतः स्थितः । क्रीतश्चैकेन श्रेष्ठिना सुवर्णलक्षं दत्त्वा ।)

राजा—अहो ! विचित्तदा सिविणअस्स । तदो तदो ? (अहो ! विचित्रता स्वप्नस्य । ततस्ततः ?)

विदूषकः—तदो तेण आणिअ वेधआरएहिं वेधाविआइं मोत्तिआइं । मम वि ईसीसि वेअणा समुप्पण्णा । (ततस्तेनानीय वेधकारैर्वेधितानि मौक्तिकानि । ममापीषद्वेदना समुत्पन्ना ।)

राजा—तदो तदो ? (ततस्ततः ?)

विदूषकः—तदो (ततः)—

राजा—फिर, फिर ?

विदूषक—फिर समय बीतने पर वे सीपियाँ समुद्र से निकाल ली गईं और फोड़ी गईं। मैं चौसठ मोतियों के रूप में था। एक सेठ] ने सुवर्णलक्ष देकर मुझे मोल ले लिया।

राजा—अरे । बड़ा विचित्र स्वप्न है । फिर क्या हुआ ?

विदूषक—तब उसने वेधकारों को बुलाकर मोतियों में छेद कराये। मुझे भी कुछ वेदना हुई।

राजा—फिर, फिर ?

विदूषक—तब फिर :—

टिप्पणी—कर्षिताः=निकाला । विदारिताः=फोड़ा गया ।

१. वेधकार=छेद करने वाला ।



तेणावि मुत्ताहलमंडलेण एक्केक्कदाए दसमासिएण ।
एक्कावली गंठिक्कमेण गुत्था जा संठिदा कोटिसुवण्णमुल्ला ॥५॥

(तेनापि मुक्ताफलमण्डलेनैकैकतया दशमाषिकेण ।
एकावली¹ग्रन्थिक्रमेण गुम्फिता सा संस्थिता कोटिसुवर्णमूल्या ॥५॥)

राजा—**तदो तदो ?**

विदूषकः—**तदो तं करंडिआइ कदुअ साअरदत्तो णाम वाणिओ गदो पंचालाधिपस्स सिरिवज्जाउहस्स णअरं कण्णउज्जं णाम; तहिं च सा विक्किणीदा कोडीए सुवण्णस्स ।** (ततस्तां करण्डिकायां² कृत्वा सागरदत्तो नाम वणिक् गतः पाञ्चालाधिपस्य श्रीवज्रायुधस्य नगरं कान्यकुब्जं नाम । तत्र च सा विक्रीता³ कोट्या सुवर्णस्य ।)

राजा—**तदो तदो ?** (ततस्ततः ?)

विदूषकः—**तदो अ** (ततश्च)—

सरलार्थः—तेन श्रेष्ठिना अपि मुक्ताफलमण्डलेन एकैकतया प्रत्येकशः दशमाषिकेण दशमाषमितेन एकावली एकसरो हारः ग्रन्थिक्रमेण ग्रन्थानुसारेण गुम्फितः । तस्य च कोटिसुवर्णमासीत् ॥ ५ ॥

उस सेठ ने भी दस दस माष के बराबर (पचास पचास घुंघची) मोतियों से एक एक लड़ वाला हार बनवाया, उसका मूल्य कोटि सुवर्ण था ॥ ५ ॥

राजा—**फिर, फिर ?**

विदूषक—**फिर उस हार को करण्डिका में रखकर सागरदत्त नाम का बनिया पाञ्चाल देश के राजा श्रीवज्रायुध के कान्यकुब्ज नगर में गया । उसने वहाँ उस हार को सुवर्ण की एक कोटि में बेच दिया ।**

राजा—**फिर, फिर ?**

विदूषक—**फिर:—**

---

१. एकावली = एक लड़ वाला हार ।
२. करण्डिका = एक पात्र का नाम । ३. विक्रीता = बेच दी ।





विदूषकः—भट्ठो ठक्कुरो, क्खुहाक्किंतो वम्हणो, अविणीदहिअआ वालरंडा, विरहिदो अ माणुसो मणोरहमोदएहिं अत्ताणं विडंवेदि। अवि अ वअस्स! पुच्छेमि, कस्स उण एसो प्पहाओ? (भ्रष्टो राजा, क्षुधाक्रान्तो ब्राह्मणः, अविनीतहृदया बालरण्डा, विरहितश्च मानुषो मनोरथमोदकैरात्मानं विडम्बयति। अपि च वयस्य! पृच्छामि, कस्य पुनरेष प्रभावः?)

राजा—प्पेमस्स। (प्रेम्णः।)

विदूषकः—भो! देवीगदे प्पणअप्परूढे वि प्पेमे किं त्ति कप्पूरमंजरी सव्वंगवित्थारिदलोअणो पिअंतो विअ अवलोएसि? किं तदो वि परिहोअमाणगुणा देवी? (भोः! देवीगते प्रणयप्ररूढेऽपि प्रेमणि किमिति कर्पूरमञ्जरीं सर्वाङ्गविस्तारितलोचनः पिबन्निव अवलोकयसि? किं ततोऽपि परिहीयमाणगुणा देवी?)

विदूषक—उन्मत्त हुआ राजा, भूख से व्याकुल ब्राह्मण, पुरुषसंसर्ग को चाहने वाली धूर्त स्त्री और विरही मनुष्य मन के लड्डुओं से अपने को प्रसन्न रखता है। मित्र! बताओ तो, यह किसका प्रभाव है?

राजा—प्रेम का।

विदूषक—मित्र! महारानी से इतना प्रेम होने पर भी कर्पूरमञ्जरी को इस तरह देखते हो जैसे कि सारे अंग में आंखे लगाकर उसे पी जाओगे। क्या महारानी के गुण कर्पूरमञ्जरी से कुछ कम हैं?

परिरम्भः=निधुवनपरिरम्भः=सुरतालिङ्गनम्। निर्भरोत्तुङ्गयोः=अन्यन्तमुन्नतयोः। विवुद्धः=जागरितः॥ ७॥

टिप्पणी—क्षुधया क्रान्तः=क्षुधाक्लान्तः-भूख से थका हुआ। अविनीतं हृदयं यस्याः सा अविनीतहृदया=पुरुषसंसर्गाभिलषितचित्ता-पुरुषसहवास चाहने वाली। विडम्बयति=धोखा देता है।

टिप्पणी—पिबन्=पीता हुआ-√ पा (पिब्)+अत्-शत्रन्त। परिहीयमाणाः





राजा—मा एव्वं भण (मैवं भण)—

कदाबि संघडइ कस्स बि प्पेमगंठो
एवमेव तत्थ ण हु कारणमत्थि रूअं।
चंगत्तणं उण महिज्जदि जं तहिं पि
ता दिज्जए पिसुणलोअमुहेसु मुद्दा ॥ ९ ॥

(कदाऽपि सङ्घटते कस्यापि प्रेमग्रन्थिः
एवमेव तत्र न खलु कारणमस्ति रूपम् ।
चङ्गत्वं पुनर्मृग्यते यत्तत्रापि
तद्दीयते पिशुनलोकमुखेषु मुद्रा ॥ ९ ॥)

अन्वयः—कदा अपि कस्य अपि प्रेमग्रन्थिः एवमेव सङ्घटते, तत्र रूपम् न खलु कारणम् अस्ति। तत्रापि यत् पुनः चङ्गत्वम् मृग्यते, तत् पिशुनलोक-मुखेषु मुद्रा दीयते।

सरलार्थः—कस्मिन्नपि काले कस्यापि प्रेमबन्धः कञ्चित् प्रति एवमेव कारणं विना सङ्घटते, अस्मिन् प्रेमबन्धे सौन्दर्यं कारणं न भवति। यथोक्तं भवभूतिना उत्तररामचरिते—'व्यतिषजति पदार्थानान्तरः कोऽपि हेतुर्न खलु बहिरुपाधीन्प्रीतयः संश्रयन्ते। विकसति हि पतङ्गस्योदये पुण्डरीकं द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्तः ॥' तत्रापि प्रेम्णः आन्तरहेतुकत्वेऽपि यत्पुनः सौन्दर्यं मृग्यते अन्विष्यते तत्

राजा—ऐसा मत कहो।

किसी भी समय किसी का किसी पर प्रेम यों ही हो जाता है, इस प्रेम-बन्धन में सौन्दर्य कारण नहीं होता। फिर भी प्रेम में सौन्दर्य को जो कारण बताया जाता है वह दुष्ट लोगों के मुंह को बन्द करने के लिये ही—दुष्ट लोग जिस किसी से भी प्रेम करने को बुरा न बतायें इस लिये सुन्दरता आदि गुणों का उल्लेख कर दिया जाता है ॥ ९ ॥

गुणाः यस्याः सा परिहीयमाणगुणाः कम गुण वाली-परि √हा+य+आन-परिपूर्वक हा धातु से कर्मवाच्य में आनच्, म् का आगम। चङ्गस्य भावः=चङ्गत्वम्=सौन्दर्य। मृग्यते=अन्विष्यते-खोजा जाता है। मुद्रा=पर्दा। आवरणपिशुन=एक दूसरे की चुगली खानेवाला ॥ ९ ॥

विदूषकः—भो ! किं उण एदं पेम्म पेम्मत्ति भणंति ? ।
(भोः ! किं पुनरेतत् प्रेम प्रेमेति भणन्ति ?)

राजा—अण्णोण्णमिलिदस्स मिहुणस्स मअरद्धअसासणो एक्कहं पाणअमहिं पेम्मेत्ति विअड्ढा भणंति । (अन्योऽन्यमिलितस्य मिथुनस्य मकरध्वजशासनेन प्ररूढं भावमपि प्रेमेति विदग्धा भणन्ति ।)

विदूषकः—कीदिसो सो ? (कीदृशः सः ?)

राजा—जस्सिं विअप्पघडणाइकलंकमुक्को
अत्ताणअस्स सरलत्तणमेइ भावो ।
एक्केक्कअस्स पसरंतरसप्पवाहो
सिंगारवड्ढिअमणोभवदिण्णसारो ॥ १० ॥

(यस्मिन् विकल्पघटनादिकलङ्कमुक्तः
आत्मनः सरलत्वमेति भावः ।

पिशुनानां लोकानां मुखेषु मुद्राधानाय आवरणदानायैव भवति । पिशुनाः जनाः निन्दां मा कुर्युरिति तेषां मुखबन्धनाय सौन्दर्यादिगुणाः कीर्त्यन्ते ॥ ९ ॥

अन्वयः—यस्मिन् एकैकस्य आत्मनः भावः विकल्पघटनादिकलङ्कमुक्तः प्रसरद्रसप्रवाहः शृङ्गारवर्धितमनोभवदत्तसारः (सन्) सरलत्वम् एति ।

व्याख्या—यस्मिन् प्रेमणि सति एकैकस्य उभयस्य आत्मनः भावः आशयः

विदूषक—यह 'प्रेम-प्रेम' किसे कहा जाता है ?

राजा—एक दूसरे के पास बैठे हुये स्त्री पुरुषों का कामदेव की आज्ञा से उत्पन्न हुआ भाव प्रेम कहलाता है ।

विदूषक—वह भाव कैसा होता है ?

राजा—जिस भाव के उत्पन्न होने पर एक दूसरे के चित्त के विचारसंशय इत्यादि

---

१. प्ररूढ=उत्पन्न ।

टिप्पणी—विकल्पानां घटनादयः ये कलङ्काः तैः मुक्तः=विकल्पघटनादिकलङ्कमुक्तः=



एकैकस्य प्रसरद्रसप्रवाहः

शृङ्गारवर्द्धितमनोभवदत्तसारः ॥ १० ॥)

विदूषकः—कधं विअ सो लक्खीअदि ? (कथमिव स लक्ष्यते ?)

राजा—जाणं सहावप्पसरंतसुलोलदिट्ठी-

पेरंतलुंठिअमणाणं परप्परेण ।

वड्ढंतमम्महविदीण्णरसप्पसारो

ताणं प्पआसइ लहुं विअ चित्तभावो ॥११॥

(ययोः स्वभावप्रसरत्सुलोलदृष्टि-

पर्यन्तलुण्ठितमनसोः परस्परेण ।

विकल्पानां घटनादिभिः कलङ्कैः मुक्तः विरहितः, आनन्दस्रोतसः प्रवाहेण च युक्तः तथा शृङ्गारेण वर्धितः उल्लसन् यः कामः तेन उत्कर्षम् प्राप्तः सन् सरलत्वम् आर्जवमेति, सुखदुःखे समे भवतः स भावप्रेमेति कथ्यते ॥ १० ॥

अन्वयः—ययोः परस्परेण स्वभावप्रसरत्सुलोलदृष्टिपर्यन्तलुण्ठितमनसोः वर्धमानमन्मथवितीर्णरसप्रसारः, तयोः चित्तभावः लघुः इव प्रकाशते ।

व्याख्या—परस्परेण अन्योऽन्येन स्वभावतः प्रसरन्त्यः प्रचलन्त्यः सुलोलाः

भावों से रहित हो जाते हैं, जिसमें आनन्द का स्रोत सा बहता है और शृङ्गार से प्रवृद्ध कामदेव के द्वारा जिसमें उत्कर्ष आजाता है तथा सरलता आजाती है वह भावप्रेम कहलाता है ॥ १० ॥

विदूषक—वह भाव किस तरह दिखाई पड़ता है ?

राजा—आपस में स्वभाव से ही बढ़ी और चञ्चल आंखों के कटाक्षों के प्यासे

संशयादिदोषविरहितः । प्रसरन् रसप्रवाहः यत्र सः प्रसरद्रसप्रवाहः=प्रवहदानन्दस्रोताः=बहते हुये आनन्द के प्रवाह से युक्त । शृङ्गारेण वर्द्धितः=शृङ्गारवर्धितः, स चासौ मनोभवः—शृङ्गारवर्धितमनोभवः, तेन दत्तः सारः यस्य स शृङ्गारवर्धितमनोभवदत्तसारः=शृङ्गार से बढ़े हुये काम ने जिसको उत्कर्ष प्रदान किया है ॥ १० ॥

टिप्पणी—स्वभावेन प्रसरन्त्यः सुलोलाश्च या दृष्टयः=स्वभावप्रसरत्सुलोलदृष्टयः,

वर्धमानमन्मथवितीर्णरसप्रसार-

स्तयोः प्रकाशते लुठित इव चित्तभावः ॥ ११ ॥)

अवि अ (अपि च)—

अंतोणिविट्ठमअणविब्भमडंबरं जं

तं भण्णए अ मअणमंडणमेत्थ पेम्मं ।

दुल्लक्खअं पि जं पअडेइ जणो जअम्मि

तं जाणिमो अ सुबहुत्तं मअणिंदजालं ॥१२॥

(अन्तर्निविष्टमदनविभ्रमडम्बरं यत्

तत् भण्यते च मदनमण्डनमत्र प्रेम ।

सुचपलाः याः दृष्टयः तासां पर्यन्तेषु अपाङ्गावलोकनेषु लुण्ठितमनसोः सतृष्णयोः ययोः दम्पत्योः वर्धमानेन मन्मथेन रसप्रसारः उल्लासातिरेकः वितीर्णः उत्पन्नः दृश्यते, तयोः दम्पत्योः चित्तभावः लुठन् इव प्रकाशते प्रकटीभवति ॥ ११ ॥

अन्वयः—यत् अन्तर्निविष्टमदनविभ्रमडम्बरम्, तत् अत्र मदनमण्डनम् प्रेम भण्यते । जगति जनः दुर्लक्ष्यम् अपि यत् प्रकटयति तत् सुबहुलम् मदनेन्द्रजालम् जानीमश्च ।

व्याख्या—अन्तर्निविष्टस्य हृदयंगतस्य मदनस्य यत् विभ्रमडम्बरम् प्रिय-

---

जिन स्त्री-पुरुषों में आनन्दातिरेक प्रवृद्ध कामदेव द्वारा उत्पन्न दिखाई पड़ता है, उन स्त्री-पुरुषों के मन का अभिप्राय बहता हुआ सा प्रकट होता है ॥ ११ ॥

और भीः—

हृदय को प्रभावित किये हुये कामदेव का जो विलासाडम्बर है वह ही इस

तासां पर्यन्तेषु लुण्ठितं मनः ययोः तयोः स्वभावप्रसरत्सुलोलदृष्टिपर्यन्तलुण्ठितमनसोः = चञ्चलापाङ्गावलोकनसतृष्णयोः=चञ्चल कटाक्षों द्वारा देखने के लिये लालायित। वर्धमानश्चासौ मन्मथः=वर्धमानमन्मथः, तेन वितीर्णः रसप्रसारः=वर्धमानमन्मथवितीर्णरसप्रसारः= प्रवृद्धकामदेवप्रदत्तोल्लासातिरेकः-बढ़े हुए कामदेव के द्वारा दिया हुआ आनन्दातिरेक। लुठरिव=बहता हुआ सा ॥ ११ ॥

टिप्पणी—अन्तर्निविष्टश्चासौ मदनः=अन्तर्निविष्टमदनः, तस्य विभ्रमडम्बरम्=

दुर्लक्ष्यमपि यत् प्रकटयति जनो जगति

तज्जानीमश्च सुबहुलं मदनेन्द्रजालम् ॥ १२ ॥)

विदूषकः—जइ चित्तगदं प्पेममणुराअमुप्पादेदि, ता किं कज्जदि मंडणाडंबरविडंवणाए ? (यदि चित्तगतं प्रेम अनुराग-मुत्पादयति, तत् किं क्रियते मण्डनाडम्बरविडम्बनया ?)

राजा—वअस्स ! सच्चमिणं (वयस्य ! सत्यमिदम्)—

किं मेहलावलअणेउरसेहरेहिं ?

किं चंगिमाअ ? किमु मंडणडंबरेहिं ?

तं अण्णमत्थि इह किंपि णिअंविणीओ

जेणं लहंति सुहअत्तणमंजरीओ ॥ १३ ॥

जनवशीकरणहेतुभूतम् विलासाधिक्यम्, तत् अत्र संसारे मदनमण्डनम् काम-भूषणं प्रेम भण्यते कथ्यते। जगति जनः दुर्लक्ष्यमपि लक्षयितुमशक्यमपि यत् प्रकटयति प्रकाशते तत् सुबहुलं सुमहत् मदनस्य इन्द्रजालं लोकप्रतारिणीं कपटविद्यां जानीमः मन्यामहे ॥ १२ ॥

संसार में प्रेम कहलाता है। संसार में लोग गुप्त बातों को भी इसके प्रभाव से प्रकट कर देते हैं, यह कामदेव की एक बड़ी जादूगरी है ॥ १२ ॥

विदूषक—अगर हृदय का प्रेम ही आसक्ति उत्पन्न करता है. तो अलंकारों की योजना में क्यों बेकार परिश्रम किया जाता है ?

राजा—मित्र ! यह सत्य है :—

अन्तर्निविष्टमदनविभ्रमडम्बरम् = हृदयगतमन्मथविलासाधिक्यम्। भण्यते = कहा जाता है। √भण् + य + ते। कर्मवा० वर्तमा०। दुःखेन लक्ष्यं = दुर्लक्ष्यम् = अत्यन्त गुप्त। सुबहुलम् = महत्-बड़ा। मदनस्य इन्द्रजालम् = मदनेन्द्रजालम् = कामस्य लोकप्रतारिणी कपटकरी विद्या। जानीमः = जानते हैं √ज्ञा + ना-मः = जानीमः-ज्ञा को जा आदेश, ना प्रत्यय उत्तमपुरुष बहुवचन ॥ १२ ॥

(किं मेखलावलयनूपुरशेखरैः ?
किं चङ्गिमत्वेन ? किमु मण्डनाडम्बरैः ?
तदन्यदस्तीह किमपि नितम्बिन्यो
येन लभन्ते सुभगत्वमञ्जरीः ॥ १३ ॥)

अवि अ (अपि च)—

किं गेअणिट्टविहिणा ? किमु वारुणीए ?
धूवेण किं अगुरुणा ? किमु कुंकुमेण ?
सिट्ठत्तणे मदिदलम्मि ण किं चि अण्णं
कज्जं अत्थि सरिसं उण माणुसस्स ? ॥१४॥

(किं गेयनृत्यविधिना ? किमु वारुण्या ?

अन्वयः—मेखलावलयनूपुरशेखरैः किम्, चङ्गिमत्वेन किम्, मण्डनाडम्बरैः किमु, येन नितम्बिन्यः सुभगत्वमञ्जरीः लभन्ते, इह तत् अन्यत् किमपि अस्ति।

सरलार्थः—मेखलावलयनूपुरशेखरैः किमपि फलं न, सौन्दर्यमपि न किमपि प्रयोजनं साधयति, मण्डनाडम्बरैः अन्यैः प्रसाधनैः अपि न किमपि कार्यं सिध्यति। येन कारणेन कामिन्यः सौभाग्यकलाः लभन्ते प्राप्नुवन्ति, तदत्र संसारे किमपि अन्यदेवास्ते, तारामैत्री चक्षूराग एव कामिनीषु सौन्दर्यसृष्टिं करोति ॥ १३ ॥

सरलार्थः—गानेन नृत्येन च न किमपि सिध्यति, वारुण्या मदिरया चापि

करधनी, कंगन, पायजेब और सिर के आभूषण से कुछ नहीं होता है। सौन्दर्य भी कहीं कहीं व्यर्थ रहता है। बाह्य श्रृङ्गार भी व्यर्थ है। संसार में यह तो कोई और ही चीज है जिससे स्त्रियाँ आकर्षक लगती हैं ॥ १३ ॥

और भी :—

गाने और नाचने से कुछ नहीं होता है, मदिरा भी बेकार है, अगुरु का

टिप्पणी—मण्डनानाम् आडम्बरः=मण्डनाडम्बरस्तस्य विडम्बनया=प्रसाधनप्रयासेन। मेखला=करधनी। वलय=कङ्कन। नूपुर=पायजेब। चंगिमत्वम्=सौन्दर्य। प्रशस्तौ नितम्बौ स्तः यासां ताः नितम्बिन्यः-प्राशस्त्य में इन् प्रत्ययः। सुभगत्वमञ्जरीः=सौभाग्यकलाः ॥ १३ ॥

टिप्पणी—गेयम् च नृत्यं च गेयनृत्ये तयोः विधिना=गेयनृत्यविधिना=नाचने गाने



धूपेन किमगुरुणा ? किमु कुङ्कुमेन ।

मधुरत्वे महीतले न किमप्यन्यत्

रुचेरस्ति सदृशं पुनर्मानुषस्य ॥ १४ ॥)

अवि अ (अपि च)—

जा चक्कवट्टिघरिणी जणगेहिणी वा

पेम्मम्मि ताण ण तिलं वि विसेसलाभो ।

जाणे सिरीअ जइ किज्जदि को वि भावो

माणिक्कभूसणणिअसणकुंकुमेहिं ॥ १५ ॥

(या चक्रवर्त्तिगृहिणी जनगेहिनी वा

प्रेम्णि तयोर्न तिलमात्रमपि विशेषलाभः ।

न किमपि प्रयोजनम् । अगुरोः धूपोऽपि निरर्थकः । कुङ्कुमराग अपि निष्फल एव । मानुषस्य रुचेः सदृशं किमपि वस्तु मधुरत्वे पृथिव्यां न तिष्ठति । यत्र मनुष्यः अनुरक्तो भवति तदेव तस्मै रोचते ॥ १४ ॥

अन्वयः—या चक्रवर्तिगृहिणी, (या) वा जनगेहिनी, तयोः प्रेम्णि तिलमात्रमपि विशेषलाभः न (अस्ति) । यदि श्रिया कोऽपि भावः क्रियते, (तदा) माणिक्यभूषणनिवसनकुंकुमैः (स भवति) इति जाने ।

सरलार्थः—या चक्रवर्तिनः राज्ञः गृहिणी महिषी, या वा सामान्यजनपत्नी,

---

सुगन्धित धुआँ भी निरर्थक है, कुङ्कुमराग से भी कुछ लाभ नहीं । मनुष्य की रुचि के समान पृथ्वी पर कोई भी वस्तु मधुर नहीं है ॥ १४ ॥

और भी:—

चाहे चक्रवर्ती राजा की रानी हो, या साधारण पुरुष की स्त्री हो, इन दोनों के प्रेम में तिलभर भी भेद नहीं होता है । अगर सौन्दर्य शोभा से कोई भाव होता है

से । वारुणी = मदिरा । अगुरु = एक गन्धयुक्त लकड़ी ॥ १४ ॥

टिप्पणी—माणिक्यभूषणं निवसनं कुंकुमश्च तैः माणिक्यभूषणनिवसनकुङ्कुमैः । जन



एको घटयति प्रथमं कुमारीणामङ्गम्

उत्कीर्य्य प्रकटयति पुनर्द्वितीयः ॥ १७ ॥)

तेण अ (तेन च)—

रणिदवलअकंचीणेउरावासलच्छी

मरगदमणिमाला गोरिआ हारजट्ठी ।

हिअअहरणमंत्तं जोव्वणं कामिणीणं

जअदि मअणकंडं छट्ठअं वड्ढअं अ ॥ १८ ॥

(रणितवलयकाञ्चीनूपुरावासलक्ष्मी-

मरकतमणिमाला गौरिका हारयष्टिः ।

द्वितीयः कामः अंगानि उन्मील्य प्रकाशयति। ब्रह्मा तु केवलं शरीरं रचयत्येव, कामस्तु शरीरे सौन्दर्यसृष्टिं करोति। ब्रह्मापेक्षया कामः निपुणतर इति भावः ॥१७॥

अन्वयः—रणितवलयकाञ्ची नूपुरावासलक्ष्मीः (तिष्ठतु), मरकतमणिमाला गौरिका हारयष्टिः (तिष्ठतु), षष्ठकः वर्धकः च मदनकाण्डः कामिनीनां हृदयहरण-मन्त्रम् यौवनं जयति।

व्याख्या—रणितानां शिञ्जितानां वलयानां कंकणानां काञ्चीनाम् रशनानाम् नूपुराणां च आवासेन धारणेन या लक्ष्मीः शोभा सा तिष्ठतु तावत्, न तस्याः काप्यावश्यकता। एवमेव मरकतमणीनां माला, गौरिका काञ्चनी हारयष्टिर्वा तिष्ठतु। षष्ठः वर्धकः प्रबलतरः च मदनशरः इव इदं हृदयवशीकरणमन्त्रम्

शरीर का विकास तो कामदेव के द्वारा ही होता है ॥ १७ ॥

और उससे:—

बजते हुये कङ्कण, करधनी और पायजेबों के पहिनने से उत्पन्न होने वाली शोभा तो कुछ भी नहीं है, मरकतमणियों की माला तथा सोने का हार भी रहने दो। हृदय को वश में करने वाला तथा कामदेव के छठे और प्रबल वाण के समान

लृकार। उत्कीर्य्य=खिलाकर, उन्मील्य—उत् √क्ल+य—ल्यवन्त। क्ल की ऋ को इर् आदेश।

टिप्पणी—रणित=बजता हुआ। आवासः धारण करना। गौरिका=सोने का। मदन

हृदयहरणमत्रं यौवनं कामिनीनां
जयति मदनकाण्डः षष्ठको वर्द्धकश्च ॥ १८ ॥)

तहा अ (तथा च)—

अंगं लावण्णपुण्णं स्सवणपरिसरे लोअणा हारतारा
वच्छं थोरत्थणिल्लं तिवलिबलइदं मुट्ठिगेण्हं अ मज्झं ।
चक्काआरो णिदंबो तरुणिमसमए किं णु अण्णेण कज्जं ?
पंचेहिं ज्जेब्ब बाला मअणजअमहावैजअंतीअ होंति ॥ १९ ॥

(अङ्गं लावण्यपूर्णं श्रवणपरिसरे लोचने हारतारे
वक्षः स्थूलस्तनं त्रिवलिवलयितं मुष्टिग्राह्यञ्च मध्यम् ।

कामिनीनां यौवनं जयति सर्वोत्कर्षेण वर्तते । यद्यपि मदनस्य अन्येऽपि पञ्चशराः सन्ति, तथापि यौवनरूपोऽयं षष्ठः शरः प्रबलतरः, सर्वं जगच्च वशीकरोति ॥ १८ ॥

अन्वयः—तरुणिमसमये लावण्यपूर्णम् अंगम्, हारतारे श्रवणपरिसरे लोचने, स्थूलस्तनम् वक्षः, त्रिवलिवलयितं मुष्टिग्राह्यम् च मध्यम्, चक्राकारः नितम्बः, (एभिः) पञ्चभिः एव बालाः मदनजयमहावैजयन्त्यः भवन्ति, अन्येन किं न कार्यम् ?

सरलार्थः—युवावस्थायाम् कामिनीनाम् अंगम् लावण्येन पूर्णं भवति, आकर्षके कर्णपर्यन्तमायते च नयने भवतः, वक्षसि पीनौ पयोधरौ च समागच्छतः, कटि-प्रदेशश्च त्रिवलिभिः त्रिसृभिः रेखाभिः वलयितं वेष्टितं मुष्टिमेयञ्च सञ्जायते, नितम्बौ

कामिनियों का यह यौवन ही सर्वोत्कृष्ट है ॥ १८ ॥

वैसे भीः—

युवावस्था में सुन्दरियों का शरीर लावण्य से भरपूर हो जाता है, आंखें भी आकर्षक और बड़ी लगने लगती हैं, वक्षःस्थल पर स्तन खूब उभर आते हैं, कमर पतली हो जाती है तथा उस पर त्रिवलियाँ पड़ जाती हैं, नितम्बभाग खूब सुडौल और गोल हो जाता है। इन पांच अङ्गों से ही बालायें कामदेव के संसार

काण्ड = काम का बाण । षण्णां पूरणः = षष्ठः, स्वार्थ में क प्रत्यय–षष्ठक = छठा । वर्धकः = प्रबल ॥ १८ ॥

टिप्पणी—लावण्येन पूर्णम् = लावण्यपूर्णम् = लावण्यपूर्णम् = कान्तियुक्तम् । हार तारा ययोः ते हारतारे = उत्कृष्टकनीनिके, आकर्षके । श्रवणपरिसरे = कान तक खींचे हुये



क्लाम्यन्ती मृणालिका ? गाढक्वथितदुःसहेन सलिलेन सिच्यमाना केलिकुङ्कुमस्थली ? षाण्मासिकमौक्तिकानां झटिति स्फुटन्ती एकावली ? ग्रन्थिपर्ण-केदारिका लुण्ठ्यमाना गन्धहरिणेन ? तत् सत्यं ते स्वप्नं सम्पन्नम् । एहि, प्रविशावः । उत्थाप्यतां मकरध्वजपताका । प्रवर्त्ततां कण्ठकुहरे पञ्चमहुङ्काराणां रचना । स्तोकीक्रियन्तां बाष्पप्रवाहाः । मन्थरीक्रियन्तां निःश्वासप्रसराः । लभतां लावण्यं पुनर्नवभावम् । तदेहि, खिडक्किकाद्वारेण प्रविशावः ।)

[इति प्रविशतः]

[ततः प्रविशति नायिका कुरङ्गिका च]

तीव्र धूप से मुरझाती हुई मृणालिका की क्या अब भी उपेक्षा की जायगी ? खूब गरम और न सहने योग्य जल से सींची जाती हुई यह क्रीडाभूमि कब तक उपेक्षित रहेगी ? उत्कृष्ट मोतियों को एक दम गिराता हुआ यह हार कब तक उपेक्षित रहेगा ? ग्रन्थिपर्णों की यह क्यारी कस्तूरीमृग से बर्बाद होती हुई कब तक देखी जायगी ? तुम्हारा स्वप्न तो सच्चा ही हो गया। आओ, चलें। कामदेव के झण्डे को उठायें। कोयल की पुकार शुरू होने दो। इसके आंसुओं को रोकें। इसका चित्त शान्त करें। लावण्य फिर से नया हो। आओ, खिड़की के द्वार से अन्दर घुसें।

(अन्दर जाते हैं)

(तब नायिका और कुरङ्गिका रंगमंच पर आती हैं)

उपेक्ष्यते=उपेक्षा की जाती है—कर्मवाच्य लट् लकार। क्लाम्यन्ती=मुरझाती हुई √क्लम्+य+अत् (शत्रन्त-स्त्रीलिंग)। सिच्यमाना: सींची जाती हुई √सिच्+य+आन-शानच् प्रत्यय म् का आगम-कर्मवाच्य। केलिकुङ्कुमस्थली=क्रीडा करने की भूमि। षाण्मासिकमौक्तिक=छः महीने में तैयार हुए मोती, अर्थात् उत्कृष्ट मोती। ग्रन्थिपर्ण-केदारिका=एक प्रकार के सुगन्धित पत्तों की क्यारी। लुण्ठ्यमाना=लुटती हुई। उत्थाप्यताम्=उठानी चाहिये उद् √स्थापि य+ताम्-ण्यन्त कर्मवाच्य से लोट् लकार। स्तोकीक्रियन्ताम्=कम करने चाहिये। √स्तोकीकृ च्विप्रत्ययान्त से कर्मवाच्य में लोट् लकार प्रथम पुरुष का बहुवचन। मन्थरीक्रियन्ताम्=धीमी करो- √मन्थरीकृ से कर्मवाच्य में लोट् लकार, प्रथम पुरुष का बहुवचन। खिडक्किका=खिड़की।



नायिका—[ससाध्वसं स्वगतम्] अम्मो ! किं एसो सहसा गअणंगणादो अवदीण्णो पुण्णिमाहरिणंको ? किं वा तुट्टेण णीलकंठेण णिअदेहं लंभिदो मणोहओ ? किं वा हिअअस्स दुज्जणो णअणाणं सज्जणो जणो मं संभावेदि ? [प्रकाशम्] सहि कुरंगिए ! इंदजालं विअ पेक्खामि । (अहो ! किमेष सहसा गगनाङ्गनादवतीर्णः पूर्णिमाहरिणाङ्कः ? किं वा तुष्टेन नीलकण्ठेन निजदेहं लम्भितो मनोभवः ? किं वा हृदयस्य दुर्जनो नयनानां सुज्जनो जनो मां सम्भावयति ? [प्रकाशम्] सखि कुरङ्गिके ! इन्द्रजालमिव पश्यामि ।)

विदूषकः—[राजानं हस्ते गृहीत्वा] भोदि ! सच्चं इंदजालं संपण्णं । (भवति ! सत्यमिन्द्रजालं सम्पन्नम् ।)

[नायिका लज्जते]

कुरङ्गिका—सहि ! कप्पूरमंजरि ! अब्भुट्टाणेण संभावेहि भट्टारअं । (सखि कर्पूरमञ्जरि ! अभ्युत्थानेन सम्भावय भट्टारकम् ।)

नायिका—(घबराहट के साथ अपने मन में) अरे ! यह एकाएक आसमान से पूर्णिमा का चन्द्रमा कैसे उतर आया ? क्या शिवजी ने प्रसन्न होकर कामदेव को उसका शरीर दे दिया ? क्या मेरे हृदय को चुराने वाला और आंखों को तृप्त करने वाला कोई मुझे प्रसन्न कर रहा है ? (जोर से) सखि कुरङ्गिके ! मैं तो जादू सा देखती हूँ ।

विदूषक—(राजा का हाथ पकड़ कर) वस्तुतः इन्द्रजाल ही हो गया ।

(नायिका शर्माती है)

कुरङ्गिका—सखी कर्पूरमञ्जरी ! उठकर महाराज का स्वागत करो ?

टिप्पणी—साध्वसम् = भय, घबराहट । अवतीर्णः = उतरा-अव + √तृ + त = क्त-प्रत्यय-त को न आदेश-ऋ को ईर् = तीर्ण । पूर्णिमाहरिणांकः = पूर्णिमा का चन्द्रमा । नीलकण्ठः = शिव जी । लम्भितः = प्राप्त कराई । इन्द्रजालम् = जादू । हृदयस्य दुर्जनः = हृदय को चुराने वाला ।

१. सम्भावय = आदर करो-सम् √भावि से लोट लकार, मध्यमपुरुष एकवचन ।

स्वेदसलिलसिक्तगात्रा सम्भूता तत्रभवती कर्पूरमञ्जरी, तदिमां सिच-याञ्चलेन वीजयिष्यामि तावत्। [तथा कुर्वन्] हा ! हा ! कथं वस्त्राञ्चलपवनेन निर्वाणः प्रदीपः। [विचिन्त्य स्वगतम्] भवतु, लीलोद्यानमेव गच्छामः। [प्रकाशम्] भोः ! अन्धकारनृत्यं वर्त्तते, तन्निष्क्रामामः सुरङ्गामुखेनैव प्रमदोद्यानं तावत्।)

[सर्वे निष्क्रमणं नाटयन्ति]

राजा—[कर्पूरमञ्जरीं करे धृत्वा]—

मज्झ हत्थट्ठिदपाणिपल्लवा ईस संचरणबंधुरा भव।
जं चिराअ कलहंसमंडली भोदु केलिगमणम्मि दुब्भगा ॥२३॥
(मम हस्तस्थितपाणिपल्लवा ईषत्सञ्चरणबन्धुरा भव।
यच्चिराय कलहंसमण्डली भवतु केलिगमने दुर्भगा ॥ २३ ॥)

अन्वयः—मम हस्तस्थितपाणिपल्लवा ईषत्सञ्चरणबन्धुरा भव। यत् कलहंस-मण्डली चिराय केलिगमने दुर्भगा भवतु।

सरलार्थः—मया तव करकिसलयः गृहीतोऽस्ति, त्वम् मन्दं मन्दं चलनाय

रहा है; वस्त्र के छोर से इसकी हवा कर दूँ (हवा करते हुए) अरे ! अरे ! वस्त्र के छोर की हवा से दीपक बुझ गया। (विचार कर—अपने मन में) चलो सैर करने बाग में चलें। (जोर से) बड़ा अन्धेरा है। सुरंग के दरवाजे से ही बाग की ओर चलें।

(सब निकलने का अभिनय करते हैं)

राजा—(कर्पूरमञ्जरी का हाथ पकड़ कर):—

मैंने अपने हाथ से तेरा कोमल हाथ पकड़ लिया है, तू धीरे २ चलने के लिये

सा स्वेदसलिलसिक्तगात्रा=पसीने से भीगे शरीर वाली। सिचयाञ्चलेन=वस्त्र के छोर से। वीजयिष्यामि=हवा करूंगा। निर्वाणः=बुझ गया, निर् √वा+त=निर्वाण—क्तप्रत्यय—त को न आदेश (निर्वाणोऽवाते)। अन्धकारनृत्यम्=अत्यन्त अंधेरा। सुरङ्गा-मुखेन=सुरंग के रास्ते से।

टिप्पणी—पाणिरेव पल्लवः=पाणिपल्लवः, हस्ते स्थितः पाणिपल्लवः यस्याः सा हस्त-



[स्पर्शसुखमभिनीय]

जे णवस्स तिउसस्स कंटआ जे कदंवमउलस्स केसरा।
अज्ज तुज्भ करफंससंगिहिं ते हुअंति मह अंगहिं णिज्जिदा ॥

(ये नवस्य त्रपुषस्य कण्टका ये कदम्बमुकुलस्य केसराः
अद्य तव करस्पर्शसङ्गिभिस्ते भवन्ति ममाङ्गैर्निर्जिताः ॥२४॥)

[नेपथ्ये]

वैतालिकः—**सुहणिबंधणो होदु देवस्स चंदुज्जोओ।**
(सुखनिबन्धनो भवतु देवस्य चन्द्रोद्द्योतः)—

प्रयासं कुरु। तव मन्दगतिरेतादृशी भवेत् यत्तां दृष्ट्वा कलहंसानामपि मन्दगतिं जना नाद्रियेरन् ॥ २३ ॥

अन्वयः—ये नवस्य त्रपुषस्य कण्टकाः, ये कदम्बमुकुलस्य केसराः, ते अद्य तव करस्पर्शसंगिभिः मम अंगैः निर्जिता भवन्ति।

सरलार्थः—ये नवस्य त्रपुषाख्यफलविशेषस्य कण्टकाः, ये च कदम्बमुकुलस्य किञ्जल्काः भवन्ति, ते अद्य तव करस्पर्शं लब्ध्वा सञ्जातरोमाञ्चैः मम अङ्गैः निर्जिताः सन्ति, तव करस्पर्शेन मम अतीव रोमहर्षो जात इति भावः ॥ २४ ॥

प्रयत्न कर, ताकि हंसों की चाल भी तेरी चाल के समान अप्रिय हो जाय ॥ २३ ॥

(स्पर्शजनित सुख का अभिनय कर)

त्रपुष नाम के फल में जो कांटे होते हैं, अथवा कदम्ब के फूल में जो केसर होती हैं, ये सब तेरे हाथ का स्पर्श पाकर उत्पन्न हुये रोमाञ्च वाले मेरे अंगों के सामने कुछ भी नहीं हैं ॥ २४ ॥

(नेपथ्य में)

वैतालिक—महाराज के लिये चन्द्रोदय सुखकर हो।

स्थितपाणिपल्लवा = करनिहितकरकिसलया। ईषत्संचरणाय वन्धुरा = ईषत्संचरणवन्धुरा = मन्दं मन्दं चलनाय उत्थापितगात्रा। केलिगमने = मस्त चाल। दुर्भगा = अप्रिय ॥ २३ ॥

१. त्रपुस = एक फूल का नाम। २. केसरः = किञ्जल्क।
३. सुखस्य निबन्धनः = सुखनिबन्धनः = सुखहेतुः। ४. चन्द्रोद्योतः = चन्द्रमा का प्रकाश।

भूगोले तिमिराणुबंधमलिणे भूमीरुहेव्व ट्ठिदे
संजादा णवभुज्जपिंजरमुही जोण्हाअ पुव्वा दिसा ।
मुंचंतो मुचुकुंदकेसरसिरीसोहाणुआरे करे,
चंदो पेक्ख कलाकमेण अ गदो संपुण्णबिंबत्तणं ॥२५॥
(भूगोले तिमिरानुबन्धमलिने भूमिरुह इव स्थिते
सञ्जाता नवभूर्जपिञ्जरमुखी ज्योत्स्नया पूर्वा दिशा ।
मुञ्चन्मुचुकुन्दकेसरश्रीशोभानुकारान् करान्
चन्द्रः पश्य कलाक्रमेण च गतः सम्पूर्णबिम्बत्वम् ॥ २५ ॥)

अन्वयः—तिमिरानुबन्धमलिने भूगोले भूमिरुहे इव स्थिते पूर्वा दिशा ज्योत्स्नया नवभूर्जपिञ्जरमुखी सञ्जाता । मुचुकुन्दकेसरश्रीशोभानुकारान् करान् मुञ्चन् चन्द्रः कलाक्रमेण सम्पूर्णबिम्बत्वम् गतः, पश्य ।

व्याख्या—तिमिराणामन्धकाराणामनुबन्धेन सततसञ्चारेण भूगोले भूमण्डले भूमिरुहे वृक्ष इव स्थिते नीलीभूते सति पूर्वा दिशा ज्योत्स्नया चन्द्रिकया नवभूर्जपत्रमिव पिङ्गलमुखी कपिशवर्णा सञ्जाता । मुचुकुन्दाख्यस्य कुसुमस्य ये केसराः किञ्जल्काः तेषां या श्रीः तत्सदृशीं शोभां धारयतः किरणान् मुञ्चन् अभिक्षिपन् चन्द्रः कलाक्रमेण सम्पूर्णमण्डलत्वं गतः प्राप्तः । शनैः शनैः चन्द्रः पूर्णतामुपगतः । त्वं तम् पश्येति भावः ॥ २५ ॥

अन्धकार के लगातार बढ़ने से भूमण्डल के मलिन और वृक्ष की तरह नीले मालूम पड़ने पर पूर्व दिशा चांदनी से नए भोजपत्र के समान पीली हो गई है। मुचुकुन्द फूल की केसर की शोभा के समान शोभा वाली किरणों को बरसाता हुआ चन्द्रमा, देखो किस तरह धीरे २ अपनी कलाओं से पूर्ण हो गया है ॥ २५ ॥

टिप्पणी—तिमिरस्य अनुबन्धेन मलिने=तिमिरानुबन्धमलिने=अन्धकारस्य सततसंचारेणावृते । भूमिरुहः=वृक्ष । नवभूर्जस्य इव पिंजरं मुखम् यस्याः सा नवभूर्जपिंजरमुखी=नवभूर्जपत्रपिंगलवर्णा । मुचुकुन्दस्य केसराः मुचुकुन्दकेसराः तेषां या श्रीः तस्याः शोभाम् अनुकुर्वन्ति-तान्=मुचुकुन्दकेसरश्रीशोभानुकारान्=मुचुकुन्दकिंजल्कसमृद्धिशोभायुक्तान् । मुचुकुन्द=एक प्रकार का फूल । मुञ्चन्=छोड़ता हुआ-√मुच्+अत्=

अवि अ (अपि च)—

अकुंकुममचंदणं दहदिहावहूमंडणं
अकंकणमकुंडलं भुअणमंडलीभूसणं।
असोसणममोहणं मअरलंछणस्साउहं
मिअंककिरणावली णहत लम्मि पुंजिज्जइ ॥ २६ ॥

(अकुङ्कुममचन्दनं दशदिशावधूमण्डनं
अकङ्कणमकुण्डलं भुवनमण्डलीभूषणम् ।
अशोषणममोहनं मकरलाञ्छनस्यायुधं
मृगाङ्ककिरणावली नभस्तले पुञ्जीभवति ॥ २६ ॥)

सरलार्थः—अन्धकारस्य बाहुल्येन भूमण्डलं नीलीभूतमासीत्, चन्द्रिकया प्राची दिशा सपदि एव भूर्जपत्रमिव उज्ज्वलाऽभवत्। चन्द्रः अभितः स्वकिरणान् वर्षति, शनैः शनैः कलानां वृद्धया पूर्णश्च सञ्जात इति त्वं चन्द्रं पश्येति भावः ॥२५॥

अन्वयः—अकुङ्कुमम् अचन्दनम् दशदिशावधूमण्डनम् अकङ्कणम् अकुण्डलम् भुवनमण्डलीभूषणम् अशोषणम् अमोहनम् मकरलाञ्छनस्य आयुधम् मृगाङ्ककिरणावली नभस्तले पुञ्जीभवति ॥

सरलार्थः—कुङ्कुमरहितम्, चन्दनविहीनम्, दशानां दिगङ्गनानाम् आभूषणम्, कङ्कणरहितम्, कुण्डलवर्जितम्, संसारस्य अलङ्करणम्, अशोषणम्, मोहस्य अजनकम्, कामदेवस्यास्त्रभूतम् च इयं चन्द्ररश्मिमाला आकाशे राशीभवति ॥२६॥

और भी:—

कुङ्कुम से रहित, चन्दनविहीन, दशों दिशाओं को सजाने वाली, कङ्कणरहित, विना कुण्डल की, संसार की शोभा, लोगों को तृप्त करने वाली तथा मोह न करने वाली और कामदेव की अस्त्रभूत ये चन्द्ररश्मियाँ आकाश में इकट्ठी हो रही हैं ॥

शत्रन्त। सम्पूर्णः बिम्बः यस्य स सम्पूर्णबिम्बः, तस्य भावस्तम् = सम्पूर्णबिम्बत्वम् = संपूर्णमण्डलत्वम्। कलाक्रमेण = कलाओं के क्रम से ॥ २५ ॥

टिप्पणी—नास्ति कुङ्कुमं गन्धद्रव्यविशेषः यस्मिन् तत् = अकुङ्कुमम् = कुङ्कुमरहितम्। दशानां दिशावधूनां मण्डनम् = दशदिशावधूमण्डनम् = दशदिगङ्गनाभूषणम्। भुवनमण्डल्याः

(ददतः कर्पूरपूरच्छुरणमिव दिशासुन्दरीणां मुखेषु
श्लक्ष्णां ज्योत्स्नां किरन्तो भुवनजनमनोनन्दनं चन्दनमिव ।
जीर्णं कन्दर्पकन्दं त्रिभुवनकलनाकन्दलितं कुर्वन्तो
जाता एणाङ्कपादाः सजलजलधरोन्मुक्तधारानुकाराः ॥ २८ ॥)

विदूषकः—दिसवहुत्तंसो णहसरहंसो ।
णिहुवणकंदो प्पसरइ चंदो ॥ २९ ॥

अन्वयः—सजलजलधरोन्मुक्तधारानुकाराः एणाङ्कपादाः दिशासुन्दरीणाम् मुखेषु कर्पूरपूरच्छुरणमिव ददतः, भुवनजनमनोनन्दनं चन्दनमिव श्लक्ष्णां ज्योत्स्नाम् किरन्तः, जीर्णम् कन्दर्पकन्दम् त्रिभुवनकलनाकन्दलितम् कुर्वन्तः जाताः ।

व्याख्या—जलेन सहिताः सजलाः, सजलजलधरैः मेघैः उन्मुक्तानां धाराणां सदृशाः चन्द्रकिरणाः दिगङ्गनानाम् मुखेषु कर्पूरचूर्णस्य लेपनं कुर्वन्त इव दृश्यन्ते सर्वाः दिशः साम्प्रतम् धवलाः सञ्जाताः । चन्द्रकिरणाः सर्वस्य लोकस्य मनसः आह्लादकम् चन्दनमिव चिक्कणां चन्द्रिकां किरन्ति (वर्षन्ति)। जीर्णम् तिरस्कृतं नातिप्रवृद्धम् कामं त्रिभुवनस्य व्यापनेन कन्दलितं कुर्वन्तः वर्धयन्तः चन्द्ररश्मयः दृश्यन्ते ॥ २८ ॥

सुन्दरियों के मुख पर कपूर के चूर्ण का लेप सा देती हुई दिखाई देती हैं, (अर्थात् सारी दिशाएँ कपूर की तरह उज्ज्वल हो रही हैं)। सारे संसार के मन को प्रसन्न करने वाले चन्दन की तरह स्वच्छ और चिक्कण चांदनी फैला रही हैं, शान्त काम-देव को तीनों लोकों में फैला कर ये चन्द्र किरणें काम का उद्दीपन कर रही हैं ॥२८॥

विदूषक—दिशारूपी स्त्रियों का आभूषण, आकाशरूपी सरोवर में हंस की तरह

टिप्पणी—जलेन सहिताः सजलाः, सजलाश्च ये जलधराः, सजलजलधराः,तैः उन्मुक्ताः याः धाराः ताः अनुकुर्वन्ति, ते सजलजलधरोन्मुक्तधारानुकाराः=सजलमेघाभिवृष्टधारा-सदृशाः-जल से भरे हुए मेघों से उन्मुक्त धारा की तरह । एणाङ्कस्य मृगाङ्कस्य पादाः= एणाङ्कपादाः=चन्द्ररश्मयः । कर्पूरस्य पूरैः छुरणम्=कर्पूरचूर्णलेपनम् । ददतः = देती हुई-√दा+अत् शत्रन्त । श्लक्ष्ण = चिकना । किरन्तः=वर्षन्तः-√कृ+अ+अत्-शत्रन्त । त्रिभुवनस्य कलनया कन्दलितम्=त्रिभुवनकलनाकन्दलितम्-त्रिभुवनव्यापनेन प्रवृद्धम् । जीर्णम्=तिरस्कृतम्, नष्टप्रभावम् ॥ २८ ॥

(दिग्वधूत्तंसो नभःसरोहंसः ।
निधुवनकन्दः प्रसरति चन्द्रः ॥ २६ ॥)

कुरङ्गिका—

ससहररइदगव्वो माणिणिमाणघरट्टो ।
णवचंपअकोदंडो मअणो जअइ प्पअंडो ॥ ३० ॥

(शशधररचितगर्वो मानिनीमानघरट्टः ।
नवचम्पककोदण्डो मदनो जयति प्रचण्डः ॥ ३० ॥)

[कर्पूरमञ्जरीं प्रति]—**प्पिअसहि ! तुए किदं चंदवण्णणं महाराअस्स पुरदो पढिस्सं ।** (प्रियसखि ! त्वया कृतं चन्द्रवर्णनं महाराजस्य पुरतः पठिष्यामि ।)

सरलार्थः—दिगङ्गनानाम् आभूषणम् , नभःसरसि हंस इव दृश्यमानः सुरतस्य उद्दीपकः चन्द्रः उदयते ॥ २९ ॥

सरलार्थः—चन्द्रेण यस्य गर्वं उत्पादितोऽस्ति, यश्च मानिनीनां मानं मर्दयति, नवचम्पकपुष्पमेव च यस्य धनुरस्ति स उद्धतः मदनः जयति सर्वोत्कर्षेण विराजते ॥

विहार करने वाला तथा शृङ्गार रस का उद्दीपक यह चन्द्रमा उदय हो रहा है ॥२९॥

कुरङ्गिका—**चन्द्रमा ने जिसको गर्वीला बना दिया है, जो मानिनी स्त्रियों के मान को चूर करने वाला है तथा चम्पा का नया फूल ही जिसका धनुष है ऐसा कामदेव बड़ी प्रचण्डता से संसार को जीत रहा है ॥ ३० ॥**

(कर्पूरमञ्जरी से) प्रियसखि ! तुम्हारे द्वारा किया हुआ चन्द्रवर्णन महाराज के सामने पढ़ूंगी ।

टिप्पणी—दिगेव वधूः = दिग्वधूः, तस्याः उत्तंसः = दिग्वधूत्तंसः = दिगङ्गनाकर्णभूषणम् । नभ एव सरः, तस्य हंसः = नभःसरोहंसः = आकाशहंसः-आकाशरूपी सरोवर में हंस के समान । निधुवनस्य कन्दः = निधुवनकन्दः = सम्भोगोद्दीपकः । प्रसरति = उदयति, उदय होता है ॥ २९ ॥

टिप्पणी—शशधरेण रचितः गर्वः यस्य सः शशधररचितगर्वः = चन्द्रोत्पादिताभिमानः । मानिनीनां मानस्य घरट्टः = मानिनीमानघरट्टः = मानवती स्त्रियों के मान को

[चन्द्रमुद्दिश्य]

मुक्कसंक ! हरिणंक ! किं तुमं सुन्दरीपरिसरेण हिंडसि ? ।
गोरगण्डपरिपण्डुरत्तणं प्पेच्छ दिण्णममुणा मुहे ण दे ? ॥ ३४ ॥
(मुक्तशङ्क ! हरिणाङ्क ! कि त्वं सुन्दरीपरिसरेण हिण्डसे ? ।
गौरगण्डपरिपाण्डुरत्वं पश्य दत्तममुना मुखे न ते ? ॥ ३४ ॥)

[नेपथ्ये महान् कलकलः । सर्वे आकर्णयन्ति]

राजा—किं उण एस कोलाहलो ? । (किं पुनरेष कोलाहलः ?)

कर्पूरमञ्जरी—[ससाध्वसम्] प्पिअसहि ! एदमवगमिअ आअच्छ । (प्रियसखि ! एतदवगम्य आगच्छ ।)

[कुरङ्गिका निष्क्रम्य प्रविशति]

विदूषकः—देवीए प्पिअवअस्सस्स वंचणा किदेत्ति तक्केमि । (देव्या प्रियवयस्यस्य वञ्चना कृतेति तर्कयामि ।)

सरलार्थः—हे निर्लज्ज ! चन्द्र ! येन सुन्दरीमुखेन ते गौरयोः कपोलयोः परिपाण्डुरत्वं दत्तम्, तादृशसुन्दरीपरिसरे त्वं कुतो न परिभ्रमसि । अतः त्वं निर्लज्ज

(चन्द्रमा को देख कर):—

हे निर्लज्ज चन्द्रमा ! जिस सुन्दरी के मुख ने तेरे गोरे २ गालों पर सफेदी दी है उस सुन्दरी के पास तू क्यों नहीं घूमता ?—तू बड़ा निर्लज्ज है ॥ ३४ ॥

(नेपथ्य में बड़ा शोर होता है। सब सुनते हैं।)

राजा—यह कोलाहल क्यों हो रहा है ?

कर्पूरमञ्जरी—(घबराहट के साथ) प्रियसखि ! यह जान कर आओ।

(कुरङ्गिका बाहर जाकर लौट आती है)

विदूषक—महारानी ने प्रियमित्र को धोखा दिया—ऐसा समझता हूँ।

टिप्पणी—मुक्ता शङ्का येन सः, तत्सम्बुद्धौ हे मुक्तशङ्क = निःशङ्क। हिण्डसे=घूमता है। गौरयोः गण्डयोः परिपाण्डुरत्वम् = गौरगण्डपरिपाण्डुरत्वम् = गौरकपोलधवलत्वम् ॥ ३४ ॥

टिप्पणी—साध्वसेन सह = ससाध्वसम् = घबराहट के साथ। अवगम्य = जानकर—अव √गम् + य-ल्यबन्त। १. वञ्चना = धोखा। तर्कयामि = सोचता हूँ।

कुरङ्गिका—प्पिअसहि ! भट्टारअस्स वञ्चणं कदुअ तुए सह सङ्गमं जाणिअ आअच्छदि देवी; तेण कुज्ज-वामणकिरात-वरिसवर-सोविदल्लाणं एस कोलाहलो । (प्रियसखि ! भट्टारकस्य वञ्चनां कृत्वा त्वया सह सङ्गमं ज्ञात्वा आगच्छति देवी, तेन कुब्ज-वामन-किरात-वर्षवर-सौविदल्लानामेष कोलाहलः ।)

कर्पूरमञ्जरी—[सभयम्] ता मं प्पेसदु महाराओ, जेणाहमिमिणा सुरङ्गामुहेण ज्जेव्व प्पविसिअ रक्खाघरअं गच्छेमि, जह देवी महाराएण सह सङ्गमं ण जाणादि । (तत् मां प्रेषयतु महाराजः; येनाहमनेन सुरुङ्गामुखेनैव प्रविश्य रक्षागृहकं गच्छामि, यथा देवी महाराजेन सह सङ्गमं न जानाति ।)

[इति निष्क्रान्ताः सर्वे]

इति तृतीयजवनिकान्तरम्

इति प्रतीयते । एतादृशं वस्तु त्वया यतः प्राप्तं तत्र ते भक्तिर्नास्ति ॥ ३४ ॥

कुरङ्गिका—प्रियसखि ! धोखा देकर तुझ से महाराज के मिलने का समाचार पाकर महारानी आ रही हैं, इसलिए कुब्ज-वामन-किरात-वर्षवर और सौविदल्लों का यह कोलाहल है।

कर्पूरमञ्जरी—(डर के साथ) महाराज मुझे आज्ञा दें, ता कि मैं इस सुरङ्ग से ही निकल कर रक्षागृह में चली जाऊँ और महारानी को भी आप से मिलने का वृत्तान्त ज्ञात न हो। (सब का प्रस्थान)

टिप्पणी—वर्षवरः = अन्तःपुर का नौकर । सौविदल्ल = कञ्चुकिन् = अन्तःपुर का सेवक । प्रविश्य=घुसकर–प्र √विश् + य=ल्यबन्त ।

तिसरी यवनिका समाप्त ।

चतुर्थं जवनिकान्तरम्

[ततः प्रविशति राजा विदूषकश्च]

राजा—अहो ! गाढअरो गिम्हो, पवणो अ प्पचण्डो, ता कधं णु सहिदव्वो जणो—(अहो ! गाढतरो ग्रीष्मः, पवनश्च प्रचण्डः, तत् कथं नु सोढव्यः जनः)—

इह कुसुमसरेक्कगोअराणं इदुभअं पि सुदुस्सहं त्ति मण्णे ।
जरठरइकरालिदो अ कालो तह अ जणेण पिएण विप्पलम्भो ॥

(इह कुसुमशरैकगोचराणामिदमुभयमपि सुदुःसहमिति मन्ये ।
जरठरविकरालितश्च कालस्तथा च जनेन प्रियेण विप्रलम्भः ॥ १ ॥)

अन्वयः—इह कुसुमशरैकगोचराणाम् जरठरविकरालितः कालः तथा प्रियेण जनेन विप्रलम्भः इदमुभयमपि सुदुःसहम् इति मन्ये ।

व्याख्या—इह संसारे कुसुमशरस्य कामदेवस्य एकगोचराणाम् एकमात्रविषयाणाम् काममोहितानाम् जरठेन प्रचण्डेन रविणा सूर्येण करालितः कालः ग्रीष्मर्तुः, तथा प्रियेण इष्टेन जनेन विप्रलम्भः विरहश्च इदमुभयमपि सुदुःसहम् दुःखेन सोढुमशक्यमिति सम्भावयामि ॥ १ ॥

(राजा और विदूषक रंगमंच पर आते हैं)

राजा—अरे ! बड़ी गर्मी है, हवा भी गर्म है, कैसे रहा जाय; क्योंकिः—

इस संसार में कामार्तों के लिए ग्रीष्म ऋतु तथा प्रियजन से वियोग ये दोनों बड़े ही कष्ट देने वाले हैं—ऐसा मैं समझता हूँ ॥ १ ॥

टिप्पणी—अयमनयोः अतिशयेन गाढः = गाढतरः-गाढ शब्द से तर प्रत्यय। सोढुं योग्यः = सोढव्यः-सह् धातु से तव्य प्रत्यय।

टिप्पणी—कुसुमानि एव सन्ति शराः यस्य स कुसुमशरः, तस्य एकगोचराणाम् = कुसुमशरैकगोचराणाम् =कामपीडितानाम्-कामदेव से सताए हुए। जरठेन रविणा करालितः = जरठरविकरालितः =प्रचण्डसूर्यकवलितः। विप्रलम्भः =वियोगः ॥ १ ॥



विदूषकः—

एक्के दाव मम्मह वाहणिज्जा अण्णे दाव सोसणिज्जा।
अम्हारिसो उण जणो ण कामस्स वाहणिज्जो ण तावस्स सोसणिज्जो ॥२॥
(एके तावत् मदनस्य बाधनीयाः अन्ये तावत् शोषणीयाः।
अस्मादृशः पुनर्जनो न कामस्य [1]बाधनीयो न तापस्य शोषणीयः॥२॥)

[नेपथ्ये]

ता किं ण क्खु दे मूलुप्पाडिअचूडिआविअलं सीसं करिस्से ?।
(तत् किं न खलु ते मूलोत्पाटितचूलिकाविकलं शीर्षं करिष्ये ?।)

राजा—[विहस्य] वअस्स ! लीलावणसच्छन्दचारिणा केलिसुएण किं भणिदं ? (वयस्य ! [2]लीलावनस्वच्छन्दचारिणा केलिशुकेन किं भणितम् ?)

सरलार्थः—केचन जनाः कामस्य पीडनीयाः भवन्ति, अन्ये जनाः निदाघतापेन शोषणीयाः भवन्ति। अस्मादृशाः जनः न कामस्य बाधनीयः, न वा शोषणीय इत्यर्थः ॥ २ ॥

विदूषक—कुछ लोगों को तो काम सताता है, कुछ लोग गर्मी से दुःख पाते हैं। हम जैसे को तो न काम ही सताता है न गर्मी ही दुःख देती है ॥ २ ॥

(नेपथ्य में)

जड़ सहित चोटी उखाड़ कर तेरे सिर को विरूप क्यों न कर दूं ?

राजा—(हंसकर) मित्र ! लीला वन में स्वच्छन्द घूमने वाले तोते ने क्या कहा?

---

१. बाधनीयाः =पीडनीयाः- √बाध् धातु से अनीय प्रत्यय।

टिप्पणी—मूलात् उत्पाटिता = मूलोत्पाटिता। मूलोत्पाटिता चासौ चूलिका तया विकलम् = मूलोत्पाटितचूलिकाविकलम् = समूलोन्मूलितकेशनिचयविकलम्-जड़सहित बालों के उखाड़ने से विरूप। शीर्षम् = सिर।

२. लीलावनं स्वच्छन्दं चरति, तेन लीलावनस्वच्छन्दचारिणा =क्रीडाकाननस्वच्छन्दविहारिणा। लीलावन में स्वच्छन्द विहार करनेवाला।

विदूषकः—[सक्रोधम्] आः दासीए उत्त ! सूलाअरण[1]जोग्गोसि । (आः दास्याः पुत्र ! शूलाकरणयोग्योऽसि ।)

[नेपथ्ये]

सव्वं तुम्हारिसाहिंतो सम्भाविज्जदि, जइ मे ण होंति पक्खावलीओ । (सर्वं युष्मादृशेभ्यः सम्भाव्यते, यदि मे न भवन्ति पक्षावल्यः[2] ।)

राजा—[विलोक्य] कहं उड्डीणो ज्जेव्व । (कथमुड्डीन[3] एव ।)

[विदूषकं प्रति]

णिसातलिणवित्थरा तह दिणेसु वड्ढत्तणं
ससी लहदि खण्डणं तह अ चण्डबिम्बो रई ।
णिदाहदिअसेसु विप्फुरदि जस्स एव्वं कमो
कहं ण स विही तदो खुरसिहाइं खण्डिज्जदि ? ॥३॥

(निशाऽस्तलीनविस्तरा तथा दिनेषु वृद्धत्वं
शशी लभते खण्डनं तथा च चण्डबिम्बो रविः ।

अन्वयः—निशा अस्तलीनविस्तरा, तथा दिनेषु वृद्धत्वम् , शशी खण्डनं

विदूषक—(क्रोध के साथ) अरे दासी के पुत्र ! फांसी देने के योग्य है।

(नेपथ्य में)

तुम सब कुछ कर सकते हो, अगर मेरे पंख न हों।

राजा—(देखकर) क्या उड़ ही गया।

(विदूषक से)

रात्रि छोटी होती है, दिन बड़े होते हैं, चन्द्रमा घटता जाता है, सूर्य अत्यन्त

---

१. शूलाकरणयोग्यः = मारे जाने के योग्य।

२. पक्षावल्यः = पंखों की पंक्तियाँ।

३. उड्डीनः = उड़ गया। उत् पूर्वक √डी धातु से क्त प्रत्यय त को न आदेश।

टिप्पणी—अस्तं लीनः = अस्तलीनः, अस्तलीनः विस्तरः यस्याः सा अस्तलीनविस्तरा =



निदाघदिवसेषु विस्फुरति यस्यैवं क्रमः

कथं न स विधिस्ततः क्षुरशिखाभिः खण्ड्यते ? ॥ ३ ॥

किं अ, णिउणं सेवणिज्जो जइ सुहसंगमो भोदि । जदो–
(किञ्च, निपुणं सेवनीयो यदि शुभसङ्गमो भवति । यतः)—

मज्झणे सिरिखण्डपङ्कफलणा आ संझमादांसुअं
लीलामज्जणमा-प्पदोससमअं साअं सुरा सीअला ।
गिम्हे पच्छिपजामिणोणिहुवणं जं किं पि पञ्चेसुणो
एदे पञ्च सिलीमुहा विजइणो सेसा सरा जज्जरा ॥ ४ ॥

लभते, तथा रविः च चण्डविम्बः, निदाघदिवसेषु यस्य एवं क्रमः विस्फुरति, सः विधिः ततः क्षुरशिखाभिः कथं न खण्ड्यते ।

सरलार्थः—रात्रिः अल्पकालीना सञ्जाता, दिनानि तु दीर्घाणि भवन्ति, चन्द्रमाः ह्रासं लभते, स्वल्पकालमेव च गगने तिष्ठति, सूर्यश्च दीर्घकालं तपति । यस्य विधेः ग्रीष्मदिनेषु एतादृशः नियमः प्रसरति स क्षुरधाराभिः कथं न छिद्यते । अवश्यमेव स छेत्तव्य इति भावः ॥ ३ ॥

प्रचण्ड होता जाता है । गर्मी के दिनों में जिस विधि का ऐसा नियम रहता है उसे क्यों न छुरी से काट दिया जाय ॥ ३ ॥

अगर अपना प्रिय पास में हो, तो इस समय का सदुपयोग करना चाहिए । क्योंकिः—

ग्रीष्म ऋतु में दोपहर को चन्दन का लेप करना चाहिए । शाम तक गीले वस्त्र पहिनने चाहिए । रात्रि के प्रारम्भ होने पर खूब जलक्रीडा करनी चाहिए । फिर

लघुः । खण्डनम् = ह्रासम् । चण्डः विम्बो यस्य स चण्डविम्बः तीव्रसन्तापः । निदाघदिवसेषु = ग्रीष्मदिनेषु । क्षुरस्य शिखाभिः = क्षुरशिखाभिः = क्षुरधाराभिः । खण्डयते = छिद्यते-काटा जाता है ॥ ३ ॥

टिप्पणी—निपुणम् = अच्छी तरह । सेवितुं योग्यः = सेवनीयः- √सेव् + अनीय = सेवनीय = उपभोग करने के योग्य ।

सचन्दणघणत्थणी सअणसीअला कामिणी
णिदाहदिअसोसहं सहजसीअलं कस्सवि ॥ ६ ॥

(सपञ्चमतरङ्गिणः श्रवणशीतला वेणवः
समं शिशिरवारिणा वदनशीतला वारुणी ।
सचन्दनघनस्तनी शयनशीतला कामिनी
निदाघदिवसौषधं सहजशीतलं कस्यापि ॥ ६ ॥)

अवि अ (अपि च)—

अन्वयः—सपञ्चमतरङ्गिणः श्रवणशीतलाः वेणवः, शिशिरवारिणा समम् वदनशीतला वारुणी, सचन्दनघनस्तनी शयनशीतला कामिनी, 'एतत् त्रयम्' कस्यापि सहजशीतलम् निदाघदिवसौषधम् 'अस्ति' ।

सरलार्थः—पञ्चमस्वरयुक्तानि रागवन्ति श्रुतिमधुराणि वंशीवाद्यानि, नीहार-जलेन सह मुखशीतलकरी मदिरा, चन्दनचर्चितकठोरकुचवती शय्यासुखदायिनी कामिनी एतत् त्रयम् स्वभावशीतलम् वस्तु कस्यापि भाग्यवत एव ग्रीष्मोपचाररूपेण उपलब्धं भवतीत्यर्थः ॥ ६ ॥

जल के साथ मुख को ठण्ढा करने वाली शराब, चन्दन लगे हुए तथा कठोर स्तनों वाली और शय्या में सुख देने वाली कामिनी ये तीन स्वभाव से ही शीतल चीजें किसी भाग्यवान् को ही ग्रीष्म ऋतु में उपचार रूप से मिलती हैं ॥ ६ ॥

और भीः—

टिप्पणी—पञ्चमेन सहिताः सपञ्चमाः, सपञ्चमाश्च तरङ्गिणश्च सपञ्चमतरङ्गिणः = पञ्चमस्वरयुक्ताः, रागवन्तश्च । श्रवणयोः शीतलाः = श्रवणशीतलाः = कर्णमधुराः । वेणवः = वंशीरवाः । शिशिरवारिणा समम्—समम् के योग में तृतीया । वदनाय शीतला = वदनशीतला = मुखशीतलकरी । वारुणी = सुरा । चन्दनेन सहितौ = सचन्दनौ, सचन्दनौ घनौ च स्तनौ यस्याः साः सचन्दनघनस्तनी = चन्दनचर्चितकठोरस्तनी । शयने शीतला = शयनशीतला = शय्यायां सुखवर्धिका । निदाघदिवसानाम् औषधम् = निदाघदिवसौषधम् = ग्रीष्मोपचारः ॥ ६ ॥



लीलुत्तंसो सिरीसं सिहिणपरिसरे सिन्दुवाराणं हारो
अङ्गे आद्दं वत्थं रमणपणइणी मेहला उप्पलेहिं।
दोसुं दोकंदलीसुं णवविसवलआ कामवेज्जो मणोज्जो
तावातङ्कक्खमाणं महुसमए गदे एस वेसोऽबलाणं ॥ ७ ॥

(लीलोत्तंसः शिरीषं स्तनपरिसरे सिन्दुवाराणां हारः
अङ्गे आर्द्रं वस्त्रं रमणप्रणयिनो मेखलोत्पलैः।
द्वयोर्दोः कन्दल्योर्नवविसवलया कामवैद्यो मनोज्ञः
तापातङ्कक्षमाणां मधुसमये गते एष वेशोऽबलानाम् ॥ ७ ॥)

अन्वयः—मधुसमये गते लीलोत्तंसः शिरीषम्, स्तनपरिसरे सिन्दुवाराणाम् हारः, अङ्गे आर्द्रं वस्त्रम्, उत्पलैः रमणप्रणयिनी मेखला, द्वयोः दोः कन्दल्योः नवविसवलया, तापातङ्कक्षमाणाम् अबलानाम् एष मनोज्ञः वेशः कामवैद्यः।

सरलार्थः—वसन्तकाले समाप्ते सति लीलया कर्णयोः शिरीषधारणम्, वक्षःस्थले सिन्दुवारपुष्पाणाम् हारस्य धारणम्, अङ्गे जलसिक्तं वस्त्रम्, जघनयोः रत्नयुक्ता काञ्ची, द्वयोः भुजलतयोः नवानां मृणालतन्तूनां कंकणानि—एतादृश एव मनोहरः वेशः ग्रीष्मतापपीडितानाम् अबलानाम् कामावेशशान्तिं करोति ॥ ७ ॥

कानों में शिरीष का फूल लगाना, वक्षःस्थल पर सिन्दुवार के फूलों का हार धारण करना, शरीर पर गीले वस्त्र रखना, रत्नजड़ी हुई करधनी पहिरना तथा लता जैसी दोनों भुजाओं में नवीन मृणाल तन्तुओं के कङ्कण पहिनना—इस तरह का सुन्दर वेश ग्रीष्म ऋतु में गर्मी के कष्ट को सहन करने वाली अबलाओं के कामावेश को शान्ति पहुँचाता है ॥ ७ ॥

टिप्पणी—शिरीषम्=सिरस का फूल। उत्तंसः=कानों का एक आभूषण। स्तनपरिसरे=स्तनों पर। रमणयोः प्रणयिनी=रमणप्रणयिनी=जङ्घाओं से प्रीति करनेवाली। दोः कन्दल्योः=भुजलताओं पर। नवानां विसानां वलयाः=नवविसवलयाः=सरसमृणालतन्तुकङ्कणानि। तापस्य आतंकं क्षमन्ते इति तेषां तापातङ्कक्षमाणां=तापक्लेशसहानाम्। कामवैद्यः=कामशान्तिकरः। मधुसमयः=वसन्तसमयः ॥ ७ ॥

राजा—[विदूषकं प्रति] वअस्स ! अत्थि तस्सा दा कावि वत्ता ? । (वयस्य ! अस्ति तस्याः कापि वार्ता ?)

विदूषकः—अत्थि, सुणादु पिअवअस्सो, कधेमि सुहासिदं दे । जदो पहुदि कप्पूरमञ्जरी रक्खाभवणादो सुरुङ्गादुआरे देवीए दिट्ठा, तदो पहुदि तं सुरुङ्गादुआरं देवीए बहलसिला-सञ्चएण णीरन्धं कदुअ पिहिदं । अणङ्गसेणा कलिंगसेणा काम-सेणा वसन्तसेणा विब्भमसेणेत्ति पञ्च सेणाणामधेआओ चामर-धारिणीओ फारप्फुरन्तकरवालहत्थपाइक्कसहस्सेण सह कारा-मन्दिरस्स रक्खाणिमित्तं पुव्वदिसि णिउत्ताओ । (अस्ति, शृणोतु प्रियवयस्यः, कथयामि सुभाषितं ते । यतः प्रभृति कर्पूरमञ्जरी रक्षाभवनात् सुरङ्गाद्वारे देव्या दृष्टा, ततः प्रभृति तत् सुरङ्गाद्वारं देव्या बहुलशिलासञ्चयेन नीरन्ध्रं कृत्वा पिहितम् । अनङ्गसेना कलिङ्गसेना कामसेना वसन्तसेना विभ्रमसेनेति पञ्च सेनानामधेयाश्चामरधारिण्यः स्फारस्फुरत्करवालहस्तपदातिसहस्रेण सह कारामन्दिरस्य रक्षानिमित्तं पूर्वदिशि नियुक्ताः ।)

राजा—(विदूषक से) मित्र ! कुछ उसका भी हाल मालूम है ?

विदूषक— हाँ, है, मित्र सुनो ? तुम्हारे लिए शुभ समाचार सुनाता हूँ । जब से महारानी ने कर्पूरमञ्जरी को रक्षाभवन से सुरंगाद्वार पर जाती हुई देखा, तब से उस सुरंगा के दरवाजे को बहुल पत्थरों से नीरन्ध्र करके ढक दिया है और अनंगसेना, कलिंगसेना, कामसेना, वसन्तसेना तथा, विभ्रमसेना नाम वाली पाँच चंवर डुलाने वालियों को अत्यन्त चमकती हुई तलवार हाथ में लिए हजार पैदल

दुःखदायिनः । मासैः उपमा अस्ति येषां ते मासोपमाः = माससदृशाः । अतिशयेन दीर्घाः = दीर्घतमाः = अत्यायताः । यान्ति = बीतते हैं √या धातु से प्रथम पु० बहु० लट्लकार ॥ ९ ॥

टिप्पणी—सुभाषितम् = शुभ समाचार । शिलाना सञ्चयः = शिलासञ्चयः, बहुलश्चासौ शिलासंचयः, तेन = बहुलशिला-सचयेन = प्रभूतशिलासमूहेन । रन्ध्रेभ्यः निर्गतम् (रहि-



अणङ्गलेहा चित्तलेहा चन्दलेहा मिअङ्कलेहा विब्भमलेहेत्ति लेहाणामधेआओ पञ्च सेरन्धीओ पुंखिदसिलीमुहधणुहत्थेण णिविड़णिवद्धतूणीरदुद्धरेण धाणुक्कसहस्सेण समं दक्खिणाए दिसाए णिवेसिदाओ। (अनङ्गलेखा चित्रलेखा चन्द्रलेखा मृगांकलेखा विभ्रमलेखेति लेखानामधेयाः पञ्च सैरिन्ध्र्यः पुङ्खितशिलीमुखधनुर्हस्तेन निबिडनिबद्धतूणीरदुर्द्धरेण धानुष्कसहस्रेण समं दक्षिणस्यां दिशि निवेशिताः।)

कुन्दमाला चन्दणमाला कुवलअमाला कञ्चणमाला वउलमाला मङ्गलमाला माणिक्कमालेत्ति सत्त मालेत्तिणामधेआओ णवणिसिदकुंतहत्थपाइक्कसहस्सेण समं तम्बूलकरंकवाहिणीओ

सिपाहियों के साथ कारागार की रक्षा के लिए पूर्वदिशा में नियुक्त कर दिया है॥

अनंगलेखा, चित्रलेखा, चन्द्रलेखा, मृगाङ्कलेखा और विभ्रमलेखा—इन लेखा नाम वाली पाँच सैरिन्ध्रियों को बाण चढ़े हुए धनुष को हाथ में लिए हुए और खूब बंधे हुए तरकस से सज्जित हजार धनुर्धारियों के साथ दक्षिण में नियुक्त कर दिया है।

कुन्दमाला, चन्दनमाला, कुवलयमाला, काञ्चनमाला, वकुलमाला, मङ्गलमाला

तम्) नीरन्ध्रम् = छिद्ररहितम्। पिहितम् = आच्छादितम्-ढक दिया। स्फारम् अत्यन्तम् स्फुरन् करवालः हस्ते यस्य तत् स्फारस्फुरत्करवालहस्तम्, तादृशं पदातिसहस्रम् तेन स्फारस्फुरत्करवालहस्तपदातिसहस्रेण = अतिदीप्यमानखड्गहस्तपादचारिसैन्यसमूहेन। कारामन्दिरम् = बन्दीगृह।

टिप्पणी—सैरिन्ध्री = ऐसी स्त्री जो दूसरे के घर रहे, स्वतन्त्र हो और केश झाड़ना गूथना आदि शिल्पकार्य करती हो। पुंखितः संहितः शिलीमुखः यस्मिन् तत् पुंखितशिलीमुखम्, तादृशं धनुः हस्ते यस्य तेन पुंखितशिलीमुखधनुर्हस्तेन = संहितबाणधनुर्हस्तेन। निविड निबद्धः तूणीरस्तेन दुर्द्धरेण = निविडनिबद्धतूणीरदुर्द्धरेण = दृढनिबद्धतूणीरदुरासदेन। धानुष्कानाम् सहस्रं तेन धानुष्कसहस्रेण = हजार धनुर्धारियों के द्वारा।

[ततः प्रविशति सारङ्गिका]

सारङ्गिका—जअदु जअदु भट्टा । देव ! देवी विण्णवेदि—'अज्ज चतुत्थदिअहे भविस्सवडसाइत्तीमहूसवोवकरणाइं केलि-विमाणप्पसादमारुहिअ पेक्खिदव्वाइं' त्ति । (जयतु जयतु भर्ता ! देव ! देवी विज्ञापयति—'अद्य चतुर्थदिवसे भाविवटसावित्रीमहोत्स-वोपकरणानि केलिविमानप्रासादमारुह्य प्रेक्षितव्यानि' इति ।)

राजा—जं देवी आणवेदि । (यत् देवी आज्ञापयति ।)

[चेटी निष्क्रान्ता । उभौ प्रासादाधिरोहणं नाटयतः]

[ततः प्रविशति चर्चरी]

विदूषकः—

मोत्ताहलिल्लाहरणुच्चआओ लास्सावसाणे चलिअंसुआओ ।
सिंचंति अण्णोण्णमिमीअ पेक्ख जंताजलेहिं मणिभाजणेहिं ॥१०॥

(मुक्ताफलाभरणोच्चया लास्यावसाने चलितांशुकाः ।

अन्वयः—मुक्ताफलाभरणोच्चयाः चलितांशुकाः इमाः लास्यावसाने यन्त्रजलैः मणिभाजनैः अन्योऽन्यम् सिञ्चन्ति, पश्य ।

(तब सारंगिका आती है)

सारंगिका—महाराज की जय हो । महाराज ! महारानी कहती हैं कि आज चौथे दिन होने वाले वटसावित्री के महोत्सव की शोभा को महाराज केलिविमानप्रासाद पर चढ़ कर देखें ।

राजा—जो महारानी की आज्ञा ।

(चेटी बाहर जाती है । दोनों महल पर चढ़ने का अभिनय करते हैं)

(तब चर्चरी-नर्तकियां आती हैं)

विदूषक—मोतियों के आभूषण धारण किए हुए तथा जिनके वस्त्र हवा में उड़

टिप्पणी—चर्चरी = एक प्रकार का गाना गाने और नाचने वालों की मण्डली ।

टिप्पणी—मुक्ताफलानि आभरणोच्चयाः यासां ताः मुक्ताफलाभरणोच्चयाः = मौक्तिक-



सिञ्चन्त्यन्योऽन्यमिमाः पश्य यन्त्रजलैर्मणिभाजनैः ॥ १० ॥)

इदो अ (इतश्च)—

परिब्भमन्तीअ विचित्तवन्धं इमाइ दोसोलह णच्चणीओ ।

खेलन्ति तालाणुगदपदाओ तुहांगणे दीसइ दण्डरासो ॥ ११ ॥

(परिभ्रमन्त्यो विचित्रबन्धमिमा द्विषोडश नर्त्तक्यः ।

खेलन्ति तालानुगतपदास्तवाङ्गने दृश्यते दण्डरासः ॥११॥)

सरलार्थः—मौक्तिकहारादिभिः विभूषिताः, प्रचलद्वसनाः इमाः नट्यः नृत्यसमाप्तौ यन्त्रनिर्गतजलैः मणिमयपात्रैः परस्परं सिञ्चन्ति, त्वं पश्येदं दृश्यमिति भावः ॥ १० ॥

अन्वयः—इमाः द्विषोडश नर्तक्यः विचित्रबन्धम् परिभ्रमन्त्यः तालानुगत-पदाः खेलन्ति, तव अङ्गने दण्डरासः दृश्यते ।

सरलार्थः—इमाः द्वात्रिंशत् नर्तक्यः विचित्रेण बन्धेन चरणविक्षेपं तालानुकूलं च कृत्वा परिभ्रमन्ति । अतः तव चत्वरे दण्डकारेण स्थित्वा शृङ्खलाबन्धवत् क्रीडन-विशेषः दृश्यते ॥ ११ ॥

रहे हैं ऐसी ये नर्तकियाँ नृत्य समाप्त होने पर यन्त्र से निकले जल से युक्त माणिक्य पात्रों से एक दूसरे को भिगो रही हैं ॥ १० ॥

इधर सो :—

ये बत्तीस नर्तकियाँ विचित्र बन्ध बना कर घूम रही हैं, इनके पैर भी ताल के मुताबिक पड़ रहे हैं । इसलिए तुम्हारे आंगन में दण्डरास सा दिखलाई पड़ रहा है ॥ ११ ॥

हारादिभिरलंकृताः । मोतियों के आभूषणों से सजी हुई । उच्चयः = सञ्चय । लास्यम् = कोमलनृत्यम् । चलितानि अंशुकानि यासां ताः = चलितांशुकाः = उड़ते हुए वस्त्रों वाली । मणिभाजनैः = मणियों के बर्तनों से । सिञ्चन्ति = भिगोती हैं, √सिच् क्षरणे-(तुदादि लट् लकार-प्रथम पु० बहुव०) ॥ १० ॥

टिप्पणी—द्विषोडश्यः = द्वात्रिंशत्-बत्तीस। तालेन अनुगतः पदः यासां ताः = तालानु-गतपदाः = लयानुकूलचरणविक्षेपाः-ताल के अनुकूल जिनके पैर पड़ते हैं । दण्डरासः = दण्डाकारेण स्थित्वा शृंखलाबन्धवत् क्रीडनविशेषः-दण्ड के आकार से खड़े होकर शृंखला बन्ध की तरह खेल ॥ ११ ॥

समांससीस्सा समबाहुहत्था रेहाविसुद्धा अपरा अ देंति ।
पंतीहिं दोहिं लअतालबंधं परप्परं साहिमुहा हुवंति ॥ १२ ॥
(समांसशीर्षाः समबाहुहस्ता रेखाविशुद्धा अपराश्च ददति ।
पङ्क्तिभ्यां द्वाभ्यां लयतालबन्धं परस्परं साभिमुखा भवन्ति ॥१२॥)
मोत्तूण अण्णा मणिवारआइं जंतेहिं धारासलिलं खिवन्ति ।
पडंति ताओ अ पिआणअंगे मणोहुओ वारुणबाणकप्पा ॥१३॥
(मुक्त्वा अन्या मणिवारणानि यन्त्रैर्धारासलिलं क्षिपन्ति ।
पतन्ति ताश्च प्रियाणामङ्गे मनोभुवो वारुणबाणकल्पाः ॥ १२ ॥)

अन्वयः—अपराः समांसशीर्षाः समबाहुहस्ताः रेखाविशुद्धाः द्वाभ्याम् पङ्क्तिभ्यां लयतालबन्धम् ददति, परस्परम् साभिमुखाः भवन्ति ।

सरलार्थः—अपराः नर्तक्यः स्कन्धौ शिरांसि च समानि कृत्वा, बाहू करावपि च समौ विधाय रेखामात्रमपि स्खलिताः न भूत्वा द्वाभ्यां पङ्क्तिभ्यां लयस्य तालस्य च बन्धम् ददति, परस्परं साम्मुख्येन तिष्ठन्ति च ॥ १२ ॥

अन्वयः—अन्याः मणिवारणानि मुक्त्वा यन्त्रैः धारासलिलं क्षिपन्ति । ताः च प्रियाणामङ्गे मनोभुवः वारुणबाणकल्पाः पतन्ति ।

सरलार्थः—अन्याः नर्तक्यः रत्नखचितकवचानि त्यक्त्वा यन्त्रैः धारासलिलं

कुछ नर्तकियाँ कन्धे और सिर बराबर किए हुए तथा भुजाएँ और हाथों को भी एक सी स्थिति में रखे हुए और जरा भी गलती न करते हुए दो पंक्तियों में लय और ताल के मेल के साथ चलती हैं और एक दूसरे के सामने आती हैं ॥१२॥

कुछ नर्तकियाँ रत्न जड़े हुए कवच उतार कर यन्त्रों से पानी की धारें

टिप्पणी—समम् अंसशीर्षम् यासां ताः = समांसशीर्षाः = तुल्यस्कन्धशिरसः = बराबर कन्धे और सिर वालीं । समम् बाहुहस्तम् यासां ताः समबाहुहस्ताः = तुल्यबाहुकराः । रेखया विशुद्धाः = रेखाविशुद्धाः = अणुमात्रमपि न स्खलिताः । रेखा तक का विचार करती हुई । लयस्य तालस्य च बन्धो यत्र तद् यथा तथा लयतालबन्धम् = लय और ताल के बन्ध के साथ ॥ १२ ॥

टिप्पणी—मणीनां वारणानि = मणिवारणानि = रत्नखचितकवचानि-रत्नों से जड़े हुए




इमा मसीकज्जलकालकाश्रा तिक्खच्छिचावा अ विलासिणीओ ।
पुलिंदरूवेण जणस्स हासं समोरपिच्छाहरणा कुणंति ॥ १४ ॥
(इमा मसीकज्जलश्यामकायास्तीक्ष्णाक्षिचापाश्च विलासिन्यः ।
पुलिन्दरूपेण जनस्य हासं समयूरपिच्छाभरणाः कुर्वन्ति ॥ १४ ॥)
हत्थे महामंसवलीधराश्रो हुंकारफेक्काररवा रउद्दा ।
णिसाअरीणं पडिसीस्सएहिं अण्णा स्ससाणाभिणअं कुणंति ॥

मुञ्चन्ति । ताः सलिलधाराश्च तासां कान्तानाम् अंगे कामदेवस्य वारुणास्त्रसदृशाः भूत्वा पतन्ति ॥ १२ ॥

अन्वयः—मसीकज्जलश्यामकायाः तीक्ष्णाक्षिचापाः समयूरपिच्छाभरणाः इमाः विलासिन्यः पुलिन्दरूपेण जनस्य हासं कुर्वन्ति ।

सरलार्थः—मसीवत् कज्जलवच्च श्यामशरीराः, चापमिव तीक्ष्णे नेत्रे धारयन्त्यः तथा मयूरपिच्छानामाभरणेन शोभिताः इमाः कामिन्यः व्याधरूपेण जनं हसयन्ति ॥ १४ ॥

छोड़ती हैं । पानी की वे धारें उनके प्रेमियों के शरीर पर कामदेव के वारुण बाण की तरह पड़ती हैं ॥ १२ ॥

स्याही और काजल की तरह कृष्ण शरीर वाली, धनुष की तरह तिरछी नजरें वाली और मोर के पंखों के आभूषणों से युक्त ये विलासिनी स्त्रियाँ शिकारी के रूप से लोगों को हंसाती हैं ॥ १४ ॥

कुछ स्त्रियाँ हाथ में नरमांस को ही उपहाररूप से धारण किए हुए और

कवच । मुक्त्वा=छोड़ कर- √मुच्+त्वा । वारुणवाणकल्पाः=वारुणास्त्रसदृशाः । मनोभुवः=कामदेव का ॥ १२ ॥

टिप्पणी—मसीवत् कज्जलवच्च श्यामाः कायाः यासां ताः = मसीकज्जलश्यामकायाः = कृष्णवर्णाः-स्याही और काजल की तरह काले शरीर वाली । तीक्ष्णे अक्षिणी चाप इव यासां ताः तीक्ष्णाक्षिचापाः = तीक्ष्णनेत्रकार्मुकाः-धनुष के समान तिरछे नेत्र वाली । मयूरपिच्छानाम् आभरणानि = मयूरपिच्छाभरणानि, तैः सहिताः = समयूरपिच्छाभरणाः = मयूरपिच्छविभूषिताः-मोर के पंखों से सजी हुई । पुलिन्दः = शिकारी ॥ १४ ॥

(अन्यो महामांसबलिधारिण्यो हुंकारफेत्काररवा रौद्राः ।
निशाचरीणां प्रतिशीर्षकैरन्याः श्मशानाभिनयं कुर्वन्ति ॥ १५ ॥)

कावि वादिदकरालहुडुक्का रम्ममद्दलरवेण मिअच्छी ।
भूलदाहिं परिवाडिचलाहिं चेडिकम्मकरणम्मि पउत्ता ॥ १६ ॥

(काऽपि वादितकरालहुडुक्का रम्यमर्दलरवेण मृगाक्षी ।
भ्रूलताभ्यां परिपाटीचलाभ्यां चेटीकर्मकरणे प्रवृत्ता ॥ १६ ॥)

सरलार्थः—अन्याः नार्यः हस्ते नरमांसमेव उपहाररूपेण धारयन्त्यः, हुंकाररूपेण च शृगालध्वनिं कुर्वन्त्यः अत एव भीषणाः रात्रौ राक्षसीनां प्रतिरूपैः श्मशानस्य प्रदर्शनव्यापारं कुर्वन्ति ॥ १५ ॥

अन्वयः—काऽपि मृगाक्षी रम्यमर्दलरवेण वादितकरालहुडुक्का परिपाटीचलाभ्याम् भ्रूलताभ्याम् चेटीकर्मकरणे प्रवृत्ता ।

सरलार्थः—कापि मृगनयनी नर्तकी मधुरेण मर्दलाख्यवादित्रस्य शब्देन द्वारविष्कम्भं भीषणं वादयन्ती परिपाटी चलाभ्याम् भ्रूलताभ्यां सहचरीणां कर्मकरणे प्रवृत्ता दृश्यते ॥ १६ ॥

हुंकाररूप से सियारों का सा शब्द करती हुई तथा रौद्ररूप बना कर राक्षसियों के चेहरे लगा कर श्मशान का अभिनय करती हैं ॥ १५ ॥

कोई हरिणी जैसे नेत्रों वाली नर्तकी मर्दल बाजे के मधुर शब्द से द्वारविष्कम्भ को जोर-जोर से बजाती हुई अपनी चञ्चल भौंहों से चेटीकर्म करने में लगी हुई है ॥

टिप्पणी—महामांसमेव बलिं धारयन्तीति महामांसबलिधारिण्यः = नरमांसोपहारयुक्ताः-मनुष्य के मांस को ही उपहाररूप में लिए हुए । हुंकारा: एव फेत्काररवाः यासां ताः हुंकारफेत्काररवाः = हुंकारशृगालध्वनियुक्ताः । प्रतिशीर्षकम् = चेहरा ॥ १५ ॥

टिप्पणी—मृगस्य इव अक्षिणी यस्याः सा मृगाक्षी = हरिणनयना । मर्दलः = एक प्रकार का ढोल । वादितं करालं हुडुक्कम् यया सा वादितकरालहुडुक्का = नादितभीषणद्वारविष्कम्भा = गुंजा दिया है भीषणरूप से द्वार विष्कम्भ को जिसने । हुडुक्कम् = एक प्रकार का बाजा ॥ १६ ॥



किंकिणीकिदरणज्झणसद्दा कंठगीदलअजंतिदताला ।
जोगिणीवलअणच्चणकेलिं तालणेउररवं विरअंति ॥ १७ ॥

(किङ्किणीकृतरणज्झणशब्दाः कण्ठगीतलययन्त्रितताला: ।
योगिनीवलयनर्त्तनकेलिं तालनूपुररवं विरचयन्ति ॥ १७ ॥)

कोदुहलवसचंचलवेसा वेणुवादणपरा अवराओ ।
कालवेसवसहासिदलोआ ओसरंति पणमंति हसंति ॥ १८ ॥

(कौतूहलवशचञ्चलवेषा वेणुवादनपरा अपराः ।
कालवेशवपहासितलोका अपसरन्ति प्रणमन्ति हसन्ति ॥ १८ ॥)

सरलार्थः—काश्चन स्त्रियः किङ्किणीभिः रणज्झणशब्दं कुर्वन्त्यः, कण्ठेषु गीतस्य लयेन तालं च नियमयन्त्यः परिव्राजिकानां वलयरूपेण नृत्यन्त्यश्च तालपूर्वकं नूपुराणां रवं कुर्वन्त्यः विचरन्ति ॥ १७ ॥

सरलार्थः—काश्चन कामिन्यः कौतूहलस्य वशेन चञ्चलं वेशं विधाय, वेणुवादने च तत्पराः भूत्वा, मलिनवेशेन जनान् हसयन्त्यः अपसरन्ति प्रणयन्ति हसन्ति च ॥ १८ ॥

कुछ स्त्रियाँ क्षुद्रघण्टिकाओं से रणज्झण शब्द करती हुई, अपने कण्ठों के गीत के लय से ताल को जमाती हुई, परिव्राजिकाओं के वलय को बना कर नाचती हुई ताल से अपने नूपुरों को बजाती हैं ॥ १७ ॥

कुछ स्त्रियाँ कुतूहलवश चंचल वेश बना कर, वीणा बजाती हुई और मलिन वेश से लोगों को हंसाती हुई पीछे हटती हैं, प्रणाम करती हैं और हंसती हैं ॥ १८ ॥

टिप्पणी—किङ्किणीभिः कृतः रणज्झणशब्दः याभिः ताः = किंकिणीकृतरणज्झण-शब्दाः = क्षुद्रघण्टिकाकृतरणज्झणशब्दाः । कण्ठेषु गीतस्य लयेन यन्त्रितः तालः याभिः ताः = कण्ठगीतलययन्त्रितताला: = कण्ठगीतलयनियमितताला: । योगिनीनां वलयेन यत् नर्तनम् तदेव केलिः क्रीडा तम् = योगिनीवलयनर्तनकेलिम् = परिव्राजिकावलयनर्तन-क्रीडाम् ॥ १७ ॥

टिप्पणी—कौतूहलस्य वशेन चञ्चलः वेशः यासां ताः = कौतूहलवशचञ्चलवेशाः । वेणोः—वादने पराः = वेणुवादनपराः = वंशीवादनतत्पराः । कालवेशस्य वशेन हासिताः लोकाः याभिः ताः = कालवेशवशहासितलोकाः = मलिनवेशवशहासितजनाः ॥ १८ ॥

[प्रविश्य]

सारङ्गिका—[पुरोऽवलोक्य] एसो महाराश्रो उणो मरगअकुंजं जेव्व गदो, कदलीघरं अ अणुप्पइट्ठो; ता अग्गदो गदुअ देवीविण्णविअं विण्णवेमि। [उपसृत्य] जअदु जअदु देवो। देवी एदं विण्णवेदि जधा 'संझासमए जूअं मए परिणेदव्वा'। (एष महाराजः पुनर्मरकतकुञ्जमेव गतः, कदलीगृहञ्च अनुप्रविष्टः; तदग्रतो गत्वा देवीविज्ञापितं विज्ञापयामि। (उपसृत्य) जयतु जयतु देवः। देवी इदं विज्ञापयति यथा 'सन्ध्यासमये यूयं मया परिणेतव्याः')

विदूषकः—भो! किं एदं अकालक्कोहंडपडणं?। (भोः! किमेतदकालकूष्माण्डपतनम्?)

राजा—सारंगिए! सव्वं वित्थरेण कधेहि। (सारङ्गिके! सर्वं विस्तरेण कथय)

(रंगमञ्च पर आकर)

सारंगिका—(सामने देखकर) महाराज तो मरकत कुञ्ज में चले गए। कदलीगृह में भी घुस गए। इसलिए आगे बढ़ कर महारानी का संदेश कहूँगी। (पास जाकर) महाराज की जय हो। महारानी कहती हैं कि आज शाम को मैं तुम्हारा विवाह कराऊँगी।

विदूषक—अरे! कुसमय में ही यह कूष्माण्ड कैसे गिर पड़ा?

राजा—सारंगिके! सब विस्तार से कहो।

टिप्पणी—अवलोक्य=देखकर-अव √लोकि+य-ल्यबन्त-इकार का लोप। परिणेतव्याः=विवाह किया जाना चाहिए।

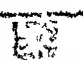
टिप्पणी—अकाले कूष्माण्डस्य पतनम्=अकालकूष्माण्डपतनम्=कुसमय पर कोई अप्रासंगिक बात होना।



सारङ्गिका—एदं विण्णवीअदि, अणंतरातिक्कंतचउद्दसीदिअहे देवीए पोम्मराअमणिमई गोरी कदुअ भैरवाणंदेण प्पडिट्ठाविदा, सअं अ दिक्खा गहिदा। तदो ताए विण्णत्तो जोगीस्सरो गुरुदक्खिणाणिमित्तं। भणिदं अ तेण, जइ अवस्सं गुरुदक्खिणा दादव्वा, ता एसा दीअदु महाराअस्स। तदो देवीए विण्णत्तं, जं आदिसदि भअवं। उणो वि उल्लविदं तेण, अत्थि एत्थ लाटदेसे चंडसेणो णाम राजा, तस्स दुहिदा घणसारमंजरी णाम, सा देवण्णेहिं आदिट्ठा, एसा चक्कवट्टिघरिणी भविस्सदि त्ति; तदो महाराअस्स परिणेदव्वा, तेण गुरुदक्खिणा दिण्णा भोदि, भट्टा वि चक्कवट्टी किदो भोदि। तदो देवीए विहसिअ भणिअं, जं आदिसदि भअवं। अहं च विण्णविदुं पेसिदा गुरुस्स गुरुदक्खिणाणिमित्तं। (इदं विज्ञाप्यते, अनन्तरातिक्रान्ताचतुर्दशीदिवसे देव्या पद्मरागमणिमयी गौरी कृत्वा भैरवानन्देन प्रतिष्ठापिता, स्वयञ्च दीक्षा गृहीता। ततस्तया विज्ञप्तो योगीश्वरो गुरुदक्षिणानिमित्तम्। भणितञ्च तेन, यद्यवश्यं गुरुदक्षिणा दातव्या, तदेषा दीयतां महाराजस्य। ततो देव्या विज्ञप्तं, यदादिशति भगवान्। पुनरपि उल्लपितं तेन, अस्ति अत्र लाटदेशे चण्डसेनो नाम राजा, तस्य

सारंगिका—ऐसा कहा जाता है कि पिछली चतुर्दशी के दिन महारानी ने पद्मरागमणि की गौरी की प्रतिमा बनवा कर भैरवानन्द से उसकी प्राणप्रतिष्ठा करवाई और भैरवानन्द को गुरु बना कर उनसे इष्टमन्त्र ग्रहण किया। फिर महारानी ने उनसे गुरुदक्षिणा लेने के लिए कहा। भैरवानन्द ने कहा कि अगर गुरुदक्षिणा

टिप्पणी—अनन्तरम् अतिक्रान्ता = अनन्तरातिक्रान्ता-सा चासौ या चतुर्दशी तद्दिवसे = अनन्तरातिक्रान्तचतुर्दशीदिवसे = अव्यवहितविगतचतुर्दशीदिने। पद्मरागमणिभिः निर्मिता = पद्मरागमणिमयी। प्रतिष्ठापिता = मूर्तौ प्राणप्रतिष्ठा कारिता। उल्लपितम् =



दुहिता घनसारमञ्जरी नाम, सा दैवज्ञैरादिष्टा, एषा चक्रवर्त्तिगृहिणी भविष्यतीति; ततो महाराजेन परिणेतव्या, तेन गुरुदक्षिणा दत्ता भवति, भर्त्ताऽपि चक्रवर्त्ती कृतो भवति। ततो देव्या विहस्य भणितं, यत् आदिशति भगवान्। अहञ्च विज्ञापयितुं प्रेपिता गुरोर्गुरुदक्षिणा-निमित्तम्।)

विदूषकः—[विहस्य] एदं तं संविधाणअं सीस्से सप्पो, देसंतरे वेज्जो। इह अज्ज विवाहो, लाटदेसे घणसारमंजरी। (एतत्तत् संविधानकं शीर्षे सर्पः, देशान्तरे वैद्यः। इहाद्य विवाहो, लाटदेशे घनसारमञ्जरी।)

राजा—किं ते भैरवाणंदस्स प्पहाओ ण प्पच्चक्खो ?। [तां प्रति] कहिं संपदं भैरवाणंदो ? (किन्ते भैरवानन्दस्य प्रभावो न प्रत्यक्षः ?। [तां प्रति] कुत्र साम्प्रतं भैरवानन्दः ?)

देना ही चाहती हो तो यह महाराज के लिए दो। तब महारानी ने कहा—जो आपकी आज्ञा। फिर भैरवानन्द ने कहा—लाटदेश में चण्डसेन नाम का राजा है, उसकी घनसारमंजरी नाम की पुत्री है। उसके संबन्ध में ज्योतिषियों ने कहा है कि यह चक्रवर्ती राजा की रानी बनेगी। इसलिए महाराज से इसका विवाह कर देना चाहिए। यही गुरुदक्षिणा पर्याप्त होगी, महाराज भी तुम्हारे द्वारा चक्रवर्ती हो जायँगे। तब महारानी ने हँस कर कहा—जैसी आपकी आज्ञा और मुझे आपके पास गुरुदक्षिणा के निमित्त भेजा है।

विदूषक—(हँस कर) यह कैसा काम—सिर पर सांप, वैद्य दूसरे देश में। आज यहाँ विवाह और घनसारमञ्जरी लाटदेश में ?

राजा—क्या तुम्हें भैरवानन्द जी की शक्ति का पता नहीं है? (सारंगिका से) इस समय भैरवानन्द कहाँ हैं ?

उक्तम्—कहा। लाटदेशः=नर्मदा के पश्चिम का देश, इसमें सम्भवतः भड़ौंच, बरौदा, अहमदाबाद और खैरा भी प्रायः शामिल थे।





सारङ्गिका—देवीकारिदप्पमदुज्जाणस्स मज्झट्ठिदवडतरुमूले चामुंडाअदणे भैरवाणंदो देवी अ आअमिस्सदि; ता अज्ज दक्खिणाविहिदो कोदुहलवरो विवाहो; ता इह ज्जेव्व देवेण ठादव्वं। (देवीकारितप्रमदोद्यानस्य मध्यस्थितवटतरुमूले चामुण्डायतने भैरवानन्दो देवी च आगमिष्यति; तदद्य दक्षिणाविहितः कौतूहलपरो विवाहः; तदिहैव देवेन स्थातव्यम्)

[इति परिक्रम्य निष्क्रान्ता]

राजा—वअस्स ! सव्वं एदं भैरवाणंदस्स विजिंभिदं त्ति तक्केमि। (वयस्य ! सर्वमेतत् भैरवानन्दस्य विजृम्भितमिति तर्कयामि)

विदूषकः—एव्वं णेदं। ण क्खु मिअलंछणमंतरेण अण्णो मिअंकमणिपुत्तलिअं प्पस्सेदअदि। ण क्खु सरअसमीरमंतरेण सेफालिआकुसुमकरं विकासेदि। (एवमेतत्। न खलु मृगलाञ्छनमन्तरेण अन्यो मृगाङ्कमणिपुत्तलीं प्रस्वेदयति। न खलु शरत्समीरम-

---

सारंगिका—महारानी के द्वारा बनवाए हुए प्रमदोद्यान के मध्य में स्थित वटवृक्ष के नीचे चामुण्डा देवी के मन्दिर में भैरवानन्द और महारानी आयेंगी। आज दक्षिणा में कुतूहल से विवाह किया जायगा, महाराज यहाँ ठहरें।

(इस तरह घूमकर चली जाती है)

राजा—मित्र ! यह सब भैरवानन्द का काम है ऐसा सोचता हूँ।

विदूषक—ऐसा ही है। चन्द्रमा के अतिरिक्त और कौन चन्द्रकान्तमणि की

टिप्पणी—चामुण्डायाः आयतने = चामुण्डायतने = चामुण्डामन्दिरे। √स्था + तव्य = स्थातव्यम् = ठहरना चाहिए।

टिप्पणी—विजृम्भितम् = विलसितम्-करिश्मा। तर्कयामि = स्मरण करता हूँ।

टिप्पणी—मृगलाञ्छनमन्तरेण = चन्द्रमा के बिना-अन्तरेण के योग में द्वितीया

न्तरेण शेफालिकाकुसुमोत्करं विकासयति)

[ततः प्रविशति भैरवानन्दः]

भैरवानन्दः—इअं सा वडतरुमूले णिब्भिण्णस्स सुरंगादुआरस्स पिहाणं चामुंडा। (इयं सा वटतरुमूले निर्भिन्नस्य सुरङ्गाद्वारस्य पिधानं चामुण्डा) [हस्तेन प्रणम्य पठति]—

कप्पंतकेलिभवणे कालस्स पुराणरुहिरसुरम्।
जअदि पिअंती चंडी परमेट्ठिकवालचसएण ॥ १९ ॥
(कल्पान्तकेलिभवने कालस्य पुराणरुधिरसुराम्।
जयति पिबन्ती चण्डी परमेष्ठिकपालचषकेण ॥ १९ ॥)

अन्वयः—कालस्य कल्पान्तकेलिभवने चण्डी परमेष्ठिकपालचषकेण पुराणरुधिरसुराम् पिबन्ती जयति।

सरलार्थः—महाकालरूपिणो रुद्रस्य संहारकालरूपिणि केलिभवने ब्रह्मणः कपालरूपेण पात्रेण पूर्वतनप्राणिनां रुधिररूपं मद्यं पिबन्ती चण्डी सर्वोत्कर्षेण वर्तते।

पुतली को पिघला सकता है? शरद् ऋतु की शेफालिका के फूलों को पवन के अतिरिक्त और कौन खिला सकता है?

(तब भैरवानन्द रंगमञ्चपर आता है)

भैरवानन्द—वटवृक्ष के नीचे खुले हुए सुरंगाद्वार पर यह चामुण्डा देवी विराजमान है।

(हाथ से प्रणाम कर पढ़ता है)

महाकालरूपी रुद्र के प्रलयकालरूपी क्रीडामन्दिर में ब्रह्मा के कपालरूपी प्याले से प्राणियों के रुधिररूपी मद्य को पीती हुई चण्डी की जय हो ॥ १९ ॥

विभक्ति। प्रस्वेदयति=आर्द्रयति-पिघलाता है। प्र+√स्वेदि (ण्यन्त) से लट् लकार। शेफालिकाकुसुमानामुत्करम्=शेफालिकाकुसुमोत्करम्, काली नेवारी के फूलों के समूह को।

१. पिधानम्=आच्छादनम्-ढकना।

टिप्पणी—कल्पान्तः एव केलिभवनम्, तस्मिन्=कल्पान्तकेलिभवने=संहारकालक्रीडामन्दिरे। परमेष्ठिनः कपालः एव चषकस्तेन=परमेष्ठिकपालचषकेण=ब्रह्मकपालरूप-



[उपविश्य]—अज्जवि ण णिग्गच्छदि सुरंगादुआरेण कप्पूरमंजरी। (अद्यापि न निर्गच्छति सुरङ्गाद्वारेण कर्पूरमञ्जरी)

[ततः प्रविशति सुरङ्गोद्घाटितकेन कर्पूरमञ्जरी]

कर्पूरमञ्जरी—भअवं ! प्पणमिज्जसि। (भगवन् प्रणम्यसे)

भैरवानन्दः—उइदं वरं लहेसु। इह ज्जेब्ब उबबिससु। (उचितं वरं लभस्व। इहैव उपविश)

[कर्पूरमञ्जरी तथा करोति]

भैरवानन्दः—[स्वगतम्] अज्ज बि ण आअच्छदि देवी। (अद्यापि नागच्छति देवी)

[प्रविश्य]

राज्ञी—[परिक्रम्य अवलोक्य च] इअं भअवदी चामुंडा। [प्रणम्य अवलोक्य च] अए ! इअं कप्पूरमंजरी !! ता किं णेदं ?। [भैरवानन्दं प्रति] इदं बिण्णबी अदि, णिअभवणे कदुअ बिबाहसामग्गिं आअद्म्हि, तदो तं गेण्हिअ आअमिस्सं।

(बैठकर) कर्पूरमंजरी सुरंग के द्वार से अभी तक नहीं निकली।

(तब सुरंग के द्वार से कर्पूरमंजरी निकलती है)

कर्पूरमंजरी—भगवन् ! प्रणाम करती हूँ।

भैरवानन्द—उचित वर पाओ। यहाँ ही बैठो।

(कर्पूरमञ्जरी ऐसा ही करती है)

भैरवानन्द—(अपने मन में) अब भी महारानी नहीं आ रही हैं।

(प्रवेश कर)

राज्ञी—(घूम कर और देख कर) यह भगवती चामुण्डा है (प्रणाम कर और

पानपात्रेण। पुराणरुधिरसुराम्=पूर्वतनप्राणिनां शोणितरूपमद्यम्। पिबन्ती=पीती हुई-√पा+पिब्+अ+अन्ती-शत्रन्त-स्त्रीलिंग।

(इयं भगवती चामुण्डा । (प्रणम्य अवलोक्य च) अये ! इयं कर्पूरमञ्जरी !! तत् किमिदम् ? (भैरवानन्दं प्रति) इदं विज्ञाप्यते, निजभवने कृत्वा विवाहसामग्रीम् आगताऽस्मि, ततस्तां गृहीत्वा आगमिष्यामि)

भैरवानन्दः—वच्छे ! एव्वं करीअदु । (वत्से ! एवं क्रियताम्)

[राज्ञी व्यावृत्य परिक्रामति]

भैरवानन्दः—[विहस्य स्वगतम्] इअं कप्पूरमंजरीठाणं अण्णेसिदुं गदा । [प्रकाशम्] पुत्ति कप्पूरमंजरि ! सुरंगादुआरेण ज्जेव्व तुरिदपदं गदुअ सट्ठाणे चिट्ठ, देवीआअमणे उणो आअंतव्वं । (इयं कर्पूरमञ्जरीस्थानमन्वेष्टुं गता । (प्रकाशम्) पुत्रि कर्पूरमञ्जरि ! सुरङ्गाद्वारेणैव त्वरितपदं गत्वा स्वस्थाने तिष्ठ, देव्यागमने पुनरागन्तव्यम्)

[कर्पूरमञ्जरी तथा करोति]

देवी—एदं रक्खागेहम् । [प्रविश्यावलोक्य च] अए !

देख कर) अरे यह कर्पूरमञ्जरी है। यह क्या बात है। (भैरवानन्द से) अपने यहाँ विवाह सामग्री तैयार कर आई हूँ, अब उसको लेकर आती हूँ।

भैरवानन्द—वत्से ऐसा करो।

(महारानी दूर जाकर घूमती है)

भैरवानन्द—(हँस कर, अपने आप) यह कर्पूरमंजरी को ढूंढने गई। (प्रकाश में) पुत्री कर्पूरमंजरी ! सुरंग के दरवाजे से शीघ्र ही जाकर अपने स्थान पर ठहरो, महारानी के आने पर फिर आ जाना।

(कर्पूरमंजरी ऐसा ही करती है)

देवी—यह रक्षाघर है। (घुसकर और देखकर) अरे यह कर्पूरमञ्जरी है।



इअं कप्पूरमंजरी !! सा का वि सरिच्छा मए दिट्ठा ! वच्छे कप्पूरमंजरि ! कीरिसं दे सरीरम् ? । [आकाशे] किं भणसि, मह सरीरे वेअणा ? [स्वगतम्] ता उणो तहिं गमिस्सं । [प्रविश्य पार्श्वतोऽवलोक्य च] हला सहीओ ! विवाहोवकरणाइं लहुगेण्हिअ आअच्छथ । (इदं रक्षागृहम् । (प्रविश्यावलोक्य च अये ! इयं कर्पूरमञ्जरी !! सा काऽपि सदृशी मया दृष्टा । वत्से कर्पूरमञ्जरि ! कीदृशं ते शरीरम् ? (आकाशे) किं भणसि, मम शरीरे वेदना ? । (स्वगतम्) तत् पुनस्तत्र गमिष्यामि । (प्रविश्य पार्श्वतोऽवलोक्य च) हला सख्यः ! विवाहोपकरणानि लघु गृहीत्वा आगच्छत)

[इति परिक्रामति]

[प्रविश्य कर्पूरमञ्जरी तथैवास्ते]

राज्ञी—[पुरोऽवलोक्य] इअं कप्पूरमंजरी !! (इयं कर्पूरमञ्जरी !!)

उससे कुछ सदृश तो मैंने देखी अभी देखी थी । वत्से कर्पूरमञ्जरि ! तुम्हारा शरीर कैसा है । (आकाश में) क्या कहती है—मेरे शरीर में दर्द है । (अपने मन में) फिर वहां जाऊँगी । (घुसकर और एक तरफ देखकर) अरे सहेलियो ! विवाह का सामान लेकर शीघ्र आओ ?

(घूमती है)

(कर्पूरमञ्जरी आती है और वैसे ही बैठती है)

राज्ञी—(सामने देखकर) यह कर्पूरमञ्जरी है ।

टिप्पणी—आकाशे—बिना किसी और पात्र के रंगमंच पर बात करना, न कही हुई बात को भी सुना हुआ समझ कर बोलना आकाशभाषित कहलाता है-किं ब्रवीष्येवमित्यादि विना पात्रं ब्रवीति यत् । श्रुत्वेवानुक्तमपि चेत्तत्स्यादाकाशभाषितम् ॥ विवाहोपकरणानि = विवाह का सामान ।

भैरवानन्दः—वच्छे ! विब्भमलेहाए आणीदाइं विवाहोव-अरणाइं ? (वत्से ! विभ्रमलेखया आनीतानि विवाहोपकरणानि ?)

देवी—आणीदाइं । किं उण घणसारमंजरीसमुचिदाइं आहरणाइं विसुमरिदाइं । ता उणो गमिस्सं । (आनीतानि । किं पुनर्घनसारमञ्जरीसमुचितानि आभरणानि विस्मृतानि । तत्पुनर्गमिष्यामि)

भैरवानन्दः—एव्वं करीअदु । (एवं क्रियताम्)

[देवी नाटितकेन निष्क्रामति]

भैरवानन्दः—पुत्ति कप्पूरमंजरि ! तह ज्जेव्व करीअदु । (पुत्रि कर्पूरमञ्जरि ! तथैव क्रियताम्)

[कर्पूरमञ्जरी निष्क्रान्ता]

राज्ञी—[रक्षागृहं प्रविश्य,कर्पूरमञ्जरीं दृष्ट्वा] अए ! सारिच्छएण विडंबिदम्हि !! [स्वगतम्] झाणविमाणेण णिव्विग्घपरि-सप्पिणा तामाणेदि महाजोई । [प्रकाशम्] सहीओ ! जं जं णिवेदिदं, तं तं गेण्हिअ आअच्छध । (अये ! सादृश्येन विडम्बि-

---

भैरवानन्द—वत्से ! क्या चिभ्रमलेखा विवाह का सामान ले आई ?

देवी—विवाह का सामान आ गया। लेकिन घनसारमञ्जरी के लायक गहने भूल आई। इसलिए फिर जाऊँगी।

भैरवानन्द—ऐसा ही करो।

भैरवानन्द—पुत्रि कर्पूरमञ्जरी ! वैसा ही करो। (कर्पूरमञ्जरी निकल जाती है)

राज्ञी—(रक्षागृह में जाकर और कर्पूरमञ्जरी को देखकर) अरे। सादृश्य से

टिप्पणी—घनसारमञ्जर्याः समुचितानि घनसारमंजरीसमुचितानि = घनसारमंजरी के लायक।

१. निष्क्रामति = निकलती है। २. विडम्बिता = विप्रलब्धा-धोखा खाई हुई। निर्विघ्नम् परिसर्पति-तेन निर्विघ्नपरिसर्पिणा = निर्बाधगतिना।





ताऽस्मि !! (स्वगतम्) ध्यानविमानेन निर्विघ्नपरिसर्पिणा तामानयति महायोगी । (प्रकाशम्) सख्यः ! यत् यन्निवेदितं, तत्तत् गृहीत्वा आगच्छत)

[चामुण्डायतनप्रवेशनाट्यितकेन तामवलोक्य]

अहो सारिच्छअं । (अहो ! सादृश्यम्)

भैरवानन्द—देवि ! उववित । महाराओ वि आअदो ज्जेव्व वट्टदि । (देवि ! उपविश । महाराजोऽपि आगत एव वर्त्तते)

[ततः प्रविशति राजा विदूषकः सारङ्गिका च]

भैरवानन्दः—आसणं महाराअस्स । (आसनं महाराजस्य)

[सर्वे यथोचितमुपविशन्ति]

राजा—[नायिकां प्रति] एसा सरीरिणी मअरद्धअपारिद्धिआ, देहांतरेण संठ्ठिदा सिंगाररसलच्छीव ? दिअससंचारिणी पुण्णिमाचंदचंदिआ; अवि अ प्पगुणगुणमाणिक्कमंजूसा, रअणमई अंजणसलाआ, तधा अ एसा रअणकुसुमणिप्पण्णा महु-

---

तो मैं आश्चर्य में पड़ गई हूँ । (अपने मन में) विना रोक टोक के चलने वाले ध्यानरूपी विमान से महायोगी उसको लाया है । (प्रकाश में) सखियो ! जो जो मंगाया गया है, वह वह सामान लेकर आओ ।

(चामुण्डा देवी के मन्दिर में प्रवेश का अभिनय कर और कर्पूरमञ्जरी को देखकर) आश्चर्य है' कैसी समानता है ?

भैरवानन्द—देवी ! बैठो । महाराज भी आए हुए हैं ।

(तब राजा, विदूषक और सारङ्गिका रंगमञ्च पर आते हैं)

भैरवानन्द—महाराज के लिए आसन दो ।

(सब यथास्थान बैठते हैं)

राजा—(नायिका से) कामदेव की पताका को उठाने वाली यह साक्षात् श्रृङ्गार रस की शोभा की तरह देहान्तर से विराजमान है, दिल में चमकने वाली

लक्ष्मी। किं च—(एषा शरीरिणी मकरध्वजपारिध्वजिका, रूपान्तरेण संस्थिता शृङ्गाररसलहरीव, दिवससञ्चारिणी पूर्णिमाचन्द्रचन्द्रिका; अपि च प्रगुणगुणमाणिक्यमञ्जूषा, रत्नमयी अञ्जनशलाका, यथा सैषा रक्तकुसुमनिर्भरा मधुलक्ष्मीः। किञ्च—)

भुअणजअपडाआ रूअसोहा इमीए
जह जह णअणाणं गोअरे जस्स जादि ।
वसइ मअरकेदू तस्स चित्ते विचित्तो
वलइदधणुदंडो पुंखिदेहिं सरेहिं ॥ २० ॥

(भुवनजयपताका रूपशोभाऽस्या
यथा यथा नयनयोर्गोचरं यस्य याति ।
वसति मकरकेतुस्तस्य चित्ते विचित्रो
वलयितधनुर्दण्डः पुङ्खितैः शरैः ॥ २० ॥)

अन्वयः—अस्याः भुवनजयपताका रूपशोभा यस्य यथा यथा नयनयोः गोचरं याति, तस्य चित्ते विचित्रः मकरकेतुः पुङ्खितैः शरैः वलयितधनुर्दण्डः वसति ।

सरलार्थः—कामस्य सन्दीपिनी अस्याः सौन्दर्यश्रीः येन विलोक्यते, तस्य चित्तम् सज्जीकृतधनुषा कामदेवेन व्यथितम् सञ्जायते ॥ २० ॥

पूर्णिमा के चन्द्र की चांदनी है, उच्चकोटि के रत्नों की मञ्जूषा जैसी है, रत्नों से बनी हुई अञ्जन लगाने की सलाई जैसी है तथा रक्तकुसुमों से युक्त वसन्तशोभा सी साक्षात् प्रतीत होती है। और क्याः—

कामदेव की पताका के समान इसकी सुन्दरता जिसकी आंखों में समा जाती है, उसके चित्त में अद्भुत कामदेव बाण चढ़े हुए टेढ़े धनुष के साथ वास करने लगता है ॥ २० ॥

टिप्पणी—मकरध्वजस्य पारिध्वजिका = मकरध्वजपारिध्वजिका = कामदेवपताकावाहिनी, कामदेव की पताका को उठाने वाली अर्थात् काम को उद्दीप्त करने वाली । दिवसे सञ्चारिणी = दिवससंचारिणी = दिन में चमकने वाली । पूर्णिमायाः चन्द्रस्य चन्द्रिका = पूर्णिमाचन्द्रचन्द्रिका = पूर्णिमाचन्द्रज्योत्स्ना । प्रगुणाः गुणाः यस्याः सा प्रगुणगुणा, सा चासौ

विदूषकः—[जनान्तिकम्] सच्चं किदं तुए आभाणकं । तडं गदाए वि णौकाए ण विससीदव्वं; ता तुण्हीं चिट्ठ । (सत्यं कृतं त्वया आभाणकम् । तटं गताया अपि नौकाया न विश्वसितव्यम्; तत्तूष्णीं तिष्ठ)

राज्ञी—[कुरङ्गिकां प्रति] तुमं महाराअस्स णेवच्छं कुरु । सारंगिआ घणसारमंजरीए करेदु । (त्वं महाराजस्य नेपथ्यं कुरु । सारङ्गिका घनसारमञ्जर्याः करोतु)

[इत्युभे उभयोर्विवाहनेपथ्यकरणं नाटयतः]

भैरवानन्दः—उवज्झाओ हक्कारीअदु । (उपाध्याय आकार्यताम्[1])

विदूषक—(जनान्तिक में) तुम्हारा मनोरथ सफल हो गया। किनारे पर पहुँची हुई भी नाव का विश्वास नहीं करना चाहिए, इसलिए चुप ही रहो।

राज्ञी—(कुरंगिका से) तू महाराज के वस्त्र सजा। सारंगिका घनसारमञ्जरी के वस्त्र तैयार करती है।

(दोनों विवाह के वस्त्र तैयार करने का अभिनय करती हैं)

भैरवानन्द—पुरोहित को बुलाओ ?

माणिक्यमञ्जूषा = प्रगुणगुणमाणिक्यमञ्जूषा=मणिक्यपेटिका। अञ्जनशलाका=अञ्जन लगाने की सलाई। मधुनः लक्ष्मीः = मधुलक्ष्मीः = वसन्तशोभा।

टिप्पणी—(पृ. १८४ की) मकरः केतौ यस्य सः मकरकेतुः =कामदेवः। वलयितः धनुर्दण्डः येन सः = वलयितधनुर्दण्डः = मण्डलितकार्मुकयष्टिः। पुंखितैः = सहितैः, चढ़ाये हुये। भुवनजयस्यपताका = भुवनजयपताका =कामदेवपताका ॥ २० ॥

टिप्पणी—आभाणकम् =मनोरथः। विश्वसितव्यम् = विश्वास करना चाहिये। तूष्णीम् =चुपचाप।

१. आकार्यताम् =बुलाया जाना चाहिए। आ √कारि + य + ताम् (कर्मवाच्य-लोट्लकार प्रथमपु० एकव०)।

राणी—अज्जउत्त ! एसो उवज्झाओ अज्जकविंजलओ चिट्ठदि; ता करेदु अग्गाआरिअं। (आर्यपुत्र ! एष उपाध्याय आर्यकपिञ्जलस्तिष्ठति; तत् करोतु अग्रयाचार्यकम्[1])

विदूषकः—एस सज्जोम्हि[2]। भो वअस्स ! उत्तरीए गंठिं दाइस्सं, दाव हत्थेण हत्थं गेण्ह कप्पूरमंजरीए। (एष सज्जोऽस्मि। भो वयस्य ! उत्तरीये[3] ग्रन्थिं दास्यामि, तावद्धस्तेन हस्तं गृहाण कर्पूरमञ्जर्याः)

राणी—[सचमत्कारम्] कुदो कप्पूरमंजरी !। (कुतः कर्पूरमञ्जरी ?)

भैरवानन्दः—[तं तस्या भावमुपलभ्य विदूषकं प्रति] तुमं सुट्ठुतरं भुल्लोसि, जदो कप्पूरमंजरीए घणसारमंजरीत्ति णामांतरं जाणासि। (त्वं सुष्ठुतरं भ्रान्तोऽसि, यतः कर्पूरमञ्जर्या घनसारमञ्जरीति नामान्तरं जानासि)

राणी—आर्यपुत्र ! यह आर्य कपिंजल खड़े हुए हैं, आइए, पुरोहित का कार्य कीजिए।

विदूषक—मैं तैयार हूँ। प्रिय मित्र ! दुपट्टे में गांठ लगाता हूँ, तब तक अपने हाथ से कर्पूरमञ्जरी का हाथ पकड़ो।

राणी—(चौंककर) कर्पूरमञ्जरी कहाँ है।

भैरवानन्द—(रानी के उस भाव को जानकर विदूषक से) तुम तो भूल में हो, जो घनसारमञ्जरी को कर्पूरमञ्जरी का दूसरा नाम समझते हो।

---

१. अग्रे कृतः आचार्यः = अग्रयाचार्यः, स एव अग्रयाचार्यकः, तम् = अग्रयाचार्यकम् = पुरोहितम। २. सज्जः = तैयार। ३. उत्तरीय = दुपट्टा।



राजा—[करमादाय]—

जे कंटआ तिउसमुद्धफलाणं संति

जे केदईकुसुमगब्भदलावलीसु ।

फंसेण णूणमिह मज्झ सरीरअस्स ।

ते सुंदरीअ वहला पुलअंकुराओ ॥ २१ ॥

(ये कण्टकास्त्रपुपमुग्धफलानां सन्ति

ये केतकीकुसुमगर्भदलावलीषु ।

स्पर्शेन नूनमिह मम शरीरस्य

ते सुन्दर्या वहलाः पुलकाङ्कुराः ॥ २१ ॥)

विदूषकः—भो वअस्स ! भामरीओ दिज्जदु । हुदवहे लाजंजलीओ खिवीअदु । (भो वयस्य ! भ्रामर्यो दीयन्ताम् । हुतवहे लाजाञ्जलयः क्षिप्यन्ताम्)

अन्वयः—त्रपुपमुग्धफलानाम् ये कण्टकाः सन्ति, केतकीकुसुमगर्भदलावलीषु ये कण्टकाः सन्ति, ते नूनम् इह सुन्दर्याः स्पर्शेन मम शरीरस्य वहलाः पुलकाङ्कुराः (सन्ति) ।

सरलार्थः—त्रपुपाख्यलताविशेषस्य यानि सुन्दराणि कोमलानि च फलानि सन्ति तेषां ये सूक्ष्माग्राः, ये च केतकीकुसुमानां गर्भदलानां पङ्क्तिषु कण्टकाः सन्ति, ते निश्चयेन कर्पूरमञ्जरीस्पर्शेन जातानां मे शरीरे रोमाञ्चानां समूहाः सन्ति ॥

राजा—(हाथ पकड़कर):—

त्रपुषलता के सुन्दर और कोमल फूलों में जो कांटे होते हैं तथा केतकी के फूलों के अन्दर के पत्तों में जो कांटे होते हैं, वे निश्चय ही कर्पूरमञ्जरी के स्पर्श से उत्पन्न मेरे शरीर के रोमाञ्चों का समूह हैं ॥ २१ ॥

विदूषक—प्रिय मित्र ! भांवरे दो (अग्नि की परिक्रमा करो) और अग्नि में खीलें छोड़ो।

टिप्पणी—कण्टकाः = कांटे, सूक्ष्म अग्रभाग । गर्भदलावलीषु = अन्दर के पत्तों की

(सत्ये नन्दतु सज्जनानां सकलो वर्गः खलानां पुन-

र्नित्यं खिद्यतु भवन्तु ब्राह्मणजनाः सत्याशिषः सर्वदा ।

मेघो मुञ्चतु सञ्चितमपि सलिलं सस्योचितं भूतले

लोको लोभपराङ्मुखोऽनुदिवसं धर्मे मतिर्भवतु च ॥२३॥)

[इति निष्क्रान्ताः सर्वे]

इति चतुर्थं जवनिकान्तरम् ।

इति श्रीराजशेखरविरचिता कर्पूरमञ्जरी समाप्ता ।

अन्वयः—सज्जनानाम् सकलः वर्गः सत्ये नन्दतु, पुनः खलानाम् (सकलः वर्गः) नित्यम् खिद्यतु, ब्राह्मणजनाः सर्वदा सत्याशिषः भवन्तु, मेघः सञ्चितम् अपि सलिलम् भूतले सस्योचितम् मुञ्चतु, लोकः अनुदिवसम् लोभपराङ्मुखः भवतु, धर्मे च (लोकानाम्) मतिर्भवतु ।

सरलार्थः—सत्पुरुषाणामखिलः गणः सत्यभाषणे सदाचारे च आनन्दमनुभवतु, दुर्जनानाम् समूहः दुःखमनुभवतु, विप्राः सर्वदा सफलाशीर्वादाः भवन्तु, मेघः सञ्चितमपि जलं पृथिव्यां कृष्यनुकूलं वर्षतु, प्रजाः अनुदिनम् लोभात्पराङ्मुखाः निर्लोभाः भवेयुः, धर्मे च तासाम् दृढविश्वास उत्पद्ये ॥ २३ ॥

इति कर्पूरमञ्जरीव्याख्या समाप्ता

लोभ से दूर हटा ली जाय और धर्म में उसका दृढ़ विश्वास बना रहे ॥ २३ ॥

(सबका प्रस्थान)

कर्पूरमञ्जरी की हिन्दी व्याख्या समाप्त ।

टिप्पणी—सत्याः आशिषः येषां ते सत्याशिषः = सफलाशीर्वादाः । शस्याय उचितम् = शस्योचितम् = धान्योचितम् । लोभात् लोभपराङ्मुखः = निर्लोभः ॥ २३ ॥

समाप्तश्चायं ग्रन्थः ।

परिशिष्टम्



प्राकृत शब्दों का कोष

अ

अणंतरकरणिज्जं (अनन्तरकरणीयम्) बाद में करने का
अंगम्मि (अङ्गेऽपि) शरीर पर भी
अंगजुअलं (अङ्गयुगलम्) दोनों अंग
अंतेउरं (अन्तःपुरं) रनिवास
अण्णाणं (अन्येषाम्) औरों का
अम्हाणं (अस्माकम्) हमारा
अण्णा (अन्या) दूसरी
अत्थणिवेस (अर्थनिवेश) अभिधेय, लक्ष्य, व्यंग्य अर्थों का प्रयोग
अप्पा (आत्मा) स्वयं
अस्स (अस्य) इसका
अज्जो (आर्यः) आर्य
अज्जघडिणिआ (आर्यभार्या) आर्य की गृहिणी
अम्हे (आवाम्) हम दोनों
अच्छिणी (अक्षिणी) आंखों को
अण्णएण (अन्वयेन) कुल से
अहवा (अथवा) या
अज्ज उत्तस्स (आर्यपुत्रस्य) आर्यपुत्र के
अच्चुत्तमा (अत्युत्तमा) अत्यन्त श्रेष्ठ
अच्चधमो (अत्यधमः) अत्यन्त नीच
अत्थे (अर्थे) शब्द में
अवलंबेदि (अवलम्बते) प्राप्त होती है
असोअतरू (अशोकतरुः) अशोक का वृक्ष
अणुबंधेहि (अनुबधान) आग्रह मत करो
अणुणअकक्कसो (अनुनयकर्कशः) आदर करने पर कठोर
अच्चब्भुदसिद्धी (अत्यद्भुतसिद्धिः) अत्यन्त अनोखी सिद्धियों वाला
अध इं (अथ किम्) और क्या
अच्चरिअं (आश्चर्यम्) अनोखा काम
अपुव्वं (अपूर्वम्) अनोखा, नवीन
अत्थि (अस्ति) है
अद्धणारीसरस्स (अर्धनारीश्वरस्य) शिव जी की
अकहिदा (अकथिता) न बताई हुई
अवअवगदा (अवयवगता) अंगों की
अ (च) और
अणुभविदं (अनुभूतम्) अनुभव किया
अज्जवि (अद्यापि) आज भी
अक्खरपंतीओ (अक्षरपङ्क्तयः) अक्षरों की पङ्क्तियां
अग्गम्मि (अग्रे) आगे
अणंगो (अनंगः) कामदेव
अण्णो (अन्यो) दूसरा
अहिमदजणप्पेसिदा (अभिमतजनप्रेषिता) प्रियजन के द्वारा भेजी हुई
अच्चिदा (अर्चिता) पूजा की
अण्णं च (अन्यच्च) और भी
अवत्थाणिवेदओ (अवस्थानिवेदको) अवस्था बताने वाला

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

ग

गंठि ([illegible]) [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
गाहअरो ([illegible]) [illegible]
गुम्फा (गुम्फिता) गूंथी
गेअणिट्टविहिणा (गेयनृत्यविधिना) गाने और नाचने में
गेहिणी (गेहिनी) घर वाली
गेण्हिअ (गृहीत्वा) लेकर
गेण्ह (गृहाण) पकड़ो
गोरंगीए (गौराङ्ग्या) गोरे शरीर वाली से
गोरिआ (गौरिका) सोने की

घ

घरिणि (गृहिणी) स्त्री
घणघम्मामिलाणो (घनघर्मम्लानः) तेज धूप से मुरझाया हुआ
घडण (घटन) लगाना
घाहिस्सं (क्षेप्स्यामि) फेंक दूंगा
घुसिण (घुसृण) कुंकुम
घेत्तूण (गृहीत्वा) ग्रहण कर

च

चंकमणदो (चङ्क्रमणतः) बार २ चलने से
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
चारुत्तणं ([illegible]) सौन्दर्य
चाव (चाप) धनुष
चित्ताणिला ([illegible]) चैत महीने की हवायें
चिट्ठदु (तिष्ठतु) ठहर
चित्तअरो (चित्रकरः) चित्रकार
चिट्ठदि (तिष्ठति) रहती है
चुंबण (चुम्बन) चूमना
चूरइस्सं (चूर्णयिष्यामि) चकना चूर कर दूंगा
चूडिआ (चूलिका) चोटी

छ

छइल्ल (विदग्ध) छैला
छप्पआणम् (षट्पदानाम्) भौंरों का
छम्मासिअ (षाण्मासिक) छः महीने का
छट्ठअ (षष्ठकः) छठा
छोल्लंति (स्फुरन्ति) चमक हैं

ज

जं जं (यत् यत्) जो जो

जअदि (जयति) विजय होती है
जच्चाणं (जात्यानां) उत्कृष्ट कोटिकी
जणणिरिक्खणिज्जं (जमनिरीक्षणीयम्) दर्शनीय
जरठाअमाणे (जरठायमाने) बढ़ते होने पर
जणदो (जनात्) लोगों से
जस्स (यस्य) जिसका
जहिच्छं (यथेष्टं) इच्छा के अनुसार
जदो (यतः) क्योंकि
जांति (यान्ति) बीतते हैं
जाणिज्जदि (ज्ञायते) जाना जाता है
जादो (जोता) हुआ
जाणेसि (जानासि) जानते हो
जाणिअ (ज्ञात्वा) जान कर
जाणं (ज्ञानं) ज्ञान
जीहाए (जिह्वया) जबान
जुअलं (युगलं) जोड़ा
जुहिट्ठिर (युधिष्ठिर)
जोण्हा (ज्योत्स्ना) चांदनी
जोईसर (योगीश्वर)
उज्जलइ (ज्वलति) गरम मालूम पड़ता है

झ

झत्ति (झटिति) शीघ्र
झणझणंत (झणझणायमाना) झन झन करता हुआ
झडित्ति (झटिति) जल्दी
झाणं (ध्यान)

ट

टसर (त्रसर) कन्था
टप्पर सूप
टिक्किदा (तिलकिता) तिलक लगाया
टेंटा इधर उधर घूमने वाली

ठ

ठाविदो (स्थापितो) लगाया
ठिल्लं (शिथिलं) ढीला
ठेरा (टेरा) ढेणा

ड

डंबर उधम
डिम्भ बालक

ण

णंदंन्तु (नन्दन्तु) समृद्ध हों
णच्चिदव्वं (नर्तितव्यम्) अभिनय करना चाहिए
णट्टावअं (नर्तकं) नचाने वाला
णअणं (नयनं) आंख
णअरं (नगरं) शहर
णलिणी (नलिनी)
णह (नभ) आकाश
णहद्धे (नभोऽध्वनि) आकाशमार्ग में
णाडिआइं (नाटिकां)
णामहेअं (नामधेयं) नाम
णाम (नाम)
णाह (नाथ) स्वामी
णिट्ट (नृत्य) अभिनय
णिक्कलंका (निष्कलंकाः) कलंकरहित
णिअ (निज)
णिंदणिज्जे (निन्दनीये) निन्दा के योग्य
णिसण्ण (निषण्ण) लगा हुआ
णिसग्ग (निसर्ग) स्वभाव
णिच्चभुच्चो (नित्यभृत्यो) नित्य का नौकर
णिदंब (नितम्ब)
णिज्झाअअंतीअ (निध्याययन्त्या) लगातार ध्यान करती हुई

पडिसोहर ([illegible]) [illegible]
पडिभाइं ([illegible])
पज्जुट्ट ([illegible]) [illegible]
पओहिच्छाइं [illegible]
पडिणिग्गआइं ([illegible]) [illegible]
पडिसारीअदि ([illegible]) [illegible]
पण्होत्तरं (प्रश्नोत्तरं) [illegible]
पत्तेअअ ([illegible]) [illegible]
पडिहारिणि ([illegible]) [illegible]
पउंजम्ह (प्रयुञ्ज्महे) [illegible] करते हैं
पडिणेदि (प्रतिनयति) [illegible] करता है
पत्तो ([illegible]) [illegible]
पडिवद्धाविआ (प्रतिवर्धिका) बढ़ावा देने वाली
पढिस्सं (पठिष्यामि) पढ़ूंगा
पट्टिवट्टे (प्रतिपट्टे) रेशमी वस्त्र
पढमा (प्रथम) पहली
पउंजीअदि (प्रयुज्यते) प्रयोग किया जाता है
पडिप्पद्धी (प्रतिस्पर्धा) बराबरी
पसाहणलच्छी (प्रसाधनलक्ष्मी) शृङ्गार शोभा
पवेसअ (प्रवेशय) आने दो
पच्चक्खं (प्रत्यक्षम्)
पत्तिआमि (प्रत्येमि) विश्वास करती हूं
पद्दराअ (पद्मराग) पुखराज
पडइ (पतति) गिरता है
पणट्ठा (प्रणष्टा) छिप गई
पच्चग्गेहिं (प्रत्यग्रैः) नए
पविट्ठा (प्रविष्टा) पहुँच गई
पअडेइ (प्रकटयति) जाहिर करता है
पच्चंगं (प्रत्यंगं) हर अङ्ग में
[illegible] ([illegible]) [illegible] में
[illegible] ([illegible]) मिले हैं
पडिग्गोअन्धीहिं ([illegible]) [illegible]
[illegible] ([illegible])
[illegible] ([illegible]) [illegible]
[illegible]
[illegible] ([illegible]) [illegible]
पाइदा ([illegible]) पिला दिया
पासम्मि ([illegible]) पास में
[illegible] ([illegible]) [illegible] वाली
[illegible] ([illegible]) [illegible] वाला
पिज्जंतो (पीयमानम्) पिया जाता हुआ
पिअं (प्रियम्)
पिआमो (पिबामः) पीते हैं
पिहाणं (पिधानं) ढकना
पीडणिविणण (अनिरोधेन)
पुंजिज्जइ (पुंजीभवति) इकट्ठा होता है
पुंखिद (पुंखित) चढ़ा हुआ
पुच्छिस्सं (पृच्छामि) पूछता हूं
पुत्थिआइं (पुस्तकानि) किताबों को
पुच्छीअंति (पृच्छ्यन्ते) पूछे जाते हैं
पुत्तो (पुत्रो)
पुण्णिमा (पूर्णिमा) पूनम
पुच्छिअ (पृष्ट्वा) पूछ कर
पुप्फणिअरं (पुष्पनिकरं) फूलों का समूह
पुलिंद (व्याध) बहेलिया
पुत्ति (पुत्रि)
पेच्छ (प्रेक्षस्व) देखो
पेक्खीअदि (दृश्येत) देखा जाता है
पेसिदं (प्रेषितं) भेजा
पोम्मराअ (पद्मराग)
प्पहुदि (प्रभृति) तक
प्पणामो (प्रणामः)

प्पभाद (प्रभात) प्रातःकाल, सवेरा
प्पसवो (प्रसवः) फूल
प्पसाहिदा (प्रसाधिता) सजाई
प्पसाद (प्रसाद) प्रसन्नता
प्पकिदि (प्रकृति) स्वभाव
प्पच्छालतो (प्रक्षालयन्) धोता हुआ
प्पसिदि (प्रसृति) अर्द्धाञ्जलि
प्पहाओ (प्रभावः) असर
प्पआसइ (प्रकाशते) प्रकट होता है
प्पविसम्ह (प्रविशामः) अन्दर चलें
प्पसर (प्रसर) फैलाव
प्पसीददु (प्रसीदतु) प्रसन्न हो
प्पदीवो (प्रदीपः) दीपक
प्पड़िट्ठाविदा (प्रतिष्ठापिता) प्रतिष्ठा कराई
प्पणमिज्जसि (प्रणम्यसे) प्रणाम किए जाते हो
प्पाकारं (प्राकारं) चहारदीवारी को
प्पेच्छंतीणं (प्रेक्षमाणानां) देखने वालों का
प्पेक्खिदव्वाइ (प्रेक्षितव्यानि) देखना चाहिए
प्फार (स्फार) विशाल

फ

फंस (स्पर्श) छूना
फटिअ (स्फटिक) सफेद पत्थर
फलआ (फलकौ) हिस्से
फलिल्लं (फलाढ्य) फलों से लदा हुआ
फग्गुणसमये (फाल्गुनसमये) फागुन में
फुरदु (स्फुरतु) चमकें, ध्यान में आए
फुढती (स्फुरन्ती) टूटती हुई
फुरंतओ (स्फुरन्) चमकता हुआ

ब

बंदिहिं (वन्दिभिः) वन्दी के द्वारा
बंदिदुं (वन्दितुं) वन्दना करने
वंचणा (वञ्चना) धोखा
वरा (वरा) सुन्दर
वहुसो (वहुशः) अनेक तरह से
वण्णिआओ (वर्णिकाः) रंग
वल्लह (वल्लभ) प्रिय
वण्णिदो (वर्णितः) वर्णन किया
वड्ढावीअसि (वर्धसे) प्रसन्न हो रही हो
वहलं अधिक
वट्टंति (वर्तन्ते) है
वला (वलात्) जवर्दस्ती
वड्ढावओ (वर्धापकः) वन्दी देने वाला
वण्णअ (वर्णय) वर्णन करो
वअणं (वचनं) कहना
वम्हणेण (ब्राह्मणेन) ब्राह्मण से
वइल्लो (वलीवर्दः) बैल
वसुहा (वसुधा) पृथ्वी
वअस्स (वयस्य) मित्र !
वलइद (वलयित) मोड़ा हुआ
वहिणिए (भगिनिके) वहिन !
वक्करुत्ति (वक्रोक्ति) बात वनाकर कहना
वरिट्ठा (वरिष्ठा) सुन्दर
वरिसिदुं (वर्षितुं) वरसने को
वड्ढंत (वर्धमान) बढता हुआ
वत्थि (वस्त्र) कपड़ा
वड्ढत्तणं (वृद्धत्वं) वृद्धि
वग्गो (वर्गो) समूह
वट्टेदि (वर्तयति) रखती है
वासाइणो (व्यासादयः) व्यास इत्यादि कवि
वाआ (वाताः) हवाएं
वाअंति (वान्ति) चलती हैं
वाहिरा (वाह्यौ) वाहरी
वासरा (वासराः) दिन

रित्ता (रिक्ता) खाली
रीदीओ (रीतिकाः) रीतियाँ, साहित्यिक शैलियाँ
रुदु (ऋतु)
रुट्ठ (रुष्ट) नाराज
रुहिर (रुधिर) खून
रूअरेहा (रूपरेखा) सौन्दर्य
रूढीअ (रूढेः) रूढि का
रोसावसरो (रोषावसरः) क्रोध का मौका

ल

लंछिदं (लाञ्छितम्) चिह्नित कर दिया
लंगिमं (तारुण्यं) यौवन
लंभिदो (लम्भितः) प्राप्त कराया
लच्छी (लक्ष्मी) शोभा
लग्गा (लग्ना) लग गई
लहेदि (लभते) प्राप्त करता है
लक्खिज्जए (लक्ष्यते) मालूम पड़ता है
लावण्णं (लावण्यं) सौन्दर्य
लास्सावसाणे (लास्यावसाने) लास्य के अन्त में
लाजंजलीओ (लाजाञ्जलयः) खीलों की अंजलियाँ
लिहिदो (लिखितः) लिखा
लेहहत्था (लेखहस्ता) लेख हाथ मे लिए हुए
लोट्टदि (लुठति) लोटती है
लोहपरम्मुहो (लोभपराङ्मुखः) लोभ से दूर

स

संघाडो (सङ्घटना) सङ्गम
संझा (सन्ध्या) शाम
संदावदाइणि (संतापदायिनी)
संकेअ (सकेत) इशारा
संभाविज्जदि (सम्भाव्यते) हो सकता है
संठिदा (संस्थिता) ठहरी
सअलो (सकलो) सब
सरस्सई (सरस्वती)
सट्टअं (सट्टकं) एक प्रकार का रूपक
ससुरो (श्वशुरः)
सहाए (सभायां) सभा में
समसीसिआ (समशीपिका) प्रतिस्पर्द्धा
समुव्वहदि (समुद्वहति) धारण करता है
सव्वाणं (सर्वेषाम्) सब का
सण (शण) सन
सपज्जा (सपर्या) सेवा
सच्चं (सत्यम्)
सहरिसं (सहर्ष) खुशी के साथ
सण्णिहिदा (सन्निहिता) निकट
समादिट्ठं (समादिष्टं) कहा
समुग्गिरइ (समुद्गिरति) छोड़ता है उगलता है
समुग्घाडिअ (समुद्घाट्य) खोल कर
समुप्पन्ना (समुत्पन्ना) पैदा हुई
सरलत्तणम् (सरलत्वम्) सरलता को
सरअसमीर (शरत्समीर)
सरिच्छा (सदृशी) समान
सग्गो (स्वर्गो) स्वर्ग
सस्सोचिदं (शस्योचितं) फसल के अनुसार
सहित्तणं (सखीत्वं) मैत्रीको
सामलम् (श्यामल) सांवला
साडिआ (शाटिका) साड़ी
सिंचिज्जंती (सिच्यमाना) सींची जाती हुई
सिंगार (शृङ्गार)
सिविणअं (स्वप्नं) सपना
सिढिलआमि (शिथिलयामि) कम करूँ
सिलोओ (श्लोको)

सिसिरोपआरसामग्गिं (शिशिरोपचार सामग्रीं)
सीअला (शीतलाः)
सुहं (सुखम्)
सुत्तोम्हि (सुप्तोऽस्मि) सो गया हूँ
सुत्था (स्वस्था) स्थिर
सुत्ती (शुक्ति) सीप
सुणादु (शृणोतु) सुनो
सुत्तआरो (सूत्रकारः) संक्षेप में बोलने वाला
सुब्बणं (सुवर्णम्) सोना
सुणीअदि (श्रूयते) सुना जाता है
सुरअ (सुरत) संभोग
सूलाअरण (शूलाकरण) फांसी देना
सेवणिज्जो (सेवनीयो) आनन्द उठाने योग्य
सेट्ठिणा (श्रेष्ठिना) सेठ ने
सोभग्ग (सौभाग्य)
सोहदे (शोभते) अच्छा लगता है
सोहासमुदाएण (शोभासमुदायेन)
स्सवण (श्रवण) कान

ह

हल्लवोलो (हलहलः) हल हलकी ध्वनि
हरिणंक (हरिणांक) चन्द्रमा
हत्थे (हस्ते) हाथ में
हक्कारिअण (आकार्य) बुलाकर
हरिद्दाअ (हरिद्रायाः) हल्दीसे
हलिद्दा (हरिद्रा) हल्दी
हक्कारीअदु (आकार्यताम्) बुलाया जाना चाहिए
हिअआइं (हृदयादि) मन को
हिमाणिं (हिमानीं) बरफ का समूह
हुअंति (भवन्ति) होते है
होंति (भवतः) होते हैं
होदव्वं (भवितव्यं) होना चाहिए

नाटकीय सुभाषित सङ्ग्रह

१. अहवा हत्थकंकणं किं दप्पणेण पेक्खीअदि ? (पृ. २२)

२. तुरगस्स-सिग्घत्तणे किं सक्खिणो पुच्छीअंति ? (पृ. २२)

३. ण कत्थूरिआ कुग्गामे वणे वा विक्किणीअदि, न सुवण्णं कसवट्टिअं विणा सिलापट्टए कसीअदि । (पृ. २२)

४. सा घरिणी जा पिअं रंजेदि, सो पुत्तो जो कुलं उज्जलेदि । (पृ. २४)

५. मइरा पंचगव्वं च एक्कस्सिं भंडए कीरदि, कच्चं माणिक्कं च समं आहरणे पउंजीअदि । (पृ. ३०)

६. कीदिसी णअणंजणेण विणा पसाहणलच्छी ? (पृ. ३२)

७. जुज्जदि चंपअलदाए कत्थूरिआकप्पूरेहिं आलवालपरिपूरणं । (पृ. ५२)

८. सीस्ले सप्पो, देसंतरे वेज्जो । (पृ. १७६)

९. रज्जंति छेआ समसंगमम्मि । (पृ. १२२)

१०. पाइआ जीण्णमज्जारिआ दुद्धं त्ति तक्कं ।



कर्पूरमञ्जरीगत छन्दों की सूची



आर्या–प्रथम जवनिका, श्लोक–२, ५, ७, ८, ९, १० ।
द्वि. ज.–१२, १३, १४, १५, १६, १७, १८, १९, २०, २१, २२, ३३, ३४, ३५, ३६, ३७, ३८, ३९, ४० ४२, ४३, ४८, ४९ ।
तृ. ज.–८ । च. ज.–१८ ।

इन्द्रवज्रा–प्र. ज.–२२, तृ. ज.–५, ६, च. ज.–९ ।

उपगीतिः–द्वि. ज.–४५ ।

उपजातिः–प्र. ज.–२८, ३१ । द्वि. ज.–२५ ।
च. ज.–१०, ११, १२, १४ ।

उपेन्द्रवज्रा–च. ज.–१३ ।

गीतिः–प्र. ज. ६ ।

पुष्पिताग्रा–प्र. ज. २ । च. ज.–१ ।

पृथ्वी–प्र. ज.–३४ । द्वि. ज.–३२, ४७ ।
तृ. ज.–२०, २६ । च. ज.–२, ५ ।

मन्दाक्रान्ता–प्र. ज.–३०, ३३ । द्वि. ज.–२, २३, ३० ।

मालिनी–द्वि. ज.–९, २४, ४४ । तृ. ज. २, ७, १८ । च. ज.–१९ ।

रथोद्धता–प्र. ज.–११ । द्वि. ज.–७ ।
तृ. ज.–२१, २४, ३१, ३२, ३३, ३४ ।

वंशस्थम्–तृ. ज.–४ ।

वसन्ततिलका–प्र. ज. १४, १९, २१, २४, २५, २७ । द्वि. ज.–४, ५, ६, २६ ।
तृ. ज.–९, १०, ११, १२, १३, १४, १५, १६, १७, २२ ।
च. ज.–४, ७, २० ।

शशिवदना–तृ. ज.–२९ ।

शार्दूलविक्रीडितम्–प्र. ज.–१, १३, १६, १७, १८, २०, २६, २९, ३२, ३५ ।
द्वि. ज.–१, ३, ८, २७, २९, ४६ ।
तृ. ज.–१, ३, २५, २७ ।
च. ज.–३, ८, २२ ।

शालिनी–प्र. ज.–२३ ।

शिखरिणी–द्वि. ज.–११ ।

स्रग्धरा–प्र. ज.–४, १५, ३६ ।
द्वि. ज.–१०, २८, ३१, ४१, ५० ।
तृ. ज.–१९, २८ । च. ज. ६ ।

स्वागता–प्र. ज.–१२ । च. ज. १५, १६, १७, २१ ।



प्रश्नपत्र

१. कर्पूरमञ्जरी की कथा संक्षेप में लिखिए। (प्रस्तावना में कथासार देखिए)

२. राजशेखर के वंश और काल की विवेचना कीजिए।

३. राजशेखर की शैली पर आलोचनात्मक टिप्पणी लिखिए।

४. 'कर्पूरमञ्जरी' नाटक पर आलोचनात्मक टिप्पणी लिखिए।

५. 'सट्टक' किसे कहते हैं ? इसकी प्रमुख विशेषताएं बतलाइए।

६. प्रस्तुत नाटक में भैरवानन्द की क्या उपयोगिता है ? उसके व्यक्तित्व पर प्रकाश डालिए।

७. विष्कम्भक, प्रवेशक, सूत्रधार और प्रस्तावना—इन की परिभाषा दीजिए।

८. कर्पूरमञ्जरी का राजा चन्द्रपाल से किस तरह विवाह हुआ ?



प्रश्नोत्तर

प्र० नं० २ राजशेखर के वंश और काल की विवेचना कीजिए

राजशेखर के समय और वंश के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न विचार प्रकट किए हैं। राजशेखर यायावर वंश का था। तिलकमञ्जरी और उदयसुन्दरी में उसको 'यायावर' अथवा 'यायावर कवि' कहा गया है। उसका पिता दुर्दुक और माता शीलवती थी। वह अकालजलद का पौत्र और सुरानन्द, तरल और कविराज का वंशधर था। अवन्तिसुन्दरी नाम की एक राजपूत कन्या से विवाह होने के कारण यह बात कुछ संदिग्ध सी जान पड़ती है कि वह ब्राह्मण रहा हो। लेकिन जब हम यह देखते हैं कि प्राचीन काल में अन्तर्जातीय विवाह भी होता था और स्मृतियों में ऐसे विवाह का विधान भी है तो हमें इस बात में तनिक भी संदेह नहीं करना चाहिए कि राजशेखर ब्राह्मण था और उसने अवन्तिसुन्दरी से अनुलोम विवाह किया होगा। राजशेखर के जन्मस्थान के विषय में बड़ा मतभेद है। कोई उसे महाराष्ट्री बनाते हैं। सूक्तिमुक्तावली में सुरानन्द नामक उसके एक पूर्वज को चेदिमण्डलमण्डनम् कहा गया है। लेकिन राजशेखर ने कहीं पर भी महाराष्ट्री प्राकृत को विशेष स्थान नहीं दिया है। हो सकता है कि राजशेखर के समय में महाराष्ट्र की कोई दूसरी सीमायें हों। यह भी संभावना हो सकती है कि राजशेखर महाराष्ट्र छोड़ कर पाञ्चाल देश में आ गया हो।

राजशेखर ने अपने बारे में बहुत कुछ लिखा है। कर्पूरमञ्जरी में उसने अपने लिए 'बालकवि' कविराज 'सर्वभाषाचतुर' कहा है। उसने अपने को निर्भयराज (महेन्द्रपाल) का गुरु बतलाया है। राजा महेन्द्रपाल के पुत्र और उत्तराधिकारी राजा महीपाल ने भी उसको अपना संरक्षक बनाया था। सीयोदनि के शिलालेख में महेन्द्रपाल का शासनकाल ९०३–९०७ ईसा के बाद का और महीपाल का ९१७ ईसा के बाद बताया गया है। राजशेखर ने भवभूति की प्रशंसा में उनको पुनरुत्पन्न वाल्मीकि कहा है तथा वाक्पतिराज, रुद्रट और आनन्दवर्धन का उल्लेख किया है। सोमदेव ने अपने यशस्तिलकचम्पू में, धनञ्जय ने अपने दशरूपक में और सोड्ढल ने अपनी उदयनसुन्दरी में राजशेखर का उल्लेख किया है। इन सब उल्लेखों से हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि राजशेखर लगभग ९०० ईसा से बाद रहा होगा।

(विशेष विवरण के लिए प्रस्तावना देखिए)

प्र० नं० ३ राजशेखर की शैली पर आलोचनात्मक टिप्पणी लिखो

संस्कृत साहित्य का प्रत्येक विद्यार्थी राजशेखर के नाम से परिचित है। इस महाकवि

की भाषा सरस और सरल है। इसकी कर्पूरमञ्जरी ही एक ऐसी नाटिका है जिसमें संस्कृत नहीं पाई जाती। राजशेखर ने साहित्यक्षेत्र में यह एक नया प्रयोग किया। काव्य के संबन्ध में उसका यह कथन है—

अत्थणिवेसा ते ज्जेव्व सद्दा ते ज्जेव्व परिणमंताइं।
उत्तिविसेसो कव्वो भासा जा होइ सा होदु॥

भाषा के संबन्ध में उसका यह कहना है कि—

परुसा संकिअ बंधा पाउदबंधो वि होइ सुउमारो।
पुरुसमहिलाणं जेत्तिअमिहंतरं तेत्तिअमिमाणं॥

कुछ लोग इस कथन की प्रामाणिकता में विश्वास नहीं करते हैं। इसमें कुछ संदेह नहीं हो सकता कि राजशेखर की रचना निर्दोष नहीं है। चरित्रचित्रण में व्यक्तिगतता और स्वारस्य लाना उसकी शक्ति के बाहर है। विद्धशालभंजिका में विद्याधरमल्ल अपने प्रत्यादर्श, विलासशील और दाक्षिण्ययुक्त वत्स के समक्ष बिल्कुल रूखा और अरुचिकर लगता है। रानी में न तो वासवदत्ता जैसा प्रेम है और न उसकी महानुभावता। भागुरायण यौगन्धरायण का विच्छिन्न और अस्पष्ट प्रतिबिम्ब है। उसकी नायिकाओं में कोई विशेषता नहीं। इसी प्रकार कलासंबन्धी और भी कितने ही दोष उसमें पाए जाते हैं।

यह सब होते हुए भी राजशेखर की शैली और भावों को प्रभावोत्पादक ढंग पर व्यक्त करने की शक्ति सराहनीय है। संस्कृत एवं प्राकृत छन्दों के प्रयोग में वह सिद्धहस्त है। अन्य उत्तरकालीन नाटककारों की भांति, ललित और मनोहर पदावली की रचना करने में वह सर्वथा समर्थ है। विद्धशालभञ्जिका का मङ्गलाचरण निःसन्देह लालित्य से भरा हुआ है—

कुलगुरुरबलानां केलिदीक्षाप्रदाने परमसुहृदनंगो रोहिणीवल्लभस्य।
अपि कुसुमपृषत्कैर्देवदेवस्य जेता जयति सुरतलीलानाटिकासूत्रधारः॥

राजशेखर की रचना पर कालिदास, हर्ष, भवभूति आदि पूर्वकालीन कवियों का प्रभाव प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। कर्पूरमञ्जरी पर मालविकाग्निमित्र और रत्नावली का प्रभाव तो प्रत्यक्ष ही है।

प्र० नं० ४ कर्पूरमञ्जरी पर आलोचनात्मक टिप्पणी लिखिए

कर्पूरमञ्जरी एक प्रकार का सट्टक है। राजशेखर ने स्वयं सट्टक के संबन्ध में कहा है कि—

सो सट्टओ त्ति भणइ दूरं जो णाडि आइं अनुहरइ।
किं उण एत्थ पवेसअ बिक्कंभाई ण केवलं हों त्ति॥

उस रचना को सट्टक कहते हैं जो नाटिका से बिल्कुल मिलती-जुलती है। इसमें केवल प्रवेशक और विष्कम्भक नहीं होते है। जिसप्रकार नाटिका में वस्तु काल्पनिक होती है, नायक कोई प्रख्यात धीरललित राजा होता है और श्रृङ्गार रस प्रधान होता है, उसी प्रकार कर्पूरमञ्जरी मे भी सब बातें वैसी ही पाई जाती है। जिसप्रकार नाटिका में प्रगल्भ, राजकुलोत्पन्न, गम्भीर और मानिनी महाराशी होतो है और महारानी की वजह से ही नायक का नूतननायिका से समागम होता है। नूतननायिका मुग्धा, दिव्य और अत्यन्त सुन्दर होती है। नायक का उसमे अन्तःपुर इत्यादि के संबन्ध से देखने तथा सुनने से उत्तरोत्तर प्रेम बढ़ता जाता है। महारानी के डर से हिचकता-हिचकता नायक उससे प्रेम करता है। यह सब बातें भी कर्पूरमञ्जरी में स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। इस तरह कर्पूरमञ्जरी को एक नाटिका ही समझना चाहिए।

प्राकृत भाषा में लिख कर राजशेखर ने एक साहित्यिक परीक्षण किया है। अपनी रचना को अधिक लोकप्रिय बनाने के लिए ही उसने ऐसा किया। जिस तरह श्रृंगार रस नाटिका में प्रधान होता है कर्पूरमञ्जरी भी श्रृङ्गार रस से ओतप्रोत है और राजशेखर की वास्तविक कवित्व शक्ति का परिचय देती है। राजशेखर के स्त्रीसौन्दर्य की कल्पना जरा देखिए—

अङ्गं लावण्यपूर्णं श्रवणपरिसरे लोचने हारतारे
वक्षः स्थूलस्तनं त्रिवलिवलयितं मुष्टिग्राह्यं च मध्यम्।
चक्राकारो नितम्बस्तरुणिमसमये किंत्वन्येन कार्यम्?
पञ्चभिरेव बाला मदनजयमहावैजयन्त्यो भवन्ति॥ (पृ. १३५)

वसन्तवर्णन, संध्यावर्णन और चन्द्रिकावर्णन भी यत्र तत्र सजीव बन पड़ा है। झूले के दृश्य में सुन्दर ललित पदावली में प्रभावोत्पादक शब्द चित्रण किया गया है:—

'विच्छाअन्तो णअररमणीमण्डलस्साणणाइं
प्पिच्छालंतो गअणकुहरं कंतिजोण्हाजलेण।
पेच्छंतीणं हिदअणिहिदं णिद्दलंतो च दप्पं
दोलालोलासरलतरलो दीसए से मुहेंदू॥' (पृ. ८९)

प्रत्येक रमणी के मुखारविन्द को फीका करता हुआ, अपने रूपलावण्य की द्रवीभूत चन्द्रिका से गगनमण्डल को तरङ्गित करता हुआ, अन्य युवतियों के अभिमान को दलित करता हुआ चन्द्रमा के समान उसका मुखमण्डल दिखाई देता है; जब कि वह झूलती हुई सीधे आगे-पीछे झोंके लेती है।

उक्त छन्द के प्रभावोत्पादक अनुप्रास और श्लेष को एक और पद में मात किया गया है जहाँ पदध्वनि से पदार्थ की प्रतीति हो जाती है :—

> रणंतमणिणेउरं झणझणंतहारच्छडं
> कणक्कणिअकिंकिणी मुहरमेहलाडंबरं।
> विलोलवलआवलीजणिदमंजुसिंजा रवं
> ण कस्स मणमोहणं ससिमुहीअ हिंदोलणं ॥ (पृ. ९१)

नूपुरों को झनकारती हुई, मणिमय माला के प्रकाश को छिटकाती हुई किंकिणियों से निनादित होती हुई, कटिमेखला को प्रदर्शित करती हुई, परिभ्रमणशील कंगनों को कलकूजित करती हुई, हिंडोले में झूलती हुई यह चन्द्रवदनी किसके मन को नहीं मोह लेती।

जैसा कि मंगलाचरण में कवि ने वैदर्भी, मागधी और पाञ्चाली इन रीतियों का उल्लेख किया है इसी तरह कर्पूरमञ्जरी में स्थान-स्थान पर सभी रीतियाँ पाई जाती हैं। विशेष रूप से पाञ्चाली रीति का प्रयोग किया गया है।

प्र० नं० ५ सट्टक किसे कहते हैं ? इसकी प्रमुख विशेषताएँ बतलाइए

संस्कृत नाट्यशास्त्र के अनुसार नाटिकायें निम्न प्रकार की होती हैं। जैसे :—

> तत्र वस्तु प्रकरणान्नाटकान्नायको नृपः।
> प्रख्यातो धीरललितः शृङ्गारोऽङ्गी सलक्षणः ॥
> देवी तत्र भवेज्ज्येष्ठा प्रगल्भा नृपवंशजा।
> गम्भीरा मानिनी कृच्छ्रात्तद्वशान्नेतसंगमः ॥
> नायिका तादृशी मुग्धा दिव्या चातिमनोहरा।
> अन्तःपुरादिसम्बन्धादासन्ना श्रुतिदर्शनैः ॥
> अनुरागो नवावस्थो नेतुस्तस्यां यथोत्तरम्।
> नेता तत्र प्रवर्तेत देवीत्रासेन शंकितः।
> कैशिक्यङ्गैश्चतुर्भिश्च युक्ताङ्कैरिव नाटिका ॥

नाटिका में वस्तु काल्पनिक होती है। नायक प्रख्यात धीरललित राजा होता है। शृङ्गार रस प्रधान होता है। ज्येष्ठ, प्रगल्भ, राजकुलोत्पन्न, गंभीर और मानिनी महारानी होती है और उसी की वजह से नायक का नूतननायिका से समागम होता है। प्राप्य नायिका मुग्धा, दिव्य तथा राजकुलोत्पन्न इत्यादि गुणों से युक्त कोई सुन्दरी होती है। अन्तःपुर इत्यादि के संबन्ध से देखने तथा सुनने से नायक का उसमे उत्तरोत्तर प्रेम बढ़ता

जाता है। नायक महारानी के डर से हिचकिचाता हुआ नूतन नायिका की ओर प्रवृत्त होता है तथा कैशिकी वृत्ति के चार अंगों से चार अंक इसमें होते हैं।

उपर्युक्त सारे लक्षण सट्टक में भी होते हैं। राजशेखर ने स्वयं कहा है—

सो सट्टओ त्ति भणइ दूरं जो णाडिआइं अणुहरइ।
किं उण एत्थ पवेसअविक्कंभाइं ण केवलं हींति॥ (पृ. ८)

नाटिका से बिल्कुल मिलती-जुलती रचना को सट्टक कहते हैं। इसमें प्रवेशक और विष्कम्भक नहीं होते। प्राकृत भाषा का ही प्रयोग विशेष रूप से किया जाता है। अद्भुत रस भी यत्र तत्र पाया जाता है। अंकों को जवनिका कहते हैं। गीत, नृत्य और विलास की प्रधानता रहती है।

प्र० नं० ६ प्रस्तुत नाटक में भैरवानन्द की क्या उपयोगिता है? उसके व्यक्तित्व पर प्रकाश डालिए।

भैरवानन्द अद्भुतसिद्धि वाला, कौलिक मत को मानने वाला, शिव जी का उपासक एक सिद्धपुरुष है। जैसा कि उसके कथन से स्पष्ट है। वह वेद आदि की शिक्षाओं को नहीं मानता। वह मद्य पीता है, मांस खाता है और स्त्रीसंभोग से भी उदासीन नहीं है। उसे कुछ सिद्धियाँ प्राप्त हैं। नाटक के प्रथम जवनिकामें ही उसका प्रवेश हो जाता है। राजा चन्द्रपाल के कहने से वह कर्पूरमञ्जरी को सबके सामने प्रत्यक्ष ला दिखाता है। उसके अपूर्व सौन्दर्य को देखकर राजा उस पर मोहित हो जाता है और उससे प्रेम करने लगता है। चूँकि कर्पूरमञ्जरी अन्त में रानी विभ्रमलेखा की बहिन निकलती है इसलिए रानी विभ्रमलेखा उसको अपने महल में कुछ दिनों के लिए रख लेती है। इस तरह नाटक की कथावस्तु भैरवानन्द के कारण से ही आगे बढ़ती है। या यों कहिए कि नाटक का सूत्रपात ही भैरवानन्द के द्वारा होता है। अन्त में भैरवानन्द के द्वारा ही कर्पूरमञ्जरी का राजा चन्द्रपाल से विवाह होता है। विदूषक ने राजा को उद्देश्य कर—

'भो वअस्स! अम्हे परं दुए वि बाहिरा एत्थ, जदो एदाणं मिलिदं कुटुंबअं वट्टदि, जदो इमीए दुओ वि बहिणिआओ। भैरवाणंदो उण एदाणं संजोअअरो अच्चिदो मण्णिदो अ'। (पृ. ५१)

यह कथन प्रथम अंक में कहा था। लेकिन जिस तरह भैरवानन्द ने कर्पूरमञ्जरी और रानी विभ्रमलेखा का संयोग कराया था अन्त में राजा चन्द्रपाल और कर्पूरमञ्जरी का संयोग भी उसके द्वारा होता है। इस तरह यह स्पष्ट है कि इस नाटक में भैरवानन्द ही सब कुछ है।

उसके चरित्र के संबन्ध में प्रथम तो कुछ शंका होती है। क्योंकि—उसका यह कथन:—

मंतो ण तंतो ण अ किं पि जाणं झाणं च णो किं पि गुरुप्पसादा।
मज्जं पिआमो महिलं रमामो मोक्खं च जामो कुलमग्गलग्गा॥ (पृ. २५)
रंडा चंडा दिक्खिदा धम्मदारा मज्जं मंसं पिज्जए खज्जए अ।
भिक्खा भोज्जं चम्मखंडं च सेज्जा कोलो धम्मो कस्स णो भादि रम्मो॥ (पृ. २६)
मुत्तिं भणंति हरिबम्हमुहादिदेआ झाणेण वेअपठणेण कदुक्किआए।
एक्केण केवलमुमादइएण दिट्ठो मोक्खो समं सुरअकेलिसुरारसेहिं॥ (पृ. २६)

कुछ अटपटा सा जान पड़ता है। लेकिन यह उसके बात करने का केवल एक ढंग है। राजा चन्द्रपाल ने उसको योगीश्वर बतलाया है। आगे चलकर रानी विभ्रमलेखा उसको अपना दीक्षागुरु बनाती है और गुरुदक्षिणा के लिए आग्रह करती है। इससे यह सिद्ध होता है कि भैरवानन्द एक पहुँचा हुआ योगी है और अद्भुत कार्य करने की क्षमता रखता है।

प्र० नं० ७ विष्कम्भक, प्रवेशक, सूत्रधार और प्रस्तावना—इनकी परिभाषा दीजिये

(विष्कम्भक, प्रवेशक और सूत्रधार की परिभाषायें पृ. ८ और ९ की टिप्पणी में देखिए।)

प्रस्तावना—**प्रस्ताव्यते प्रकर्षेण सूच्यते अनयेति प्रस्तावना = अभिनेतव्यविषय-सूचना।** जिसके द्वारा प्रकृष्ट रूप से नाटकीय वस्तु की सूचना दी जाए, उसे प्रस्तावना कहते हैं। साहित्यदर्पण में प्रस्तावना का स्वरूप इस तरह बताया गया है:—

नटी विदूषको वाऽपि पारिपार्श्विक एव वा।
सूत्रधारेण सहिताः संलापं यत्र कुर्वते॥
चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः।
आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनेति च॥

नटी, विदूषक अथवा पारिपार्श्विक सूत्रधार के साथ प्रस्तुत बातों की सूचना देने वाले वाक्यों द्वारा जहाँ वार्तालाप करते हैं, उसे आमुख अथवा प्रस्तावना कहते हैं।

प्र० नं० ८. कर्पूरमञ्जरी का राजा चन्द्रपाल से किस तरह विवाह हुआ?

योगी भैरवानन्द अपनी यौगिकशक्ति के बल से कुन्तलदेश की राजकुमारी कर्पूर-मञ्जरी को राजा चन्द्रपाल के महल में उपस्थित कर देता है। रानी विभ्रमलेखा अपनी मौसी की पुत्री होने के नाते उसको अपने यहाँ कुछ और दिन ठहरा लेती है। राजा चन्द्रपाल उसके सौन्दर्य पर मोहित हो जाता है और उससे प्रेम करने लग जाता है।

इधर कर्पूरमञ्जरी भी राजा से प्रेम करने लगती है। लेकिन महारानी के कारण दोनों एक दूसरे से मिल नहीं पाते। राजा एक बार कर्पूरमञ्जरी को झूले में झूलता हुआ भी देखता है, तथा विदूषक की सहायता से उसका कर्पूरमञ्जरी से एक बार साक्षात्कार भी होता है। इस तरह इन दोनों का परस्पर प्रेम बढता रहता है। अन्त में ऐसा होता है कि रानी विभ्रमलेखा गौरी पूजा करती है और गौरी की प्रतिमा में भैरवानन्द से प्राणप्रतिष्ठा कराती है तथा स्वयं दीक्षा भी भैरवानन्द से लेती है। रानी भैरवानन्द से दक्षिणा के लिए बड़ा आग्रह करती है। भैरवानन्द उस समय दक्षिणा लेना अस्वीकार कर देता है और कहता है कि लाटदेश में चण्डसेन नामक राजा को घनसारमञ्जरी नाम की कन्या है, ज्योतिषियों ने उसके संबन्ध में ऐसा कहा है कि वह किसी चक्रवर्ती राजा की रानी बनेगी। इसलिए उसका विवाह महाराज से कर दिया जाय। विवाह के पश्चात् मुझे भी गुरुदक्षिणा मिल जायगी और महाराज भी चक्रवर्ती हो जायगे। रानी विभ्रमलेखा इस बात को स्वीकार कर लेती है। तत्पश्चात् भैरवानन्द जब घनसारमञ्जरी को विवाहमण्डप में लाता है तो वह घनसारमञ्जरी कर्पूरमञ्जरी के अतिरिक्त और कोई नहीं निकलती। रानी आश्चर्य से कर्पूरमञ्जरी की ओर देखती है। भैरवानन्द **'तुमं सुट्ठुतरं भुल्लोऽसि, जदो कप्पूरमंजरीए घणसारमंजरीत्ति णामातरं जाणासि' (पृ. १८६)** इन शब्दों से सबका भ्रम दूर कर देता है। इस तरह घनसारमञ्जरी नाम से कर्पूरमञ्जरी का राजा चन्द्रपालसे विवाह हो जाता है।



प्राकृतश्लोकानुक्रमणिका